रसपद्धतिः



॥ श्रीः ॥

जयकृष्णदास आयुर्वेद ग्रन्थमाला

७१

आचार्य-बिन्दु-विरचितः

रसपद्धतिः

'सिद्धिप्रदा'-हिन्दीव्याख्यासहितः

हिन्दी-व्याख्याकारः

डॉ० सिद्धिनन्दन मिश्र

जी० ए० एम्० एस्०, एच्० पी० ए०, साहित्याचार्य, पी-एच्० डी०

विभागाध्यक्षः

रसशास्त्रभैषज्यकल्पनायाः

राजकीय-आयुर्वेद-महाविद्यालयः

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः, वाराणसी-२



चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

वाराणसी दिल्ली

प्रकाशक
चौखम्भा ओरियन्टालिया
पोस्ट बाक्स नं० १०३२
वाराणसी–२२१ ००१ (उ० प्र०) भारत
टेलीफोन : ६३३५४ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव
शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर
(करोड़ीमल कालेज के पास)
दिल्ली–११०००७ फोन : २९११६१७

प्रथम संस्करण : १९८७ ई०
मूल्य : रु० ६०–००



मुद्रक :
श्रीगोकुल मुद्रणालय
गोपाल मन्दिर लेन,
वाराणसी–२२१ ००१

JAIKRISHNADAS AYURVEDA SERIES
NO. 71

RASAPADDHATI

BY
ĀCĀRYA BINDU

with

'Siddhipradā'-Hindi Commentary

by

Dr. SIDDHINANDAN MISHRA
G. A. M. S., H. P. A., Sāhityāchārya, Ph. D.
Head of the Deptt.
Rasashastra and Bhaishajya Kalpana
State Ayurvedic College
Sampurnananda Sanskrit University
VARANASI-2

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
VARANASI DELHI

Publishers :

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
Post Box No. 1032
VARANASI-221 001 (India)
Telephone : 63354 Telegram.: Gokulotsav

Branch—Bungalow Road, 9 U. B. Jawahar Nagar
(Near Kirorimal College)
DELHI-110 007 Phone : 2911617

प्राक्कथन

रसशास्त्रानुरागी सज्जनों ! आप सबों को तो सम्यक्तया मालुम ही है कि संस्कृत वाङ्मय में वर्णित विश्व के प्राचीनतम आयुर्वेदीयचिकित्सा (भारतीयचिकित्सा) रसौषधिओं (पारद-लोह-भस्मादि खनिजों द्वारा) काष्ठौषधिओं (वानस्पस्तिक द्रव्य-जड़ी-बूटिओं द्वारा) तथा शस्त्र-क्षाराग्नि (आपरेशन-क्षारकर्म-अग्निकर्मो के द्वारा) द्वारा की जाती है। अर्थात् आयुर्वेद में तीन प्रकार से चिकित्सा की जाती है।

१. रसचिकित्सा -- दैवीचिकित्सा -- उत्तम चिकित्सा
२. काष्ठौषधिओं से चिकित्सा—मानुषी चिकित्सा--मध्यम चिकित्सा
३. शस्त्र-क्षाराग्नि चिकित्सा--आसुरी चिकित्सा--अधम चिकित्सा

कहा भी है--

उत्तमो रसवैद्यस्तु मध्यमो मूलिकादिभिः ।
अधमः शस्त्रदाहाभ्यामित्थं वैद्यास्त्रिधा मताः ॥

अन्यत्र भी आचार्यों ने कहा है ।

सा दैवी प्रथमा सुसंस्कृतरसैर्या निर्मिता तद्रसै-
श्चूर्णस्नेहकषायलेहरचिता स्यान्मानवी मध्यमा ।
शस्त्रच्छेदनलास्यलक्ष्मणकृताचाराधमा साऽऽसुरी-
त्यायुर्वेद रहस्यमेतदखिलं तिस्रश्चिकित्सा मताः ॥

(रसपद्धतिः)

रसशास्त्र की प्रशस्ति में अनेक रसाचार्यों द्वारा रसौषधिओं की तीन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है ।

१. रसौषधिओं को अल्पमात्रा में प्रयोग किया जाता है ।
२. रसौषधिओं को खाने में कोई अरुचिकर स्वाद बाधक नहीं है ।
३. रसौषधियाँ शीघ्र प्रभावकारी है । अर्थात् इनमें रोगघ्नता शक्ति तीव्र है । आचार्यों ने कहा भी है ।

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः ॥

(रसरत्नसमु० २८ । रसेन्द्रसारसंग्रह १)

अन्य आचार्यों ने भी ऐसा ही कहा है ।

अल्पा हि मात्रा विपुला गुणाश्च सद्यो हि तद्दीपनपाचनं च ।
यस्यास्ति तं चेन्न भजन्ति मर्त्यास्ते पूर्वजन्मार्जितपापमूढाः ॥
(रसेन्द्रचूड़ामणिः १।३३)

यह तो आप सबों को सम्यक्तया विदित ही है कि आयुर्वेद सामान्य रोगों की चिकित्सा के अतिरिक्त नैष्ठिकी चिकित्सा के लिये प्रसिद्ध है, किन्तु यह रसशास्त्र पुरुषार्थ चतुष्टय के लिये सुप्रसिद्ध है । इसके सिद्धान्त दो आधारों पर स्थिर है ।

१. देहवाद-- (देहवेध = अजर-अमर दीर्घजीवी होना)
२. लोहवाद--(लोहवेध = स्वर्णादि निर्माण)

आचार्य भैरवानन्द ने कहा है कि--

यथा लोहे तथा देहे कर्त्तव्यः सूतकः सदा ।
समानं कुरुते देवि ! प्रविशन् देहलोहयोः ॥
पूर्वं लोहे परीक्षेत ततो देहे प्रयोजयेत् । (रसार्णवम्)

रसशास्त्र से धर्मार्थकाममोक्ष की प्राप्ति

१. धर्मप्राप्ति—सन्निपात-यक्ष्मा-कुष्ठादि विभिन्न असाध्य रोगों की चिकित्सा कर नवजीवन प्रदान करने से चिकित्सक को धर्म की प्राप्ति होती है ।

२. अर्थप्राप्ति—बड़े-बड़े धनिकों की चिकित्सोपरान्त रोगमुक्ति के पश्चात् प्रचुर मात्रा में धन की प्राप्ति होती है ।

३. कामप्राप्ति—रसायन-वाजीकरण रसौषधिओं के सेवन से प्रबल वेग से प्रमदाओं का सेवन तथा क्लीबादि रोगिओं को इसके योग्य बनाना कि वह स्त्रियों का सदुपयोग कर सके ।

४. मोक्षप्राप्ति—षड्दर्शन के अतिरिक्त विलक्षण रीति से पारद के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है । एतदर्थ रसार्णवादि प्राचीन रसग्रन्थों में पारद को बुभुक्षित एवं जारणोपरान्त विधि पूर्वक सेवन करने से स्थिरदेह (देहवेध) के पश्चात् निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसा वर्णन उपलब्ध है । इसके लिए रससिद्धों को समझें ।

अधुना उपर्युक्त दोनों वेधों की क्रियाएँ लुप्तप्राय हो गई हैं । १३ वीं शती के बाद रसशास्त्र का उपयोग प्रायः चिकित्सार्थ ही

होता चला आ रहा है । इसी क्रम में अनेक रसग्रन्थों के साथ-साथ आचार्य बिन्दु कृत रसपद्धति नामक यह लघु रसग्रन्थ भी आपके समक्ष प्रस्तुत है ।

आचार्य बिन्दु और उनकी रसपद्धतिः

रसपद्धति नामक यह लघु रसग्रन्थ आचार्य श्री बिन्दु द्वारा लिखा गया है । ऐसा इस ग्रन्थ के प्रथम श्लोक से ज्ञात होता है । सम्भवतः यह ग्रन्थ १५ वीं शताब्दी में लिखा गया है । यह ग्रन्थ मात्र २३१ श्लोकों में ही पूर्ण है । इस ग्रन्थ के अधिकांश श्लोक "शार्दूलविक्रीडित" छन्द के सुललित पद्यों में हैं इसके अतिरिक्त एक-दो स्थलों पर शिखरिणी और अनुष्टुपादि छन्दों का भी उपयोग किया गया है ।

वैद्यप्रवर श्री यादवजी आचार्य ने आचार्य बिन्दु को महाराष्ट्र क्षेत्र के निवासी होने का अनुमान लगाया है क्योंकि इस ग्रन्थ के १० वें श्लोक में "क्ष्माशिग्रु" शब्द का प्रयोग हुआ है जो मराठी क्षेत्रीय है और भी अनेक शब्द मराठी हैं, अतः यह सम्भव है ।

इस ग्रन्थ में पारद के संस्कार-शोधन-जारण-सारण-क्रामण, मूर्च्छना के विभिन्न प्रकार तथा महारस, उपरस-रत्नोपरत्न तथा सभी धातुओं का वर्णन--शोधन-मारण का विधान बताया गया है । इस ग्रन्थ में दुर्लभ एवं अत्युपयोगी ४९ रसयोगों के निर्माण का विशद वर्णन किया गया है । इस ग्रन्थ की संस्कृत व्याख्या विद्वान् वैद्यवर आचार्य महादेव के द्वारा की गयी थी । इस व्याख्या की विशेषता यह रही है कि मूलग्रन्थ में जिन विषयों का प्रतिपादन लेखक ने नहीं किया है उसे विद्वान् व्याख्याकार ने कई अन्य ग्रन्थों से लाकर बड़ी कुशलता से परिपूर्ण किया है । आचार्य महादेव आचार्य बिन्दु के पुत्र थे, ऐसा वैद्यवर श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने इस ग्रन्थ की भूमिका में कही थी । वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने १९२५ ई० में इस ग्रन्थ की कई मूल प्रतियों को मिलाकर संशोधित रूप में निर्णय सागर प्रेस, बम्बई द्वारा "रसपद्धतिः और लोहसर्वस्वम्" नामक दो लघु रसग्रन्थ एक ही पुटक में प्रकाशित करवाया था । आचार्य यादवजी ने अपनी भूमिका में यह भी लिखा है कि उन्हें रसपद्धतिः संशोधनार्थ तीन मातृका प्रति तीन स्थानों से मिली थी ।

१. बीकानेर-राजकीय संस्कृत पुस्तकालय ।
२. वैद्यवर श्री कृष्ण शास्त्री देवधर-नासिक द्वारा ।
३. पुण्यपत्तनस्थ (पूना) भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधनालय ।

बीकानेर से प्राप्त पुस्तक की पुष्पिका में लिखा था कि—

"सोऽयं महादेवो बिन्दु तनय इति"

इन तीनों पुस्तकों में बहुत सारी अशुद्धियाँ थी और बीच-बीच के पाठ भी खण्डित थे। इन तीनों पुस्तकों को मिलाकर अपनी बुद्धि के अनुसार श्री यादवजी ने संशोधित कर प्रकाशित करवाया था। आचार्य यादवजी के द्वारा अनेक रसग्रन्थों को संशोधन कर प्रकाशित करने का कार्य स्तुत्य है। एतदर्थ रसशास्त्रपरिवार उनका ऋणी है।

१६२५ ई० में प्रकाशित यह रसपद्धतिः इधर ३० वर्षों से बाजार में अनुपलब्ध थी, कहीं-कहीं प्रमुख पुस्तकालयों में ही देखने को मिलती है।

रसपद्धतिः रसशास्त्र का एक लघु रसग्रन्थ है किन्तु इसकी भाषा शैली बड़ी दुरूह है। इस ग्रन्थ में कुल २३१ श्लोक है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में चिकित्सा के तीन भेद (१. दैवी, २. मानुषी, ३. आसुरी) बताकर दैवी चिकित्सा (पारद + गन्धक द्वारा चिकित्सा) का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। पारद के आठ संस्कार एवं जारण-सारण-क्रामण-वेध संस्कार तथा शोधन मूर्च्छना-रसकर्पूर-रससिन्दूर निर्माण विधि का वर्णन किया गया है। स्वर्णादि दश धातुओं स्वर्ण-रजत ताम्र लोह-नाग-वङ्ग और मिश्र लोहादि धातुओं का शोधन-मारण और गुणों का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ में आचार्यश्री ने एक बड़ी अच्छी बात कही है कि रजत और नाग भस्मों का अकेला प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिये। महारसवर्ग में केवल छः द्रव्यों (वैक्रान्त-अभ्रक-शिलाजतु-चपल-माक्षिक-तुत्थ) का ही वर्णन किया है। जब कि अन्य आचार्यों ने आठ द्रव्यों को पढ़ा है। इसी प्रकार उपरसों में गन्धक-ताल-मनःशिला तीन ही द्रव्यों को पढ़ा है। इसी प्रकार रत्नों में केवल हीरक और मोती का ही विशद विवेचन किया है। किन्तु ग्रहानुसार ९ रत्नों का उल्लेख किया है। जिन विषयों का वर्णन लेखक ने नहीं किया है उसे अन्य ग्रन्थों से लाकर विद्वान् व्याख्याकार ने अपनी विशद व्याख्या में पूर्ण किया है।

आचार्य श्री ने इन नव रत्नों के अतिरिक्त संसार के अन्य सभी पत्थरों को उपरत्नवर्ग में पढ़ा है।

आचार्य श्री बिन्दु ने हीरा और मुक्ता की उत्पत्ति-भेद-परीक्षा विधि-परीक्षकसंगोष्ठी-परीक्षकों के ज्ञान-मूल्य का ज्ञान-रत्नों के दोष-गुणादि का विस्तार से वर्णन किया है। ऐसा सम्भवतः यह प्रथम रसग्रन्थ है। शेष सात रत्नों का कोई उल्लेख नहीं है और नहीं किन्हीं रत्नों के शोधन-मारण ही बताया गया है। इसके अतिरिक्त-रक्तपित्त-श्वास-कास-राजयक्ष्मा और प्रमेह रोग का चिकित्सा सूत्र एवं विधि का वर्णन भी किया गया है। ततः आचार्य श्री बिन्दु ने ज्वरादि विभिन्न रोग नाशनार्थ अत्युपयोगी एवं दुर्लभ ४९ रसयोगों का विस्तार से वर्णन किया है।

यद्यपि रसपद्धति लघु रसग्रन्थ है तथापि अपने आप में पूर्ण है एवं बहुत ही क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग इसमें किया गया है। मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार श्लोकों के स्थान में कुछ परिवर्तन भी किया है जैसे पारद के प्रकरण में उपरसों का वर्णन लोहों का वर्णन आदि विसंगतियाँ, थीं जिन्हें मैंने अलग-अलग व्यवस्थित किया है। कुछ पारद के अंश अलग-थलग थे जिन्हें मैंने एकत्र नियोजित किया है। इसके लिये विद्वान् पाठक मुझे क्षमा करेंगे। कुछ शब्दों और वाक्यों का संशोधन भी मैंने किया है।

अनुवाद कार्य में मैंने कुछ दुरूह द्रव्यों को अपनी अज्ञानतावश यथावत् छोड़ दिया है जिसे विद्वान् पाठक सुधारने की कृपा करें।

इस अनुवाद कार्य में मैंने गुरुवर्य आचार्य प्रियव्रत शर्मा जी से समय-समय पर अनेक बार सहायता ली है तथा द्रव्यों के निर्णय में उनके विशाल ज्ञान का लाभ मैंने उठाया है। अतः उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। आशा है कि आचार्यश्री का स्नेह हमपर हमेशा पूर्ववत् बना रहेगा। अन्त में श्रीविश्वनाथपुस्तकालय (गोयनका लाइब्रेरी) वाराणसी के अध्यक्ष पं० श्री देवमणि याज्ञिक जी को धन्यवाद देता हूँ जिनके सौजन्य से यह ग्रन्थ मुझे प्रूफ देखने के लिये उपलब्ध हो सका है।

इस अनुवाद कार्य में मैंने आचार्य डॉ० श्रीराम शास्त्री Ph. D. से भी सहायता ली है, एतदर्थ में उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

यद्यपि प्रेस कीअनियमितता से यह छोटा ग्रन्थ प्रायः दो वर्षों में छप पाया है तथापि कठिनाइओं के बावजूद भी आपके सामने यह प्रस्तुत है। अतः चौखम्भा ओरियण्टालिया के सञ्चालक श्री ब्रजभवन दास (श्री मन्नुभाई) धन्यवाद के पात्र हैं, साथ ही प्राचीन एवं अत्युपयोगी एवं लुप्तप्रायः ग्रन्थों के प्रकाशन में आपकी रुचि भी प्रकारान्तक से आयुर्वेद की सेवा एवं श्री वृद्धि के लिये महत्त्वपूर्ण हैं। आशा है कि प्राचीन एवं लुप्तप्रायः ग्रन्थों के प्रकाशन में आपकी रुचि बढ़ती ही रहेगी।

प्रूफ संशोधन में कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं, आशा है विद्वान् पाठक उसे सुधार कर पढ़ेंगे और मुझे क्षमा करेंगे।

मकरसंक्रान्ति
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी—२
दिनाङ्क १४ जनवरी १९८७ ई०

रसशास्त्रानुचर
सिद्धिनन्दन मिश्र

विषय-सूचि

॥ ओम् नमःशिवाय ॥

रसपद्धतिः

टीकाकार का मङ्गलाचरण

रसेश्वरं शिवं ध्यात्वा मिश्रः श्रीसिद्धिनन्दनः ।
रसपद्धतिः तत्वार्थं व्याख्यां वितनुते नवाम् ॥ १

निवासः कैलासो हिमशिखरगौरीविहरणं
त्रिशूलप्रोज्ज्वालं त्रिपुरदहनं सङ्करकरम् ।
करालं भक्तानां प्रलयभयकाल शरणदं
प्रणौमि श्रीरुद्रंप्रकृतिविकरालं त्रिनयनम् ॥ २

दरिद्राणां दैन्यं विगमयति दूरं द्रुततरं
कुबेराणां सत्तां गमयति समीपं करतले ।
ददाति ब्रह्मत्वं हरिहरसमत्वं च भजतां
जरामृत्युध्वंसी गिरिशरसराजो विजयते ॥ ३

समेषां रोगाणां प्रहरति समूलं तरुवरं
सुमेरूणां दानं वितरति सुवर्णं नवनिधिम् ।
सदा शैवं धर्मं शिवतनुजरूपं शिवसमं
रसेन्द्रं तं वन्दे प्रणवमहिमानं बलकरम् ॥ ४

प्रविश्य संशोध्य च तत्त्वगौरवं
रहस्य टीकां धृतसारमल्लिकाम् ।
तनोति मिश्रो मगसिद्धिनन्दनो
रसस्य सिद्ध्यै रसपद्धतेर्विदाम् ॥

मङ्गलाचरणम्

नत्वा निष्कपटं निरञ्जनधिया निर्विघ्नमीशप्रिया-
मायुर्वेदविदां मुदे सुभिषजामेषा मया विन्दुना ।
ग्रन्थेभ्यः परिगृह्य सारमखिलं सूत्रैश्चिकित्सासखी
वृक्षेभ्यः स्रगिव प्रसूननिचयैः संग्रथ्यते पद्धतिः ॥ १ ॥

निर्विघ्न ग्रन्थ समाप्ति के लिए छल कपट रहित, निर्मल बुद्धि से भगवान् शङ्कर की प्रियतमा माता पार्वती जी को प्रणाम करके, आयुर्वेद के निष्णात श्रेष्ठ भिषगाचार्यों को परमानन्द की प्राप्ति के लिए, वृक्षों से चुनकर पुष्प समूहों से ग्रथित माला के समान अनेक ग्रन्थों से तथा सूत्रों से सम्पूर्ण सार को पूर्णतया संग्रहीत कर यह चिकित्सा सखी "रसपद्धति" नामक इस रसग्रन्थ का सम्यग् रूप से मुझ आचार्य "विन्दु" के द्वारा निर्माण किया जाता है।

विमर्श—रसपद्धतिः नामक यह लघु रसग्रन्थ रसशास्त्र के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करता हुआ रसौषधियों द्वारा सम्पूर्ण रोगों की चिकित्सा बताता है। यह ग्रन्थ मात्र २३१ श्लोकों में पूर्ण है। आचार्य ने इस ग्रन्थ में मुख्यतया "शार्दूल-विक्रीडित" छन्द का प्रयोग किया है। ऐसे एकाध स्थान पर शिखरिणी तथा अनुष्टुप छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। इसमें ४८ रसयोगों का सम्यक् संकलन भी किया गया है।

त्रिविध चिकित्सा

सा दैवी प्रथमा सुसंस्कृतरसैर्या निर्मिता सद्रसै-
श्चूर्णस्नेहकषायलेहरचिता स्यान्मानवी मध्यमा।
शस्त्रच्छेदनलास्यलक्ष्मणकृताचाराधमा साऽऽसुरी-
त्यायुर्वेदरहस्यमेतदखिलं तिस्रश्चिकित्सा मताः॥ २॥

आचार्य ने चिकित्सा के तीन भेद बताये हैं—

१. दैवी चिकित्सा	२. मानवी चिकित्सा	३. आसुरी चिकित्सा
उत्तमा	मध्यमा	अधमा

१. **दैवी चिकित्सा**—अच्छी तरह से पारद में आठ या अट्ठारह संस्कारोपरान्त बनायी गई औषध एवं रसोपरससाधारणरसरत्नोपरत्न-लोहादि को शोधन-मारणोपरान्त रस-रसायन रससिन्दूर-मकरध्वज-आरोग्यवर्धनीरस-आनन्दभैरवरस-ज्वरांकुश रस आदि औषधियाँ बनाकर चिकित्सा करना दैवी चिकित्सा है। यही उत्तम चिकित्सा है।

२. **मानवी चिकित्सा**—विभिन्न वानस्पतिक द्रव्यों के मूल-त्वक्-पत्र-पुष्प-फल-कन्द-सारादि अङ्गों को कूट पीसकर चूर्ण-तैल-वटी-कषाय-अवलेहादि औषधों को निर्माण कर चिकित्सा करना मानवी चिकित्सा है। यह मध्यम चिकित्सा है।

३. **आसुरी चिकित्सा**—शस्त्रों द्वारा चीर-फाड़कर रोगों की चिकित्सा की जाती है। बहुत सारे रोग भी शस्त्रसाध्य हैं। किन्तु चीरे गये उन स्थानों पर विकृति सूचक चिह्न शेष रह जाते हैं। शस्त्रों द्वारा चिकित्सा करने पर रोगी के

शरीर से अत्यधिक रक्तस्राव होता है, वेदना होती है, रोगी अत्यधिक चिल्लाता है, वेहोश हो जाता है, चिकित्सा क्रम में (ऑपरेशन के बाद) रोगी मर भी जाता है, रक्तस्राव, पूयादिस्राव के कारण ही इस चिकित्सा को आसुरी चिकित्सा कही जाती है। यह अधम चिकित्सा है।

यही सम्पूर्ण आयुर्वेद का रहस्य रूप में चिकित्सात्रय का निरूपण किया गया है।

विमर्श—अन्य रसाचार्य भी उत्तम-मध्यम-एवं अधम भेद से वैद्यों के तीन प्रकार बताये हैं। जिसमें रसवैद्य को श्रेष्ठ वैद्य कहा है। यथा—

उत्तमो रसवैद्यस्तु मध्यमो मूलिकादिभिः।
अधमः शस्त्रदाहाभ्यामित्थं वैद्यास्त्रिधा मताः॥

दैवी चिकित्सा

तत्रादावभिधीयते बहुविधा दैवी चिकित्साऽत्र च
प्राक्सत्पारदकर्म साङ्गममलं पश्चाच्च ते ते रसाः।
मुख्यत्वाद्रसकर्मणि प्रियतया पृथ्वीपतीनां तथा
सम्यक्सर्वरसैककारणतयाऽप्यभ्यर्हितत्वादपि॥ ३॥

उपर्युक्त तीनों चिकित्सा के प्रारम्भ में दैवी चिकित्सा (पारदादि रसौषधियों से चिकित्सा) के विषय में कहते हैं। यह दैवी चिकित्सा अनेक प्रकार की है। अब उस पारदादि रसौषधियों द्वारा चिकित्सा के पहले पारद कर्म अर्थात् पारद के अट्ठारह संस्कार हैं, उनमें प्रथमतः आठ संस्कार एवं इस कर्म के अङ्ग स्वरूप यन्त्र-मूषा-पुट-कोष्ठ्यादि तथा इनके दोषनिर्हरणादि (शोधनादि) के बाद उन-उन यौगिक रसों मृत्युञ्जयरस-राजमृगाङ्करसादि को कहूँगा। इन सबों में प्रमुख रूप से पारद के दोषों को हटाना अर्थात् पारद शोधन कर उनसे श्रेष्ठ औषधों का निर्माण करना राजाओं को अत्यधिक प्रिय है। क्योंकि अशुद्ध पारद सेवन अनिष्ट कारक है, आचार्यों ने कहा भी है कि "अशुद्धो मारयति ध्रुवम्" के अनुसार दोष निर्हरण करना अत्यावश्यक है। साथ ही राजाओं के लिए श्रेष्ठ वाजीकरण रसौषधि निर्माण कर उनमें कामेच्छा उद्दीप्त कर सुखादि कर्म से सन्तुष्ट करना अभीष्ट है। इन रसौषधिओं के निर्माण में पारद ही एक कारण है। क्योंकि वह पारद भी श्रेष्ठ यागादि के तरह धर्मार्थकाममोक्ष (चतुर्वर्ग) प्रद है।

———

पारद का वर्णन

श्यामोऽन्तर्बहिरुज्ज्वलः किल रसः··· ············

आचार्यश्री ने पारद के स्वरूप का संक्षिप्त परिचय दिया है। पारद को जब एक काचपत्र में या अन्य किसी पात्र में रखकर देखते हैं तो इसके अन्तःकरण से श्यामवर्ण दिखाई देता है और बाहर से उज्ज्वल वर्ण दिखाई देता है।

विमर्श—आचार्य माधव एवं आचार्य शालीनाथ ने भी शुद्ध पारद के स्वरूप का वर्णन अपने अपने ग्रन्थ में इसी प्रकार किया है।

यथा—अन्तः सुनीलो बहिरुज्ज्वलो यो मध्याह्नसूर्यप्रतिमप्रकाशः।
शस्तोऽथ, धूम्रः परिपाण्डुरश्च चित्रो न योज्यो रसकर्मसिद्धचै॥
आयुर्वेदप्रकाश १।१३९ रसमञ्जरी

अपि च—हीरकद्युतिसंकाशं प्रमाणाद्धीरकात् क्वचित्।
क्वचित्पर्पटिकाभासं गलद्रूप्यनिभं क्वचित्॥
(रसकामधेनुः २।३।३१३)

अन्यश्च—स च मुख्यो रसेन्द्रोऽस्ति नीलोऽन्तर्बहिरुज्ज्वलः॥ (रसमानस)

———

पारद दोष एवं तज्जन्य रोग

······························सप्तात्र दोषा अमी।
नागो वङ्गविषौ मलश्चपलता वह्निर्गिरेर्जन्मजाः।
गण्डश्वित्रकमृत्युवान्तिचलतासन्तापजाडचादय-
श्चैतेभ्यः क्रमशो भवन्ति विविधा रोगा दुराराधनाः॥ ४॥

यहाँ पर आचार्य ने पारद के सात दोष बताये हैं। यथा—

१. नाग, २. वङ्ग, ३. विष, ४. मल, ५. चपलता, ६. वह्नि, एवं ७. गिरि नामक सात दोष पारद में स्वाभाविक रूप में रहते हैं। इन प्रत्येक दोष से क्रमशः एक एक दुःसाध्य रोग उत्पन्न होता है। यथा—१. नाग से गलगण्ड, २. वङ्ग से श्वित्रकुष्ठ, ३. विष से मृत्यु, ४. मल से वमन, ५. चपलता से चलता (कम्पादि), ६. वह्नि से सन्ताप और ७. गिरि दोष से जडतारोग उत्पन्न होता है।

विमर्श—दोषों के विषय में कुछ अन्य आचार्यों के मत भी स्पष्टीकरणार्थं दिये जाते हैं। आचार्य वाग्भट ने इस सम्बन्ध में पारद के १२ दोष बताये हैं।

यथा—

विषं वह्निर्मलश्चेति दोषा नैसर्गिकास्त्रयः।
रसे मरणसन्तापमूर्च्छानां हेतवः क्रमात्॥१७॥
यौगिकौ नागवङ्गौ द्वौ तौ जाडचाध्मानकुर्वतौ।
औपाधिकाः पुनश्चान्ये कीर्तिताः सप्त कञ्चुकाः॥१८॥
भूमिजा गिरिजा वार्जा द्वे च द्वे नागवङ्गजे।
द्वादशैते रसे दोषाः प्रोक्ता रसविशारदैः॥१९॥
पर्पटी पाटिनी भेदी द्रावी मलकरी तथा।
अन्धकारी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्त कञ्चुकाः॥२०॥
(रसरत्नसमु० ११)

अपि च—

पारदस्य त्रयो दोषा विषं वह्निर्मलस्तथा।
विषेण सविषं विद्यात् वह्नौ कुष्ठी भवेन्नरः॥
मलेनोदररोगी स्यात् म्रियते च रसायने।(रसार्णव १०।३१)

अपि च—

दोषाः पञ्च समुद्दिष्टाः पारदानां भिषग्वरैः॥२५॥
मलो विषं तथा वह्निर्मदो दर्पश्च वै क्रमात्।
मूर्च्छां मृत्युं मदश्चैव स्फोटं कुर्युश्शिरोभ्रमम्॥२६॥
(रसप्रकाश सुधा० १)

अपि च—

मलं विषं वह्निर्गुरुत्वचापलं नैसर्गिकं दोषमुशन्ति तज्ज्ञाः।
औपाधिकौ द्वौ त्रपुनागसम्भवौ रसेन्द्रराजे कथयन्ति वैद्याः॥१७॥
मलेन मूर्च्छा शिखिना च दाहं विषेण मृत्युः प्रवदन्ति सन्तः।
गुरुत्वदोषेण करोति शूलं न तिष्ठते तच्चपलत्वदोषात्॥१८॥
द्वौ नागवङ्गौ प्रचलौ च दोषौ स्युस्तत्प्रभावात् गलगण्डगुल्माः।
अबद्धसूतं लिहितं प्रमादात् करोति कुष्ठं प्रबलं रसेन्द्रः॥१९॥
(रसेन्द्रमंगल १)

अन्यच्च—

उड्डीनत्वं च कौटिल्यमनावर्तश्च सङ्करम्।
षण्ढत्वं वह्निकारित्वं समलत्वं गुरुत्वकम्॥३॥
सविषश्चेति सूतस्य नव दोषाः प्रकीर्तिताः।
उड्डीनदोषे शूलः स्यात् कौटिल्ये स्यात्कपालरुक्॥४॥
अनावर्ते भ्रमोद्वेगः सङ्करे दोषसञ्चयः।
षण्ढत्वे स्यादसन्तानो वह्निदाहादिकुष्ठकृत्॥५॥

मलत्वे वान्तिमूर्च्छादि महोदरगतान्गदान् ।
गुरुत्वे जाड्यमूर्च्छे च विषे गात्रक्षयो भवेत् ।। (रसकौमुदी २।६)

पारद के आठ संस्कार

स्वेदो मर्दनमूर्च्छनोत्थिति ततः पातोऽपि भेदान्वितो
रोधः संयमनं प्रदीपनमिति स्पष्टाऽष्टधा संस्कृतिः ।
अस्याः सर्वरसोपयोगिकतया त्वन्या न विन्यस्यते
ग्रन्थेऽस्मिन्प्रकृतोपयोगविरहाद्विस्तारभीत्याऽथवा ।। ५ ।।

आचार्य विन्दु ने यहाँ पर आठ संस्कार ही गिनाया है। यद्यपि आचार्यश्री ने इसी पुस्तक में जारणा-चारणा-सारणा-वेधादि के प्रकार भी बतलाया है तथापि उसे यहाँ पर नहीं गिनाया गया है। अस्तु ! वे आठ संस्कार स्पष्ट रूप से निम्नलिखित हैं।

१. स्वेदन	२. मर्दन	३. मूर्च्छन	४. उत्थापन
५. पातन (त्रिधा)	६. रोधन	७. संयमन	८. प्रदीपन

इस ग्रन्थ में अन्य संस्कारों को नहीं कहा जा रहा है। क्योंकि ये आठ संस्कार ही सभी रसौषधियों के निर्माण में उपयोगी हैं। शेष १० संस्कार धातुवाद के लिए उपयोगी हैं। अथवा अट्ठारह संस्कारों को कहने से ग्रन्थ विस्तार ही होगा।

विमर्श—अन्य ग्रन्थों में आचार्यों ने अलग-अलग १८ एवं १६ अथवा ८ संस्कारों का वर्णन किया है। यथा—

स्यात्स्वेदनं तदनु मर्दनमूर्च्छनञ्च उत्थापनं पतनरोधनियामनानि ।
संदीपनं गगनभक्षणमानमत्र संचारणा गर्भगता द्रुतिश्च ।।१२।।
बाह्यद्रुतिः सूतकजारणास्याद् रागस्तथा सारणकर्मपश्चात् ।
संक्रामणं वेधविधिः शरीरे योगस्तथाऽष्टादशधाऽत्र कर्म ।।१३।।
(र. र. समु. ११)

अपि च—

स्वेदनमर्दनमूर्च्छोत्थापनपातननिरोधनियमाश्च ।
दीपनगगनग्रासप्रमाणमथ चारणविधानं च ।। १ ।।
गर्भद्रुतिबाह्यद्रुतिजारणरसरागसारणं चैव ।
क्रामणवेधौ भक्षणमष्टादशधेति रसकर्म ।। २ ।।
(र. हृ. त. २)

अपि च—

स्वेदनं मर्दनं चैव मूर्च्छनं स्यात्तदुत्थितम् ।
पातनं शोधनं सम्यग् नियमश्चाथ दीपनम् ।। २२ ।।
तथाऽभ्रकग्रासमानं चारणं च क्रमेण हि ।
गर्भद्रुतिर्बाह्यद्रुतिद्रुतिर्जारणकं तथा ।। २३ ।।
रञ्जनं सारणं प्रोक्तं क्रामणं वेधकर्म च ।
सेवनं पारदस्याथ कर्माण्यष्टादशैव हि ।। २४ ।।
(रसप्रकाशसुधाकर १)

अपि च—

अष्टादशैव संस्कारा ऊनविंशतिकाः क्वचित् ।
सम्प्रोक्ता रसराजस्य वसुसंख्याः क्वचिन्मताः ।।३२।।
शेष रसरत्न समुच्चय जैसा ही ! (आयु. प्रकाश १)

अपि च— स्वेदनं मर्दनञ्चैव मूर्च्छनोत्थापने तथा ।
पातनत्रितयश्चाथ बोधनं सुनियामकम् ।।४४।।
सुप्रदीपनमित्यष्टौ प्रोक्ताः सर्वोपयोगिनः ।
संस्कारा रसराजस्य रसशास्त्रविशारदैः ।। (रसतरंगिणी ५।४५)

१—स्वेदनसंस्कार

क्वाथे त्र्यूषणकन्यकानलवरामीनोरगाक्षीस्नुहां
क्वाथ्यादष्टगुणारनालमिलितं तत्षोडशांशीकृतम् ।
बद्ध्वा द्वित्रिपुटे पटे पटुतरं दोलाधिरूढं रसं
दोषोत्क्लेदकृते शनैस्त्रिदिवसं मृद्वग्निना स्वेदयेत् ।। ६ ।।

सोंठ, पीपर, मरिच, घृतकुमारी, चित्रक, आमला, हरीतकी विभीतक, मीनाक्षी, सर्पाक्षी और स्नुही ये ११ द्रव्य प्रत्येक पारद के षोडशांश लें। यथा—स्वेदनार्थ पारद एक किलो तथा अन्य प्रत्येक द्रव्य ६०-६० ग्राम लेना चाहिए। अब मिलित ११ द्रव्यों को (६६० ग्राम) तौलकर कूटें और अष्टगुण (५.५०० ग्राम) जल देकर क्वाथ करें। चतुर्थांशावशेष (१·२०० ग्राम) शेष रहने पर छान लें। अब उस क्वाथ से आठ गुना अर्थात् १० किलो काञ्जी मिलायें और ५ किलो मिलित काञ्जी उस दोलायन्त्र में भरें। मोटे नये वस्त्र को दुगुना-चौगुना करके इसमें १ किलो पारद को रखें और पोटली बनाकर दोलायन्त्र में लटकाकर चूल्हा पर चढ़ावें तथा पारद के दोषों को उत्क्लेदनार्थ मृदु अग्नि पर शनैः शनैः तीन दिनों तक स्वेदन करें। पुन पुनः काञ्जी देते रहें।

विमर्श—चौथे दिन पोट्टली से पारद निकालकर उष्ण जल से या उष्ण काञ्जी धोकर पुनः मर्दन संस्कार करें। अन्य आचार्यों ने भी कहा है।

क्षाराम्लैरौषधैर्वाऽपि दोलायन्त्रे स्थितस्य हि।
पचनं स्वेदनाख्यं स्यान्मलशैथिल्यकारकम् ॥५९॥
(र. र. समु. ८)

भगवत्पादाचार्य ने कहा भी है।

आसुरिपटुकटुकत्रयचित्रार्द्रकमूलकैः कलांशैश्च।
सूतस्य काञ्जिकेन त्रिदिनं मृदुवह्निना स्वेदः॥ ३ (र. हृ. त. २)

अपि च—

ततः स्वेदनकं कुर्याद्यथावत्तु शुभे दिने।
सूतस्य स्वेदनं कार्यं दोलायन्त्रेण वार्तिकैः॥३०॥
क्षारौ चाम्लेन सहितौ तथा च पटुपञ्चकम्।
त्रिकटु त्रिफला चैव चित्रकेण समन्विता॥३१॥
पुष्पकासीससौराष्ट्र्यौ सर्वैरेव तु मर्दयेत्।
औषधानि समांशानि रसादष्टमभागतः॥३२॥
कृत्वान्धमूषां तेषां तु तन्मध्ये पारदं क्षिपेत्।
त्रिगुणेन सवस्त्रेण भूर्जपत्रेण वेष्टयेत्॥३३॥
गुणेन खण्डे काष्ठस्य बद्ध्वा तु रसपोटलीम्।
लम्बायमानां माण्डे तु तुषवारिप्रपूरिते॥३४॥
त्रिदिनं स्वेदयेत्सम्यक् स्वेदनं तदुदीरितम्॥
(रसप्रकाशसुधाकर १)

अपि च— आसुरीलवणव्योषचित्रकार्द्रकमूलकैः।
दोलायां स्वेदयेद्देवि! त्रिदिनं मृदुनाग्निना॥ (रसार्णव १०।४१)

अपि च— त्र्यूषणं लवणासूर्यौ चित्रकार्द्रकमूलकम्।
क्षिप्त्वा सूतो मुहुः स्वेद्यः काञ्जिकेन दिनत्रयम्॥
(र. र. समु. ११।२६)

अपि च— आयसे मृन्मये पात्रे स्वेदयेच्च दिनत्रयम्।
लवणत्रिकटुक्षारैः सर्वमर्द्यमजाजले॥२॥
क्षालयित्वाऽथ त्रिदिनं मर्दयेत्स्वेदनौषधैः।
राजिकाशिग्रुपत्रैश्च कुर्यात्कुण्डलिकां शुभाम्॥३॥
रसं मध्ये विनिक्षिप्य वस्त्रे बद्ध्वाऽथ पोटलीम्।
क्षाराम्लमूत्रवर्गेण स्वेदयेच्च दिनत्रयम्॥४॥
(रसचिन्तामणिः ५)

अपि च—

पटुं राजीं त्रिकटुकं मूलकं चित्रकं वराम्।१९॥
पुनर्नवां मेषशृङ्गीं मेघनादं दुरालभाम्॥
आर्द्रकं रजनीं नागबलां च नवसारकम्।२०॥
समं धान्याम्लकैः पिष्ट्वा श्लक्ष्णं वस्त्रे प्रलेपयेत्॥
यावदांगुलिमात्रं च तस्मिन् पूर्वरसं क्षिपेत्।२१॥
तद् बद्ध्वा ताम्रजे पात्रे क्षिप्त्वा धान्याम्लपूरिते॥
घटे दोलाख्ययन्त्रे च स्वेदयेत् तमहर्निशम्।२२॥
तमुद्धृत्य पुनस्सोष्णैरारनालैश्शरावके॥
प्रक्षालयेत् सूतराजमेव कुर्यात् त्रिसप्तधा॥२३॥
(आनन्दकन्द अमृ. ४)

अपि च—

रसं चतुर्गुणे वस्त्रे बद्ध्वा दोलाकृतं पचेत्।
दिनं व्योषवरावह्निकन्याकल्केषु काञ्जिके॥
दोषशेषापनुत्यर्थमिदं स्वेदनमुच्यते॥(रसेन्द्रचिन्ता. ३।१७)

अपि च—

रसस्य षोडशांशेन द्रव्यं युञ्ज्यात् पृथक् पृथक्।
द्रव्येष्वनुक्तमानेषु मतं मानमिदं बुधैः॥४७॥
त्रिदिनं स्वेदनाशक्तौ दिनमेकं निरन्तरम्॥
स्वेदयेद्रसराजं तु नातितीक्ष्णेन वह्निना॥
(आयु० प्रकाश १।४८)

२—मर्दनसंस्कार

कल्याणेऽह्नि सुशिक्षितेन भिषजा खल्वे विशालेतरे
सुस्निग्धोपलजन्मनि त्रिदिवसं जम्भाम्भसा सम्भृतैः।
ऊर्णाभस्मनिशानिशान्तवलभीधूमेष्टिकापांसुभिः
प्रत्येकं रसषोडशांशमिलितैर्मन्दं विमर्द्यो रसः॥ ७॥

शुभ नक्षत्र, तिथि, करण, योगादि से युक्त दिन में सुन्दर रीति से पारङ्गत एवं अच्छे गुरुओं द्वारा शिक्षित अर्थात् सम्पूर्ण रसशास्त्रों एवं अन्य शास्त्रों का सम्यक्तया अध्ययन किये हुये और रसशास्त्र का क्रियाभ्यास किये हुए वैद्य आचार्य की आज्ञा से, तथा सुस्निग्ध = अत्यन्त चिकने पत्थरों से निर्मित दो बडे एवं छोटे खरलों को लें। ततः ऊन की भस्म, हरिद्राचूर्ण, गृहधूम (निशान्तं = गृहं, तस्य

वलभी गोपानसी तत्रत्यः धूमः=गृहधूमः) ईंटा का चूर्ण ये चारों द्रव्यों का चूर्ण, प्रत्येक द्रव्य पारद से षोडशांश ग्रहण करें। पूर्वकृत् स्वेदन संस्कार से प्राप्त पारद ही यहाँ मर्दनसंस्कार के लिए ग्रहण करें। इसके बाद एक बडे खरल में पारद को रखें, एवं ऊन की भस्मादि चारों द्रव्यों को उस खरल में डालें और जम्बीरी निम्बू के स्वरस से भावित कर तीन दिनों तक लगातार मर्दन करें। जब खरल सूख जाय तो पुनः पुनः निम्बु स्वरस दे-देकर मर्दन करें।

विमर्श—प्राचीनाचार्यों ने भी इसी तरह से मर्दन बताया है। यथा—

धूमसारगुडव्योषरजनीसितसर्षपैः।
इष्टिकाकाञ्जिकोर्णाभिः त्रिदिनं मर्दयेत्ततः ॥४६॥
निर्मलो जायते सूत मत्प्रभावं प्रकाशयेत् ।।(रसार्णव १०।४७)

अपि च—

गुडदग्धोर्णलवणैर्मन्दिरधूमेष्टिकासुरीहितैः।
रसषोडशांशमानैः सकाञ्जिकैर्मर्दनं त्रिदिनम् ॥ (र. हृ. त. २।४)

अपि च—

अथ मर्दनकं कर्म येन शुद्धतमो रसः।
प्रजायते, विस्तरेण कथयामि यथातथम् ॥ ३६ ॥
खल्वे विमर्दयेत्सूतं दिनानि त्रीणि चैव हि।
अथ खल्वप्रमाणं हि वक्ष्यतेऽत्र मयाऽधुना ॥ ३७ ॥
कलांगुलस्तदायामश्चोत्सेधोऽपि नवांगुलः।
विस्तरेण तथा कुर्यान्निम्नत्वेन षडंगुलम् ॥ ३८ ॥
द्व्यंगुलः कण्ठविस्तारो मध्येऽतिमसृणीकृतः।
अर्धचन्द्राकृतिश्चापि मर्दकोऽत्र दशांगुलः ॥ ३९ ॥
सूतः पञ्चपलः तस्मिन् शोधनीयो भिषग्वरैः।
स्वेदनोद्दिष्टभैषज्यैर्मर्दयेत्काञ्जिकैस्त्र्यहम् ॥ ४० ॥
बहिर्मलविनाशाय रसराजं तु निश्चितम्।
उष्णकाञ्जिकतोयेन क्षालयेत्तदनन्तरम् ॥ ४१ (रसप्र. सुधा.१)

अपि च—

दग्धोर्णागृहधूमाब्जसर्षपैः सगुडेष्टकैः।
मर्द्यो रसः षोडशांशैस्त्र्यहं तद् वह्निशान्तये ॥(रसेन्द्रचूडा. १५।३७)

अपि च—

गृहधूमेष्टिकाचूर्णं तथा दधि गुडान्वितम्।
लवणासुरिसंयुक्तं क्षिप्त्वा सूतं विमर्दयेत् ॥२७॥

षोडशांशं प्रतिद्रव्यं सूतमानान्नियोजयेत्।
सूतं क्षिप्त्वा समं तेन दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥(र.र.समु.११।२८)

अपि च—

इष्टिकाचूर्णं लवणं गुडोर्णा राजिका तथा।
गृहधूमसमायुक्तं सूते दद्यात्कलांशिकम् ॥
मर्दयेत्त्रिदिनं सूतमम्लवर्गेण संयुतम् ॥(रसचिन्ता. ५।१)

अपि च—

ऊर्णा हरिद्रा पटुरिष्टकाम्लैः शुभारनालैर्गृहधूममिश्रैः।
सिद्धार्थराजी त्रिदिनानि खल्वे सम्मर्दनं सूतमुशन्ति सन्तः ॥३३॥
(रसेन्द्रमंगल १)

अन्यच्च—

अथातो मर्दनं कर्म वक्ष्यामि शृणु भैरवि ! ।२४॥
चूर्णादिपूर्ववद्द्रव्यं विशालां राजवृक्षकम् ॥
अङ्कोलं कृष्णधुत्तूरं त्रिकटुं च समं समम्।
सर्वं सूतकलांशश्च तप्तखल्वे रसं क्षिपेत् ॥२५॥
(आनन्दकन्द मृ. ४)

उपर्युक्त इन आचार्यों ने सामान्य खरल में पारद को क्षाराम्ल औषधों के साथ काञ्जी दे देकर तीन दिनों तक मर्दन करने को कहा गया है। किन्तु रससार के गोविन्दाचार्य ने तप्त खरल में मर्दन संस्कार में मर्दन करने को कहा है। यथा— प्रमर्दयेत् तप्तखल्वे रक्षितव्यं प्रयत्नतः। (रससार)

रसहृदयतन्त्र की टीका में भी तप्तखल्व का उल्लेख किया गया है। यथा—

वस्त्रैश्चतुर्गुणैर्बद्धः सूतः स्थाप्यः शुभेऽहनि।
लोहार्काश्मजखल्वे तु तप्तेष्वेव तु मर्दयेत् ॥२।४
(रस. हृ. तन्त्र की टीका)

———

३—मूर्च्छन संस्कार एवं ४— उत्थापन संस्कार

कामाताकटुकत्रययार्कपयसा कन्यानलोल्लासिना
सम्मूर्च्छ्योपरिपातयन्त्रविधिना ज्ञानी तमुत्थापयेत्।
अन्तर्वल्लयपराजिताजलकणासृष्टचम्बुजामानवी
पुष्पैरग्निसहं विधाय च परैरेनं त्रिधा पातयेत् ॥ ८ ॥

कामाता=काकमाची, सोंठ-पीपर-मरिच, अर्कदुग्ध, घृतकुमारी, अनल=चित्रकमूल ये सात द्रव्य लें। प्रत्येक द्रव्य पारद से षोडशांश ग्रहण करने का विधान पूर्ववत् है। मर्दन संस्कार से जो पारद प्राप्त हो, उसी का षोडशांश

ग्रहण करना यहाँ अभिप्रेत है। इन द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें, अर्क दुग्ध एवं कुमारी स्वरस को अलग से उसमें भावित कर खरल में पारद के साथ नष्टपिष्टि होने पर्यन्त तीन दिनों तक मर्दन करें। तदनन्तर कुशल रसशास्त्री वैद्य ऊर्ध्वपातन यन्त्र में उक्त नष्टपिष्टि हुये पारद को रख कर ऊर्ध्वपातन करें।

पुनः अन्तर्वल्ली=आकाशवल्ली (अमरवेल) अपराजिता पुष्प (श्वेत), जलपिप्पली पुष्प, या मुस्तक और पिप्पली भी लिया जा सकता है। सृष्टचम्बुज=सैन्धवयुक्तजल या समुद्रीजल, मानवी=स्फटिका पुष्प (आगपर फुलायी फिटकरी) ये पाँचों द्रव्यों के साथ पारद (ऊर्ध्वपातनोत्तर पारद) को पीस कर तीन बार ऊर्ध्वाधःतिर्यक् पातन करें।

आचार्य वाग्भट ने मूर्च्छन की परिभाषा निम्न प्रकार दी है। यथा—

मर्दनादिष्टभैषज्यैर्नष्टपिष्टत्वकारकम्।
तन्मूर्च्छनं हि वंगाहिभूजकञ्चुकनाशनम् ॥६१॥
स्वरूपस्य विनाशेन पिष्टत्वाद्बन्धनं हि यत्।
विप्रुषैर्वर्जितः सूतो नष्टपिष्टिः स उच्यते ॥
(रसरत्नसमु. ८।६३)

अन्य आचार्यों ने मूर्च्छन के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है।

यथा— गृहकन्या हरति मलं, त्रिफलाऽग्निं, चित्रकश्च विषम्।
तस्मादेभिर्मिश्रैर्वारान् सम्मूर्च्छयेत्सप्त ॥ (र. हृ. तं. २।६)

अपि च—
राजिकार्कपयः काकमाचिकामेषशृङ्गिरसकृष्णहेमजम्।
आरनालसहितं सुतापितं सप्तवारं रसराजमूर्च्छनम् ॥
(रसेन्द्रमंगल १।३४)

अपि च—
अतः परं प्रवक्ष्यामि पारदस्य तु मूर्च्छनम्।
मूर्च्छनं दोषविध्वंसि सप्तकञ्चुकनाशनम् ॥४२॥
स्वर्जिका यावशूकश्च तथा च पटुपञ्चकम्।
अम्लौषधानि सर्वाणि सूतेन सह मर्दयेत् ॥४३॥
खल्वे दिनत्रयं तावद्यावन्नष्टत्वमाप्नुयात्।
स्वरूपस्य विनाशेन मूर्च्छनं तदिहोच्यते ॥४४॥
निर्मलत्वमवाप्नोति ग्रन्थिभेदश्च जायते।
(रसप्रकाशसुधाकर. १)

अपि च— व्योषसौभाग्यसंयुक्तलकुचद्रावमर्दनात्।
मूर्च्छितस्त्रिदिनं सूतो मदं मुञ्चति दुर्धरम् ॥
(रसेन्द्रचूडामणि १५।३९)

अन्यच्च— स्नुह्यर्कोन्मत्तकन्याभिस्त्रिफला चित्रकेण च।
लवणेन समं सूतं मर्दयेन्मूर्च्छिते रसे ॥५॥
दोलास्वेदं प्रकुर्वीत क्षाराम्लमधुमूत्रकैः।
उत्थाप्य मूर्च्छयेत्पश्चात्त्रिवारं च पुनः पुनः ॥ (रसचिन्तामणि५।६)

५—(क) ऊर्ध्वपातन संस्कार

कृत्वा मृन्मयभाण्डसम्पुटमधः प्रक्षिप्य भाण्डोदरे
तुर्यांशार्ककणैर्मनाक्सकरकैः सम्मर्द्य पिण्डीकृतम्।
अन्यस्मिन् रचितोर्ध्ववारिणि मृदा संरुद्धसन्धौ सुधीः
पक्त्वा त्रिप्रहरं समेन शुचिना भाण्डे तमूर्ध्वं नयेत् ॥ ९ ॥

कुम्हार से आर्डर देकर मिट्टी के दो भाण्ड बना लें, एक भाण्ड में बाहरी तल (पृष्ठ भाग पर) पर ८ अंगुल ऊँचा, १० अंगुल व्यास की दीवार (तोयाधार) बना लें। इसके बाद ही अग्निपक्व करें। एक पत्थर के खरल में उत्थापन संस्कार से प्राप्त पारद लेकर उसमें पारद से चतुर्थांश शुद्ध ताम्र के सूक्ष्म कण मिलाकर मर्दन करें। मर्दन ३-४ दिनों तक करें। मर्दन करते समय अत्यल्प मात्रा में सकरक=गारपाषाण मिलाकर मर्दन करें। जब अच्छी तरह पिष्टी बनकर पिण्डीभूत हो जाय तब सामान्य भाण्ड के भीतर लेप करें। ततः तोयाधार निर्मित भाण्ड को ऊपर से औंध कर जलमृत्सना से सम्यक्तया लेप करें। औषधि लिप्त पात्र नीचे रहना चाहिए तथा तोयाधार वाला पात्र ऊपर रहेगा। इसी अवस्था में चूल्हे पर चढ़ाकर मध्यमाग्नि से पाक करें। ऊपरी पात्र के तोयाधार में ठण्ढा जल भर दें। ९ घण्टे तक मध्यमाग्नि द्वारा पाक करें। जब तोयाधार का जल गर्म हो जाय तो उसे निकालकर पुनः पुनः शीतल जल भरते जायँ। इस तरह पवित्रतापूर्वक पारद को ऊर्ध्वपात्र में (तोयाधार वाले पात्र की तली में पारद को) ले जायँ।

आचार्य वाग्भट ने पातनायन्त्र की निम्नलिखित विधि बतायी है। यथा—

अष्टांगुलपरीणाहमानाहेन दशांगुलम्।
चतुरंगुलकोत्सेधं तोयाधारं गलादधः ॥६॥
अधो भाण्डे मुखं तस्य भाण्डस्योपरिवर्त्तिनः।
षोडशांगुलविस्तीर्णपृष्ठस्यास्ये प्रवेशयेत् ॥७॥
पार्श्वयोर्महिषीक्षीरचूर्णमण्डूरफाणितैः।
लिप्त्वा विशोषयेत्सन्धिं जलाधारे जलं क्षिपेत् ॥८॥
चूल्ल्यामारोपयेद्यत्नात्पातनायन्त्रमुच्यते। (र. र. समुच्चय ९)

ऊर्ध्वपातन संस्कार को अन्य आचार्यों ने भी बतायी है जिस में से कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं।

आचार्य गोविन्द भगवत्पादाचार्य ने अपने ग्रन्थ रसहृदयतन्त्र में तीन प्रकार के पातन स्थान पर एक ही पातन संस्कार बताया है। यथा—

कृत्वा तु शुल्बपिष्टिं निपात्यते नागवङ्गशङ्कातः।
तस्मिन् दोषान्मुक्त्वा निपतति शुद्धस्तथा सूतः ॥८॥ (र. हृ. तं. २)

अपि च— ताम्रेण पिष्टिकां कृत्वा पातयेदूर्ध्वपातने।
वङ्गनागौ परित्यज्य शुद्धो भवति सूतकः ॥(रसार्णव १०।५५)

अपि च— ताम्रेण पिष्टिकां कृत्वा पातयेदूर्ध्वभाजने।
नागवङ्गौ परित्यज्य शुद्धो भवति सूतकः ॥३४॥
शुल्बेन पातयेत्पिष्टीं त्रिधोर्ध्वं सप्तधा त्वधः।
(रसरत्नसमु. ११।३५)

अपि च— ऊर्ध्वपातनयन्त्रस्य लक्षणं तदिहोच्यते।
मृन्मयी स्थालिका कार्या चोच्छ्रिता तु षडंगुला ॥५०॥
मुखे सप्तांगुलायामा परितस्त्रिदशांगुला।
इयन्माना द्वितीया च कर्तव्या स्थालिका शुभा ॥५१॥
क्षारद्वयं रामठं च तथा हि पटुपञ्चकम्।
अम्लवर्गेण संयुक्तं सूतं तैस्तु विमर्दयेत् ॥५२॥
लेपयेत्तेन कल्केन अधःस्थां स्थालिकां शुभाम्।
उपरिस्थामधोवक्त्रां दत्त्वा सम्पुटमाचरेत् ॥५३॥
सभस्मलवणेनैव मुद्रां तत्र प्रदापयेत्।
चुल्ल्यां स्थालीं निवेश्याथ धान्याग्निं तत्र कारयेत् ॥५४॥
तस्योपरि जलाधानं चातुर्यामावधि कुरु।
स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा ह्यूर्ध्वगं ग्राहयेद्रसम् ॥५५॥
(रसप्रकाशसुधाकर १)

अपि च— कुमार्याश्च निशाचूर्णैर्दिनं सूतं विमर्दयेत्।
पातयेत्पातनायन्त्रे सम्यच्छुद्धो भवेद्रसः ॥
(रसमञ्जरी १।३१)

अपि च— श्रीखण्डं देवदारुं च काकतुण्डीजयाद्रवैः।
कर्कोटीमुशलीकन्याद्रवं दत्त्वा विमर्दयेत् ॥
दिनैकं पातयेत्पश्चात् सूतं शुद्धं नियोजयेत्।
(रसकामधेनुः ३।३।१०६)

अन्यच्च— शुल्बाद्रसो रसात्ताम्रं पातयेच्च पृथक् पृथक्।
पुनः पिष्टी प्रकर्त्तव्या दत्वाम्लं ताम्रसंयुतम् ॥११॥
ऊर्ध्वपातनमेतच्च यन्त्रे डमरुके भवेत्। (रसचिन्तामणि ५।१२)

———

५—(ख) अधःपातन संस्कार

कृत्वा सम्पुटमेवमेव हि समक्ष्माशिग्रुराजीवरा-
वह्नित्र्यूषणसैन्धवं मृदुकृते लिप्त्वोर्ध्वभाण्डोदरे।
ऊर्ध्वं प्रज्वलितानले वसुमतीसंरुद्धसर्वोदरे
सम्पूर्णाम्बुनि कर्मठः पुनरधः पात्रे रसं पातयेत् ॥ १० ॥

समान मुख के मिट्टी के दो भाण्ड या हाँडी लें। एक खरल में क्ष्मा = फिटकरी, या महाराष्ट्र प्रदेशोत्पन्न तीक्ष्ण शिग्रुमूल, राई, आमला, बहेरा, हर्रे, चित्रकमूल, सोंठ, पीपर, मरिच, और सैन्धवलवण इन ११ द्रव्यों को (प्रत्येक को) सम भाग लें, किन्तु प्रत्येक द्रव्य पारद से षोडशांश लेकर वस्त्रपूत चूर्ण करें। तत्पश्चात् सभी चूर्णों को पारद के साथ एक खरल में निम्बुरस देकर नष्ट-पिष्टि होने पर्यन्त मर्दन करें। पुनः नष्टपिष्टिमर्दित पारद को एक भाण्ड में लेप करें और दूसरे पात्र में शीतल एवं मीठा जल भरकर दोनों पात्रों को सम्पुटित करवह्निमृत्स्ना से सन्धि बन्धन करें।

अब समतल जमीन में एक हाथ चौड़ा तथा डेढ़ हाथ गहरा गोल गड्ढा खोदें। उस गड्ढे को जल से भर दें, जब जल सूखकर कीचड़ जैसा हो तो उसमें सम्पुटित भाण्ड रखें। औषधि लिप्त भाण्ड ऊपर रहना चाहिए। दोनों सम्पुटित भाण्ड जमीन के बराबर हो जाय। अब गड्ढे के शेष रिक्त भाग को सूखी मिट्टी से भर दें। तत्पश्चात् भाण्ड के ऊपरीतल पर औषधानुसार कपोत से कुक्कुटपर्यन्त पुट दें। इस विधि से कर्मकुशल वैद्य ऊपर के पात्र में लेपित पारद को जल-पूर्ण अधःपात्र में पातन करें। अधःपातन संस्कार के लिए अन्य आचार्यों ने अनेक विचार दिये हैं। रसार्णवकार ने कहा भी है—

मर्दितस्त्रिफलाशिग्रुराजिकापटुचित्रकैः।
ऊर्ध्वभाण्डगतः पाच्यः प्रदीप्तैरुपलैरधः ॥ ५६ (रसार्णव १०)

अपि च— सूतं वराग्निपटुशिग्रुकराजिकाञ्जनैः
पिष्टैर्विलिप्य परिपातनकोर्ध्वभागे।
भाण्डोदरे भृतजले परितो विमुञ्चे-
न्मृद्वग्निना त्यजति कञ्चुलिकां हि वाङ्गीम् ॥
(रसेन्द्रचूडामणिः १५।४९)

अपि च— त्रिफला राजिका शिग्रुस्त्र्यूषं लवणचित्रकम् ।
सूततुल्यं तु तत्सर्वं काञ्जिकैर्मर्दयेद्दिनम् ॥२६॥
तेन लिम्पेदूर्ध्वभाण्डं पृष्ठे देयं पुटं लघु ।
अधःपातनयन्त्रे तु पातितं तु समुद्धरेत् ॥२७॥
(रसरत्नाकर-वादिखण्ड ११)

अपि च— त्रिफला शिग्रुशिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः ॥ ३५ ॥
नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेच्चोर्ध्वभाजने ।
ततो दीप्तैरधः पातमुत्पलैस्तत्र कारयेत् ॥ ३६ ॥

अथवा— हरिद्राऽङ्कोलशम्पाककुमारीत्रिफलाऽग्निभिः ।
तण्डुलीयकवर्षाभूहिंगुसैन्धवमाक्षिकैः ॥ ३७ ॥
पिष्टं रसं सलवणैः सर्पाक्ष्यादिभिरेव वा ।
पातयेदथवा देवि ! व्रणघ्नीयक्षलोचनैः ॥ ३८ ॥
इत्थं ह्यधोर्ध्वपातेन पातितोऽसौ यदा भवेत् ।
तदा रसायने योग्यो भवेद्द्रव्यविशेषः ॥ ३९ ॥
(रसरत्नसमु. ११)

अपि च— नवनीताह्वयं सूतं घृष्ट्वा जम्भाम्भसा दिनम् ।
वानरीशिग्रुशिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः ॥ २७ ॥
नष्टपिष्टं रसं ज्ञात्वा लेपयेदूर्ध्वभाण्डके ।
ऊर्ध्वभाण्डोदरं लिप्त्वा त्वधोगं जलसम्भृतम् ॥ २८ ॥
सन्धिलेपं द्वयोः कृत्वा तद्यन्त्रं भुवि पूरयेत् ।
उपरिष्टात्पुटे दत्ते जले पतति पारदः ॥ २९ ॥
अधःपातनमित्युक्तं सिद्धाद्यैः सूतकर्मणि ।
(रसेन्द्रचिन्तामणिः)

अपि च— द्वौ भागौ तस्य सूतस्य ताम्रचूर्णकमेव च ।
दत्वाम्लं मर्दयेत्खल्वे विषचूर्णेन संयुतम् ॥ ७ ॥
पिष्टीं कृत्वा प्रयत्नेन क्षालयेत्तदनन्तरम् ।
कटाहं नूतनं नीत्वा तस्याधो लेपयेद्रसम् ॥ ८ ॥
अस्त्रं तत्र मृदा लिप्त्वा जलं स्थाल्युपरि क्षिपेत् ।
स्थालीकटाहयोः सन्धिं लेपयेत्सुदृढं मृदा ॥ ९ ॥
कटाहोपरि कर्तव्यं वन्योपलाग्निदीपनम् ।
जलमध्ये रसो याति शुल्बं तिष्ठति चोपरी ॥
(रसचिन्तामणिः ५)

अन्वय— नवनीताभ्रकं सूतं घृष्ट्वा जम्भाम्भसा दिनम् ।
वानरीशिग्रुचित्रैश्च लवणासुरिकायुतैः ॥ (आयु. प्रकाश १।७८)

५--(ग) तिर्यक्पातन संस्कार

कृत्वा वक्रमुखौ घटावथ नभोहैयङ्गवीनस्थितं
त्वन्यस्मिन् रसमन्यतश्च सलिलं प्रक्षिप्य चुल्ल्योर्न्यसेत् ।
कृत्वाऽधः सरसस्य मन्दमभितः पात्रस्य वह्निं शनै-
रन्यस्मिन्सलिले विचक्षणमतिरितिर्यग्रसं पातयेत् ॥ ११ ॥

तिरछे मुख के दो घड़े आर्डर देकर कुम्हार से बनवा लें जिसे बाद में दोनों घड़े के मुख को जोड़कर सन्धिबन्धन किया जा सके। पुनः अधःपातन संस्कार से प्राप्त पारद को एक खरल में रखें और पारद के चतुर्थांश, अष्टमांश या षोडशांश अभ्रकपत्रचूर्ण अथवा अभ्रकभस्म या अभ्रकसत्त्वभस्म डालकर मर्दन कर नवनीत जैसी पिष्टि करें। जब पारद अभ्रक नष्टपिष्ट हो जाय तो उपर्युक्त एक घड़े की तली में उक्त पिष्टि का लेप करें और दूसरे घड़े में शीतल एवं स्वादुजल भर कर दोनों घडे के मुख को मिलाकर वह्निमृत्तिका से सन्धिबन्धन करें। पारद लिप्त घड़े को चूल्हे पर चढ़ावें तथा जलपूर्ण घडे के भाग के नीचे कोई आधार (कोई ईंटें आदि) रखकर उसी पर स्थिर करें। चूल्हे में अग्नि प्रज्वलित कर मृदु-मध्य एवं तीक्ष्णाग्नि से ६ से ९ घण्टे तक पाक करें। इस प्रकार बुद्धिमान् वैद्य पारद को एक पात्र से दूसरे जलपूर्ण पात्र में तिर्यक्पातन करें।

विमर्श—नभः = गगनः, हैयङ्गवीन = नवनीत ऐसा समझें। आजकल इस प्रकार का तिर्यक् पातन यन्त्र का विधान नहीं है, यद्यपि तिर्यक्पातनसंस्कार इस उल्लिखित विधि से नहीं की जाती है। तथापि इस श्लोक की व्याख्या उपर्युक्त क्रम से ठीक है। अन्य आचार्यों ने भी अपनी अपनी परम्परानुसार पृथक् पृथक् विधियों का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है। आचार्य वाग्भट ने भी प्रायः इसी प्रकार की बात कही है। यथा—

तिर्यक्पातनविधिना निपातितः सूतराजश्च ।
श्लक्ष्णीकृतमभ्रदलं रसेन्द्रयुक्तं तथाऽऽरनालेन ॥ ४१ ॥
खल्वे दत्त्वा मृदितं यावत्तन्नष्टपिष्टतामेति ।
कुर्यात्तिर्यक्पातनपातितसूतं क्रमेण दृढवह्निम् ॥ ४२ ॥
संस्वेद्यः पात्योऽसौ न पतति यावद्दृढश्चाग्नौ ।
[रसरत्नसमु. ११]

अपि च—

वक्ष्यामि तिर्यक्पतनं सूतं धान्याभ्रकं समम् ।
धान्याम्लैर्मर्दयेद्यामं तिर्यक्पातनयन्त्रके ॥ ४८ ॥
चण्डाग्निना पचेदेवं सप्तवारं पुनः पुनः ।
एवं त्रिधा पातितं च ततस्सूतं निरोधयेत् ॥ ४९ ॥
अभ्रकं वाऽथ गन्धं वा माक्षिकं विमलामपि ।
स्वर्णं वा रजतं वाऽपि कान्तं वा तीक्ष्णमेव वा ॥ ५० ॥
प्रत्येकं शोधितं देयं ताम्रवत्पादमात्रकम् ।
पाठादिकरसैः कुर्यान्मर्दनं पातनं क्रमात् ॥ ५१ ॥
यद्यद्द्रव्यान्वितस्सूतस्तत्तद्द्रव्यगुणप्रदः ।
पातने ताम्रयोगेन नागवङ्गौ त्यजेद्रसः ॥ ५२ ॥
[आनन्दकन्द अमृती ४]

अपि च—

त्रिफला राजिका शिग्रुस्त्र्यूषं लवणचित्रकम् ।
धान्याभ्रकं रसं सर्वं मर्दयेदारनालकैः ॥ २८ ॥
नष्टपिष्टं तु तत्पात्यं तिर्यग्यन्त्रे दृढाग्निना ।
[रसरत्नाकर ११]

पूर्वोक्तैरौषधैः सार्धं रसराजं विमर्दयेत् ॥ ५८ ॥
तिर्यग्घटे रसं क्षिप्त्वा तन्मुखे ह्यपरो घटः ।
कनीयानुदरे छिद्रं छिद्रे चायसनालिकाम् ॥ ५९ ॥
नालिका जलपात्रस्थां कारयेच्च भिषग्वरः ।
अधस्ताद्रसयन्त्रस्य तीव्राग्निं ज्वालयेद्बुधः ॥ ६० ॥
याममित्रितयपर्यन्तं तिर्यक्पातो भवेद्रसः ॥
(रसप्रकाशसुधाकर १)

अपिच—

घटे रसं विनिक्षिप्य सजलं घटमन्यकम् ।
तिर्यङ्मुखं द्वयोः कृत्वा सम्मुखं रोधयेत्सुधीः ॥ ७९ ॥
चूल्यां तथैव संस्थाप्य यत्नतस्तु ततो भिषक् ।
रसाधो ज्वालयेदग्निं यावत्सूतो जलं विशेत् ॥ ८० ॥
तिर्यक् पातनमित्युक्तं सिद्धैर्नागार्जुनादिभिः ।
(आयु. प्रकाश १)

तिर्यक पातनफल—

मिश्रितौ चेद्रसे नागवङ्गौ विक्रयहेतुना ।
ताभ्यां स्यात्कृत्रिमो दोषस्तन्मुक्तिः पातनत्रयात् ॥ ८१ ॥

एवं सुसंस्कृतः सूतः पातनावधि यत्नतः ।
सर्वदोषविनिर्मुक्तो जायते नात्र संशयः ॥ ८२ ॥
(आयु० प्रकाश १)

६—रोधन संस्कार

कूप्यां वा नृफलोदरे रसमथ प्रक्षिप्य सर्वात्मना।
सार्धं सैन्धववारिणा त्रिदिवसं भूमौ मृदा रोधयेत् ।

काँच की कूपी या नारियल की खोपड़ी में ऊर्ध्वपातन संस्कार से प्राप्त पारद रखें और उक्त पात्र को सैन्धव लवण के जल से पूर्ण कर तीन दिनों तक किसी स्थिर आधार पर रख कर छोड दें । चौथे दिन लवण जल से पारद को निकाल कर काञ्जी में मर्दन कर प्रक्षालन करें, ततः उक्त पारद को नियामन संस्कार करें ।

विमर्श—मर्दन-मूर्च्छन-त्रिविध पातन के बाद पारद थक कर मन्दवीर्य होकर नपुसंक हो जाता है । अतः सृष्टचम्बुज–समुद्रीजल या सैन्धवलवण युक्त जल में रखने या मुख बन्द पात्र में रखने से उक्त पारद में अन्य धातुओं की खाने योग्य मुखोत्पन्न होता है तथा पारद अपने षण्ढ भाव को त्याग देता है । आचार्य गोविन्दपादाचार्य ने कहा भी है । यथा—

मर्दनमूर्च्छनपातैः कदर्थितो भवति मन्दवीर्यत्वात् ।
सृष्टचम्बुजैर्निरोधाल्लब्धाप्यायो न षण्ढः स्यात् ॥ ९ ॥
(र. हृ. तं. २)

अपि च—

सृष्टचम्बुजनिरोधेन लब्धप्रायो भवेद्रसः ॥ (रसार्णव १०।५७)

अपि च—

मर्दनैर्मूर्च्छनैः पातैर्मुदुः शान्तो भवेद्रसः ।
सृष्टचम्बुजनिरोधेन ततो मुखकरो रसः ॥
(रसपद्धति में महादेव.)

अपि च—

विश्वामित्रकपाले वा काचकूप्यामथापि वा ।
सृष्टचम्बुजं विनिक्षिप्य तत्र तन्मज्जनावधि ॥ ८८ ॥
पूरयेत्त्रिदिनं भूम्यां राजहस्तप्रमाणतः ।
अनेन सूतराजोऽयं षण्ढभावं विमुञ्चति ॥ ८९ ॥
(आयु. प्रकाश १)

अपि च—

कदर्थनेनैव नपुंसकत्वं प्रादुर्भवेदस्य रसस्य पश्चात् ।
बलप्रकर्षाय च दोलिकायां स्वेद्यो जले सैन्धवचूर्णगर्भे ॥
(नि. रत्नाकर)

अपि च—

एवं कदर्थितः सूतः षण्ढो भवति निश्चितम् ।
बह्वौषधिकषायेण स्वेदितः स बलो भवेत् ॥
(वै. क. द्रु.)

अपि च—

जलसैन्धवयुक्तस्य रसस्य दिवसत्रयम् ।
स्थितिरास्थापनी कुम्भे याऽसौ रोधनमुच्यते ॥ ८।६८
सृष्टचम्बुजैर्निरोधेन ततो मुखकरो भवेत् ।
स्वेदनादिवशात्सूतो वीर्यं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ (र.र.समु. ११।४८)

अपि च—

क्षौद्राम्ललवणक्षारमारनालेन संयुताः ॥ ३६ ॥
दापयेत् त्रीणि वाराणि अहोरात्रं तु सूतकम् ।
सृष्टचम्बुजैर्युतो रोधो ह्यग्निना सूतकस्य च ॥ ३७ ॥
(रसेन्द्रमंगल १)

अपि च—

सिन्धूद्भवं दशमलं जलप्रस्थत्रयं तथा ।
धारयेद् घटमध्ये च पारदं दोषवर्जितम् ॥ (रस. प्र. सुधा. १।६३)

सृष्टचम्बुज-से सृष्टि का जल=समुद्रीजल-अथवा सैन्धव लवण युक्त जल को भी सृष्टचम्बुज कह सकते हैं। अन्य शास्त्रों में सृष्टम्चबुज की परिभाषा इस प्रकार की दी है। सैन्धव १० पल तथा जल ३ प्रस्थ मिलावें इसे सृष्टचम्बुज कहते हैं।

"गोऽजाविनरनारीणां मूत्रं शुक्रं च शोणितम् ॥
सृष्टिरेषा समाख्याता षण्ढदोषविनाशिनी ॥"
(शक्त्यावतार)

कुछ आचार्यों के मत से निरोग षोडशवर्षीया कुमारी लड़की का आर्तव ही सृष्टचम्बुज है। यथोक्तं च—

"युक्तं तु सृष्टचम्बुजमरुणायाः षोडशवार्षिक्या कुमार्या आर्तवमिति ।"

आचार्य नित्यनाथ ने रोधन संस्कार के लिए कुछ परिवर्तित विधि बतायी है। यथा—

लवणेनाम्बुपिष्टेन हण्डिकान्तर्गतं रसम् ॥ २९ ॥
आच्छाद्याथ जलं किञ्चित्क्षिप्त्वा श्रावेण रोधयेत् ।
ऊर्ध्वं लघु पुटं देयं लब्ध्वाप्यधो भवेद्रसः ॥ ३० ॥
(रसरत्नाकर ११)

प्रकारान्तर से रोधन संस्कार

भूगे पूरितपूर्ववारिणि रसं निक्षिप्य वस्त्रावृतं ।
भाण्डे योजितलोहखर्परमुखे चोर्ध्वं पुटे रोधयेत् ॥ १२ ॥

(भूगे-भू गर्भे) लोहा या मिट्टी के घड़े में सैन्धव लवण जल या समुद्रीजल के साथ पारद को डाल कर जमीन के अन्दर उस पारद युक्त घड़े को डाल दें (under ground) और घड़े के मुख को लोहा के तवा से ढक कर वह्नि मृत्स्ना (कपड़ मिट्टी) से सन्धि बन्धन करें तथा तवा पर कुक्कुट पुट देकर रोधन कर्म करें। इसकी पूर्ति के लिए ऊपर की टिप्पणी देखी जा सकती है।

७—नियामन संस्कार

सर्पाक्षीशितिधूर्तभृङ्गनलिनीभृङ्गीवचामागधी-
बन्ध्याकर्कटिकाकषायसलिलस्वेदैर्नियच्छेद्रसम् ।

प्रकारान्तरम्—

यद्वा मृन्मयभाजनान्तरगतं पूर्वोक्तवारा रसं
रूद्ध्वा भूवलये तुषानलपुटैरूर्ध्वं नियच्छेद्रसम् ॥ १३ ॥

सर्पाक्षी, कृष्णधतूर, भृङ्गराज, नलिनी, भाँग, वच, पिप्पली और बन्ध्या-कर्कोटी ये आठों द्रव्य समान भाग किन्तु प्रत्येक द्रव्य पारद के षोडशांश लें। इन आठों द्रव्यों को कूट कर अष्टगुण जल के साथ क्वाथ करें। अर्धावशेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ को स्वेदनी यन्त्र में रखें और इसी यन्त्र में रोधन संस्कार से प्राप्त पारद को स्वेदन करें। स्वेदन तीन दिनों तक करें। इससे पारद का नियामन होता है। इस क्रिया को घट यन्त्र में किया जा सकता है।

प्रकारान्तरम्—अथवा

मिट्टी के पात्र के अन्दर पारद को रख कर सन्धिबन्धन करें तथा जमीन के अन्दर गोलाकार गड्ढे में उक्त पात्र को रख कर मिट्टी से गड्ढे को हल्का पूर्ण कर ऊपर से तुष ढक कर अग्नि प्रज्वलित करें। ऐसा ३ बार (पूर्वोक्तवार) करने से पारद का नियमन होता है।

विमर्श—नियामन की परिभाषा आचार्यों ने निम्न रीति से दी है।—
बोधनसंस्करेण पारदे चपलत्वं समायति, तन्नियमनमेव नियामनसंस्कारः । (स्व)

रोधनाल्लब्धवीर्यस्य चपलत्वनिवृत्तये ।
क्रियते यो घटे स्वेदः प्रोक्तं नियमनं हि तत् ॥
(रसेन्द्रचूडामणिः ४।८९)

अन्य आचार्यों ने नियामन प्रकार में किञ्चित् परिवर्तन करते हुए अपना-अपना विचार दिया है। आचार्य भगवद्गोविन्दपादाचार्य ने कहा है कि–ताम्बूल–लहसुन-सैन्धव–भृङ्गराज–कर्कोटी और इमली के चूर्ण एवं कल्क को काञ्जी में घोल कर दोलायन्त्र के पात्र में भरें और पोट्टली में बोधन-(रोधन) संस्कार से प्राप्त पारद को रख कर तीन दिनों तक अनवरत स्वेदन करें। यथा—

इति लब्धवीर्यः सम्यक् चपलोऽसौ सन्नियम्यते तदनु ।
फणिलशुनाम्बुजमार्कवकर्कोटीचिञ्चिकास्वेदात् ॥
(र. हृ. त. २।१०)

अपि च—

नियम्योऽसौ ततः सम्यक् चपलत्वनिवृत्तये ।
कर्कोटीफणिनेत्राभ्यां वृश्चिकाम्बुजमार्कवैः ॥
समं कृत्वाऽऽरनालेन स्वेदयेच्च दिनत्रयम् ॥ ४६ ॥
(रसरत्नसमु. ११)

अपि च—

अतः परं प्रवक्ष्यामि नियमं पारदस्य च ।
यत्कृते चपलत्वं हि रसराजस्य शाम्यति ॥ ६६ ॥
जलसैन्धवसंयुक्तो घटस्थो हि रसोत्तमः ।
दिनत्रयं स्वेदितश्च वीर्यवानपि जायते ॥ (रसप्र०सुधा. १६७)

अपि च—

कर्कोटी कम्बुकीयोगो योजयेत्तु नियामके ।
निर्मलस्तेजवान् सूतो जायते नात्र संशयः ॥३८॥ (रसेन्द्रमङ्गल १)

अपि च—

कर्कोटी-कञ्चुकी-विम्बी-सर्पाक्ष्यम्बुजसंयुतम् ।
रसं नियामके दद्यात् तेजस्वी निर्मलो भवेत् ॥ (रसार्णव १०।५८)

नियमितपारदलक्षणं-यथा—

नियमितो न प्रयाति तथा धूमगतिं शिवे ॥ २० ॥
कणिकाचालरहितो बुद्बुदैश्चापवर्जितः ।
नियमितो भवत्येष चुल्लिकाग्निसहस्तथा ॥ २१ ॥ (रसार्णव १०)

अपि च—

अथो नियामनं कर्म कथयामि वरानने ।
यवचिञ्चा क्षीरकन्दं सर्पाक्षी पटु भृङ्गराट् ॥ ५८ ॥

बन्ध्या कर्कोटकी निम्बः सर्वं धान्याम्लपेषितम् ।
कृत्वाऽऽलोडयारनालेन तद्द्रवैः स्वेदयेद्दिनम् ॥ ५९ ॥
यन्त्रे नियामके समवासरं तं च दीपयेत् ॥ (आ. क. अमृ.४)

अपि च—

रक्तसैन्धवव्योषैश्च मूषाद्वयं तु कारयेत् ॥ ५२ ॥
तत्सम्पुटे रसं क्षिप्त्वा नवसारं सनिम्बुकम् ।
तत्सम्पुटे प्रयत्नेन लेपयेत्सन्धिमुत्तमम् ॥ ५३ ॥
मृत्तिकावस्त्रमादायवेष्टयेत्तत्प्रयत्नतः ।
छाया शुष्कं हि तत्कृत्वा भूगर्भे स्थापयेत्ततः ॥ ५४ ॥
अष्टांगुलप्रमाणेन मूषोर्ध्वं गर्तपूरणम् ।
त्रिसप्तदिनपर्यन्तं करीषाग्निं च कारयेत् ॥ ५५ ॥
दिने दिने प्रकर्तव्या मूषा सैन्धवनूतना ।
स्वेदयेत्तु प्रयत्नेन भूगर्भे स्थापयेत्पुनः ॥ ५६ ॥
अथातः कूपिकामध्ये सूतं सैन्धवसंयुतम् ।
भूगर्भे च ततः स्थाप्यं एकविंशद्दिनावधि ॥ ५७ ॥
अयं नियामको नाम वह्निमित्रत्वकारकः ।
(रससार–५)

अपि च—

सर्पाक्षीचिञ्चिकावन्ध्याभृङ्गाब्दाकनकाम्बुभिः ।
दिनं संस्वेदितः सूतो नियमात्स्थिरतां व्रजेत् ॥ ३७ ॥
(रसेन्द्रचिन्तामणिः ३)

८. दीपन संस्कार

कासीसक्षितिशिग्रुबीजलवणक्षारासुरीषट्कटु-
स्वर्वल्लीजलपिप्पलीतुषजलस्वेदेन तं दीपयेत् ॥

कासीस-फिटकरी-शिग्रुबीज-सैन्धवलवण-यवक्षार-टंकण-क्षार–सर्जिकाक्षार–राई-पिप्पली-पिप्पलीमूल-चव्य-चित्रक, सोंठ एवं मरिच (षडूषण), स्वर्वल्ली=आकाशबल्ली (अमरलता) और जलपिप्पली ये १७ द्रव्य प्रत्येक पारद का १६वाँ भाग लें और कूट पीस कर कल्क बनावें। अब इस कल्क को काञ्जी पूर्ण दोलायन्त्र में घोलें और नियामन संस्कार से प्राप्त पारद की पोट्टली बनाकर दोलायन्त्र विधि से तीन दिनों तक अनवरत स्वेदन करें। तत्पश्चात् चौथे दिन पात्र स्थित पारद को ग्रहण कर उष्ण जल से प्रक्षालन कर रख लें।

विमर्श—अन्य आचार्यों ने भी पारद का दीपन संस्कार कुछ परिवर्तनों के साथ बताया है तथा इसकी परिभाषा भी निम्न प्रकार दी है। यथा—

धातुपाषाणमूलाद्यैः संयुक्तो घटमध्यगः ।
ग्रासार्थं त्रिदिनं स्वेदो दीपनं तन्मतं बुधैः ॥ ९० ॥
(रसेन्द्रचूडामणिः ४)

अपि च—
लेलिहानो हि धातूंश्च पीड्यमानो बुभुक्षया ।
अनेनैव प्रकर्तव्यं रसराजस्य दीपनम् ॥ ६५ ॥ (रससार-५)

अपि च—तद् दीपनं येन पारदो बुभुक्षया पीड्यमानः तथा च धातून् लेलिहानः सन् धातुग्रासे समर्थो भवेत् । अथ च यस्य संस्कारस्यान्ते पारदः सहस्रविद्युल्लताभ इव प्रज्ज्वलितो भवेत् तद्दीपनम् ॥ (स्व)

दीपन विधिः

श्रीमद्गोविन्दपादाचार्य ने दीपन विधि का वर्णन अपने ग्रन्थ में निम्न प्रकार से किया है । यथा—

भूखगटङ्कणमरिचैर्लवणासुरिशिग्रुकाञ्जिकैस्त्रिदिनम् ।
स्वेदेन दीपितोऽसौ ग्रासार्थी जायते सूतः ॥ (र.हृ.तं. २।११)

अपि च—
क्षुद्राम्ललवणक्षारभूखगोषणशिग्रुभिः ।
राजिकाटङ्कणयुतैरारनाले दिनत्रयम् ॥
स्वदेनाद्दीपितो देवि ! ग्रासार्थी जायते रसः ॥५९॥ (रसार्णव १०)

अपि च—
मरिचाब्जासुरी चैव शिग्रुभूखगटङ्कणैः ।
ससन्धानैस्त्र्यहं स्वेदात् भवेत्सूतस्य दीपनम् ॥ ५९ ॥
(रसेन्द्रचूडामणिः १५)

अपि च—
मरिचैर्भूखगयुक्तैर्लवणासुरिशिग्रुटङ्कणोपेतैः ।
काञ्जिकयुक्तैस्त्रिदिनं ग्रासार्थी जायते स्वेदात् ॥ ४७ ॥
(रसरत्नसमु. ११)

अपि च—
अथेदानीं प्रवक्ष्यामि रसराजस्य दीपनम् ।
बुभुक्षा व्यापकत्वं च येन सम्यक् प्रजायते ॥ ६७ ॥
राजिका लवणं चैव मरिचं शिग्रुटंकणे ।
पुष्पकासीसकं कांक्षी काञ्जिकेन समन्वितैः ॥ ६८ ॥
दिनानि त्रीणि संस्वेद्य पश्चात्क्षारेण मर्दयेत् ।
अनेनैव प्रकारेण दीपनं जायते ध्रुवम् ॥ ६९ ॥
(रसप्रकाशसुधा. १)

अपि च—
कासीसं पञ्चलवणं राजिका मरिचानि च ।
द्विशिग्रुबीजमेकत्र टंकणेन समन्वितम् ॥ ३८ ॥
आलोड्य काञ्जिके दोलायन्त्रे पाकाद्दिनैस्त्रिभिः ।
दीपनं जायते सम्यक् सूतराजस्य जारणे ॥ ३९ ॥
(रसेन्द्रचिन्तामणि ३)

अपि च....
कीरतुण्डी गरुडी ऋषिच्छदा कन्यका च कलस्थी च वायसी ।
आसुरी च विजया तथा जया वह्निदीपनकरा च सूतके ॥ ३९ ॥
(रसेन्द्रमंगल १)

अपि च—
अथवा चित्रकद्रावैः काञ्जिकैस्त्रिदिनं पचेत् ।
दीपनं जायते तस्य रसराजस्य चोत्तमम् ॥
(आयुर्वेद प्रकाश १। १०३)

अपि च—
त्रिक्षारं पञ्चलवणं भूखगं शिग्रुमूलकम् ।
स्वर्णपुष्पी च कासीसं मरिचं राजिका मधु ॥ ३१ ॥
क्षीरकन्दो जया कन्या विजया गिरिकर्णिका ।
काकजंघा द्रोणपुष्पी[1] पातालगरुडी कणा ॥ ३२ ॥
वन्ध्या कर्कोटकी वह्निर्व्यस्तं वाऽथ समस्तकम् ।
पेषयेदम्लवर्गेण तद्द्रवैर्मर्दयेद्रसम् ॥ ३३ ॥
दिनान्ते बन्धयेद्वस्त्रे दोलायन्त्रे त्र्यहं पचेत् ।
पूर्वद्रावैर्घटे पूर्णे ग्रासार्थी जायते रसः ॥ ३४ ॥
(रसरत्नाकर-११)

दीपन सस्कार का फल

संस्कारैरिति संस्कृतोऽष्टभिरसौ निष्कञ्चुको निर्मलः ।
सूतः सर्वरसेष्वकुण्ठमहिमा स्यादष्टमांशोषितः ॥ १४ ॥

आठों संस्कारों से संस्कृत पारद सप्तकञ्चुकाओं से रहित एवं दोष विहीन होकर निर्मल हो जाता है । आठ संस्कारों से युक्त पारद सभी रसों में अकुण्ठ महिमा (अव्याहतशक्ति) वाला हो जाता है । आठ संस्कार के बाद पारद अष्टमांश ही बचता है ।

1. शोणपुष्पी इति पाठ भेदः ।

विमर्श--पारद के दोष एवं कञ्चुकाएँ निम्नलिखित हैं।

विषं वह्निर्मलश्चेति दोषा नैसर्गिकास्त्रयः।
रसे मरणसन्तापमूर्च्छानां हेतवः क्रमात् ॥ १७ ॥
यौगिकौ नागवङ्गौ द्वौ जाड्याध्मान कुष्ठदौ।
औपाधिकाः पुनश्चान्ये कीर्तिताः सप्तकञ्चुकाः ॥ १८ ॥
भूमिजा गिरिजा वार्या द्वे च द्वे नागवङ्गजे।
द्वादशैते रसे दोषाः प्रोक्ता रसविशारदैः ॥ १९ ॥
भूमिजा कुर्वते कुष्ठं गिरिजा जाड्यमेव च।
वारिजा वातसंघातं दोषाढ्यं नागवङ्गयोः ॥ २० ॥
पर्पटी पाटिनी भेदी द्रावी मलकरी तथा।
अन्धकारी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्तकञ्चुकाः ॥ २१ ॥
(रसरत्नसमु. ११)

उपर्युक्त क्रमानुसार पारद के कुल १२ दोष हैं।

१. नैसर्गिक–	२. यौगिक–	३. औपाधिक
विष	नाग	भूमिज
वह्नि	वङ्ग	गिरिज
मल		वारिज
३.	२.	नाग के २–
		वङ्ग के. २–
		७

३+२+७=१२.

इसके अतिरिक्त सात पर्पटियाँ भी हैं, जिसे औपाधिक के अन्तर्गत ग्रहण किया जाता है, अतः अष्ट संस्कारित पारद इन १२+७= दोषों से रहित होकर निर्मल हो जाता है। ऐसा आचार्य जी का विचार है। आचार्य नित्यनाथ ने भी पारद के आठ संस्कारों के बाद अष्टमांशावशिष्यते ऐसा कहा है। यथा—

स्वेदनादि शुभकर्मसंस्कृतः सप्तकञ्चुकविवर्जितो भवेत्।
अष्टमांशावशिष्यते तदा शुद्धसूत इति कथ्यते बुधैः ॥ ३६ ॥
(रसरत्नाकर वादि. ११)

आचार्य श्री गोविन्दभगवत्पादाचार्य ने अष्टसंस्कारित पारद के स्वरूप एवं गुणों का वर्णन इस प्रकार किया है। पारद जब आठ संस्कारों से युक्त होकर प्रदीप्त हो जाता है तो (सहस्रविद्युल्लता) आकाश में जो बिजली चमकती है उसे विद्युल्लता कहते हैं। वैसी हजारों विद्युल्लता की चमक से युक्त अर्थात् वैसी ही चमकदार एवं प्रकाश से युक्त पारद हो जाता है। तब उस पर आगे का गगन ग्रास-जारण और जारण संस्कार कराया जाता है। यथा—

इति दीपितो विशुद्धः प्रचलितविद्युल्लतासहस्राभः।
भवति यदा रसराजश्चार्यो दत्वा द्वितीयमिदम् ॥ (र.हृ.तं. २।१२)

आचार्य यशोधर ने दीपित पारद के गुणों को निम्नरीति से बताया है। पारद में तीव्रता-वेगकारिता-व्यापकता-बुभुक्षा बल और धातुग्रासार्थ मुखोत्पन्न हो जाता है। यथा—

तीव्रत्वं वेगकारित्वं व्यापकत्वं बुभुक्षुता ॥ ७० ॥
बलवत्वं विशेषेण कृते सम्यक् प्रजायते।
मुखोत्पादनकं कर्म प्रकारो दीपनस्य हि ॥ ७१ ॥
(रसप्रकाशसुधा. १)

आचार्य जी ने कहा कि दीपन संस्कार से युक्त पारद सभी धातुओं को खाने में समर्थ होकर राक्षसमुख से युक्त हो जाता है।

यातुधानमुखं सम्यक् यात्येव हि न संशयः।
द्वितीयो दीपनस्यैवं प्रकारः कथितो मया ॥ ७७ ॥
(रसप्रकाशसुधा. १)

आचार्य जी ने पारद के प्रथम आठ संस्कारों के लिए कहा है कि इसका उपयोग चिकित्सार्थ देहकर्म में करें। तथा शेष दश (१०) संस्कार का उपयोग देहवेध-एवं लोहवेध के लिए होता है।

सूतस्याष्टौ च संस्काराः कथिता देहकर्मणि।
तथा च दश कर्माणि देहलोहकराणि हि ॥ ७८ ॥
(रसप्रकाशसुधा. १)

आठ संस्कार करने में असमर्थ लोगों के लिए पारद का संस्कार

चिञ्चा षट्कटुदुग्धकाञ्जिकवरास्विन्नस्त्रिघस्त्रं ततः
कन्याध्योषवरानलार्कपयसासम्मूर्च्छितो वासरम्।
सार्धांशाभ्ररविस्त्रिरूर्ध्वपतनैरुत्पन्नशुद्धिः स्वराट्
योज्यः सर्वरसेषु शुद्धमतिभिः श्रीपारदः पारदः ॥ १५ ॥

इमली, सोंठ, पीपर, मरिच, चव्य, चित्रक, पिप्पलीमूल, अर्कदुग्ध, काञ्जी और त्रिफला। काञ्जी छोड़ कर अन्य सभी द्रव्यों को पारद से षोडशांश ग्रहण करें और इन्हें कूट कर अष्ट गुण जल के साथ क्वाथ करें। चतुर्थांशावशेष होने पर छान कर उक्त क्वाथ से ४ गुना काञ्जी मिलाकर दोलायन्त्र के पात्र में भरें। पोट्टली में १ किलो पारद बांधकर दोलायन्त्र में लटकावें और चूल्हे पर चढ़ाकर तीन दिनों तक लगातार पाक करें। ततः उक्त पारद को निकालकर गर्मपानी

से साफ कर एक खरल में रखें। पुनः घृतकुमारी, सोंठ, पीपर, मरिच, आमला, हर्रे, बहेरा, चित्रक और अर्कदुग्ध ये प्रत्येक द्रव्य पारद से षोडशांश लेकर सूक्ष्म चूर्णकर अर्कदुग्ध एवं घृतकुमारी स्वरस के साथ खरल में पारद को १ दिन तक मूर्च्छित होने पर्यन्त मर्दन करें। पुनः उष्ण काञ्जी से मर्दन करें और प्रक्षालन कर पारद ग्रहण करें। तदनन्तर उक्त पारद में आधा भाग शुद्ध अभ्रक या अभ्रक भस्म मिलाकर १ दिन तक मर्दन कर ऊर्ध्व पातन करें। पुनः उक्त पारद में चतुर्थांश शुद्ध ताम्र मिलाकर पिष्टी वत् मर्दन कर अधःपातन करें और इसी तरह तिर्यक्पातन कर शुद्ध प्रज्ज्वलित एवं चमकदार पारद प्राप्त करें। इस तरह शुद्ध एवं श्रीसम्पन्न पारद को बुद्धिमान् वैद्य सभी तरह की औषधियों में योजना करें। अर्थात् उपयोग करें।

विमर्श—इस क्रिया में स्वेदन-मर्दन एवं त्रिविध पातनों का उपयोग किया गया है। आचार्य गोपाल कृष्ण भट्ट ने हिङ्गुलोत्थ पारद को अष्टसंस्कारित पारद जैसा श्रेष्ठ एवं गुणकारी बताया है। यथा—

अथवा हिंगुलात्सूतं ग्राहयेत्तन्निगद्यते।
जम्बीरनिम्बुनीरेण मर्दितो हिंगुलो दिनम् ॥ ५१ ॥
ऊर्ध्वपातनयन्त्रेण ग्राह्यः स्यान्निर्मलो रसः।
कञ्चुकैर्नागवङ्गाद्यैर्निर्मुक्तो रसकर्मणि ॥ ५२ ॥
विना कर्माष्टकेनैव सूतोऽयं सर्वकर्म कृत् ॥ ५३ ॥

(रसेन्द्रसार संग्रह १)

पारद का सामान्य शोधन

वर्षाभूतुलसीजलैरथ रसं सन्तप्तखल्वे सम-
व्रीह्यभ्रं परिमर्द्य भूधरपुटे वज्रान्धमूषोदरे।
उद्दीप्तेन तुषानलेन शनकैः सम्पाचितः सप्तधा
शुद्धश्चोपरिपातयन्त्रपतितः सर्वोपयोगी रसः ॥ १६ ॥

पुनर्नवामूल, तुलसीपत्र एवं नागरमोथा इन तीनों को मिलाकर पारद के बराबर लें और सूक्ष्म चूर्ण बनाकर या पीस कल्क बनावें। तप्त खरल में पारद और कल्क मिलाकर काञ्जी दे-देकर दिन भर मर्दन करें। अथवा पारद के बराबर धान्याभ्रक मिलाकर तप्त खरल में मर्दन करें। तदनन्तर वज्रमूषा में मर्दित पारद + अभ्रक की पिष्टी को रखें और उसका ठीक से मुख बन्द करें। ततः भूँसी से युक्त प्रदीप्त अग्नि वाला भूधर पुट में क्रमशः इसी तरह ७ बार पाक करें। इस प्रकार ऊर्ध्वपतित होकर पारद शुद्ध एवं सर्वकर्मोपयोगी हो जाता है।

व्रीह्यभ्र=धान्याभ्र; अथ=अथवा, उद्दीप्तेन=प्रदीप्तेन।

विमर्श—यह प्रक्रिया भी उतना सहज नहीं है। इसमें तप्त खल्व में धान्याभ्रकादि से मर्दन कर भूधर पुट में पाक करें और मूषा के उपरि ढक्कन में पारद ऊर्ध्वपतित होकर प्राप्त होगा। ऐसा ही सात बार करने से पारद शुद्ध एवं सर्वकर्मोपयोगी पारद प्राप्त होगा।

पारद शोधन का प्रकार

भूगर्तेऽजशकृत्तुषानलपुटे संस्थापिते लोहजे
खल्वे जम्भलकाञ्जिकेन बलिना सार्धं दशांशेन सः।
सम्मर्द्योपरिपातयन्त्रविधिना निष्कासितः सप्तधा
शुद्धः पारदकर्मठैर्निगदितो वैद्यैरवद्येतरैः ॥ १७ ॥

जमीन के अन्दर एक छोटा-सा गड्ढा खोदें और उसमें बकरी की लेंड़ी (पुरीष) एवं धान की भूँसी भर कर अग्नि प्रज्वलित करें। गड्ढे के पार्श्व में एक एक ईंटा रखें और उस पर लोहे का एक खरल रखें। उस खरल में शोधनार्थ पारद और पारद से दशमांश शुद्ध गन्धक देकर जम्बीरीनिम्बु स्वरस एवं काञ्जी से उसी तप्त खरल में मर्दन कर कज्जली बनावें। पुनः ऊर्ध्वपातन यन्त्र में उक्त पारद गन्धक की कज्जली को रखकर सम्यक्तया सन्धि बन्धन कर ऊर्ध्वपातन कर पारद प्राप्त करें। इसी क्रम से दशांश-शुद्ध गन्धक देकर तप्तखरल में कज्जली बना बनाकर सात बार पुनः पुनः ऊर्ध्वपातन करें और पारद प्राप्त करें। इस तरह से कर्म करने पर पारद शुद्ध हो जाता है। सर्वकर्मोपयोगी हो जाता है। उत्तम वैद्यों का ऐसा कहना है।

विमर्श—आचार्य कृष्ण गोपाल भट्ट ने भी इसी प्रकार का शोधन बताया है। यथा—

रसस्य द्वादशांशेन गन्धं दत्वा विमर्दयेत्।
जम्बीरोत्थद्रवैर्यामं पाच्यं पातनयन्त्रके ॥
पुनर्मद्यं पुनःपाच्यं सप्तबारं विशुद्धये ॥

(रसेन्द्रसारसंग्रह १।३१)

ऐसा करने में असमर्थ वैद्यों के लिए हिङ्गुलोत्थ पारद विधिः

हिङ्गूलात्पृथुपारिभद्रकरसैर्वा जम्भवारा दिनं
पिष्टादूर्ध्वगपातयन्त्रविधिना निष्कासयेत्पारदम्।
पक्वात् स्नुक्तिलतैलकाञ्जिकरसैर्लोहस्य पात्रेऽचिरा-
त्किञ्चोच्चप्रचलाकिपित्तसलिलैः संस्कारितात्सप्तधा ॥ १८ ॥

निम्नलिखित विधि से हिंगुल से पारद निकालिये। इसके लिये पत्थर के एक साफ खरल में २५० ग्राम के करीब हिंगुल लेकर चूर्ण कर पारिभद्र (फरहद-

महानिम्ब) के रस में अथवा जम्बीरी निम्बु स्वरस के साथ भावना देकर एक दिन तक अनवरत मर्दन करें। सूखने पर उक्त शुद्ध हिंगुल चूर्ण को ऊर्ध्वपातन यन्त्र में रखकर ऊर्ध्वपातन करें। तदनन्तर ऊर्ध्वपातन यन्त्र को ठण्डा होने पर सन्धि बन्धन खोलकर ऊपरिपात्र की तली को कपड़ा से घिस कर शुद्ध पारद प्राप्त करें।

हिङ्गुलोत्थ पारद की दूसरी विधि—

हिंगुल को चूर्ण कर एक गाढे वस्त्र में पोट्टली बनाकर स्नुहीक्षीर या स्वरस, तिलतैल एवं काञ्जी से पूरित लोहपात्र में उक्त पोट्टली को लटकावें और दोला-यन्त्र विधि से ३ घण्टे तक पाक करें। तत्पश्चात् उक्त हिंगुल की पोट्टली निकालें और हिंगुल को खरल में रख कर जवान मयूर के पित्त की सात भावना देकर ऊर्ध्वपातन यन्त्र में उक्त भावित हिंगुल का उर्ध्वपातन कर शुद्ध हिंगुल प्राप्त करें।

उच्चप्रचलाकि, उच्च = बड़ा-प्रचलाकि=मयूरः।

अन्य आचार्यों ने भी हिङ्गुलोत्थ पारद की अलग-अलग विधियाँ बतायी हैं। यथा—

अथवा हिंगुलात् सूतं ग्राहयेतन्निगद्यते।
गौमूत्रैर्माहिषैर्मूत्रैस्तिलतैलसुराम्लकैः ॥ ४८ ॥
सप्ताहं हिंगुलं पाच्यं लोहपात्रे क्रमाग्निना।
चालयेल्लोहदण्डेन द्रावं दत्त्वा पुनः पुनः ॥ ४९ ॥
सद्रवं तं समादाय शिखिपित्तेन भावयेत्।
दिनान्ते पातनायन्त्रे पातयेच्चण्डवह्निना ॥ ५० ॥
सप्तकञ्चुकनिर्मुक्तः ख्यातोऽयं शुद्धसूतकः।
कन्याभिस्त्रिफलाभिश्च पुनर्मर्द्यं च पातयेत् ॥ ५१ ॥
इत्येवं सप्तधा कुर्यात् सम्यक् शुद्धो भवेद्रसः।
(रसरत्नाकर २)

गोमांसे माहिषे मूत्रे दध्यम्लतिलतैलयोः।
एकैकं त्रिदिनं पक्त्वा शिखिपित्तेन भावयेत् ॥ ४८ ॥
दरदं पातनायन्त्रे पातयेत् सलिलाशये।
सत्त्वं तु सूतसङ्काशं जायते नात्र संशयः ॥ ४९ ॥
(रसार्णव ७)

अपि च—

अथवा हिंगुलात्सूतं ग्राहयेतन्निगद्यते।

जम्बीरनिम्बुनीरेण मर्दितो हिंगुलो दिनम् ॥ ५१ ॥
ऊर्ध्वपातनयन्त्रेण ग्राह्यःस्यान्निर्मलो रसः।
कञ्चुकैर्नागवङ्गाद्यै निर्मुक्तो रसकर्मणि ॥ ५२ ॥
विना कर्माष्टके नैव सूतोऽयं सर्वकर्मकृत्। (रसेन्द्रसारसंग्रह १)

अपि च—

निम्बपत्ररसैर्निम्बुरसैर्वा याममात्रकम्।
घृष्ट्वा दरदमूर्ध्वं तु पातयेत्सूतयुक्तिवत् ॥ ८४ ॥
तत्रोर्ध्वपिठरीलग्नं गृह्णीयाद् रसमुत्तमम्।
शुद्धमेव हि तत्सूतं सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ (आयुर्वेदप्रकाश२।८५)

जारणासंस्कार

गन्धक जारण

कूप्यां भावितगन्धकं पलमितं शुद्धं रसं षट्पलं
कर्पूरं लधुकोलसम्मितमिदं दत्त्वा मुखे मुद्रणम्।
लिप्त्वा मृद्वसनैर्दिनं घनतरैर्दीप्ताग्निना पाचितं
जीर्णे गन्धकचन्द्रके मुखमथोद्घाट्य क्षणं पूर्ववत् ॥ १९ ॥
दत्त्वा सर्वमिदं पुनर्मृदु पचेदेवं शतं जारयेद्–
गन्धं चेष्टिकयन्त्रके लघुपुटैः सिद्धं रसं तं पुनः।

एक काँच की कूपी (आतशी शीशी) लें। उस पर सात बार कपड़ मिट्टी चढ़ावें और सुखावें। तत्पश्चात् ४ तोले शुद्ध गन्धक लें और बड़ी कंटेरी स्वरस की ७ बार भावना दें। फिर शुद्ध पारद २४ तोले (षड्गुण) मिलाकर कज्जली बनावें। २-३ दिनों के मर्दनोपरान्त जब कज्जली हो जाय तब उक्त कज्जली को कूपी में रख कर उस कूपी में छोटे बदरी फल अर्थात् चवन्नी के बराबर मात्रा में कर्पूर चूर्ण डालें और हिलाकर कूपी का मुख बन्द कर दें। कपड़ मिट्टी से उसका मुख पुनः बन्द करदें और इष्टिकायन्त्र में लघुपुट से पाक करें। जब गन्धक एवं कर्पूर दोनों जल जाय तो स्वाङ्गशीत होने पर उस कूपी का मुख खोल कर उसमें पुनः गन्धक और कर्पूर पूर्ववत् देकर जारण करें। इसी प्रकार एक सौ बार पाक करें।

विमर्श—इसी तरह की एक विधि पार्वतीपुत्र सिद्ध नित्यनाथ ने रसरत्नाकर में कहा है। वहाँ पर स्पष्ट रूप से वृहती स्वरस की भावना के लिये सिद्ध नित्यनाथ ने कहा है। यथा—"शतगुण गन्धक जारित पारद"—

गन्धकं सूक्ष्मचूर्णं तु सप्तधा बृहतीद्रवैः ।
भावयेद्वाथ वृन्ताकरसेनैव तु सप्तधा ॥ २ ॥
पलैकं पारदं शुद्धं काचकूप्यन्तरे क्षिपेत् ।
कर्षकं भावितं गन्धं कर्पूरं माषमात्रकम् ॥ ३ ॥
क्षिप्त्वा तत्र मुखं रुध्वा मृदा कूपीं च लेपयेत् ।
दीप्ताग्निना दिनं पच्यान्मुखमुद्घाटयेत् पुनः ॥ ४ ॥
जीर्णे गन्धं च कर्पूरं दत्त्वा तद्वच्च जारयेत् ।
एवं शतगुणे जीर्णे गन्धकं जारयेद्रसे ॥ ५ ॥
(रसरत्नाकर १२)

आचार्य विन्दु की विधि दोषपूर्ण या अशुद्ध प्रतीत होती है तथा आचार्य नित्यनाथ की विधि सरस एवं स्पष्ट है। आचार्य विन्दु छः पल पारद में एक पल गन्धक का एक बार में जारण करने का निर्देश दिया है और १०० बार इस क्रिया को करने के लिये कहा है। किन्तु आचार्य नित्यनाथ ने १ पल पारद में १ कर्ष गन्धक और १ माष (उडद बराबर) कर्पूर डालने को कहा है।

आचार्य नित्यनाथ ने १०० गुना गन्धक जारण की दूसरी विधि का भी उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है। यथा—

कासीसं चैव सौराष्ट्रीं स्वर्जिक्षाराजमोदकम् ।
शिग्रुतोयेन संयुक्तं कृत्वा भाव्यमनेन वै ॥ ६ ॥
सप्ताहं चूर्णितं गन्धं भावयेत्तत्पुनः पुनः ।
इष्टिकागर्तमध्ये तु सम्यक् शुद्धं रसं क्षिपेत् ॥ ७ ॥
मुखं स्वच्छेन वस्त्रेण छादयेत्तस्य पृष्ठतः ।
दशांशं गन्धकं दत्त्वा शरावेणावरोधयेत् ॥ ८ ॥
पृष्ठे लघुपुटं देयं जीर्णे गन्धं पुनःक्षिपेत् ।
एवं शतगुणं जार्यं गन्धकं पारदे शनैः ॥ ९ ॥
(रसरत्नाकर १२)

जारण—

जिस पारद में गन्धक-अभ्रक-अभ्रकसत्त्व-माक्षिकसत्त्व-सुवर्ण और रत्नादि द्रव्यों को जीर्ण कर लिया जाय तथा जीर्ण की परिभाषानुसार उस पारद का भार (वजन) नहीं बढ़े और न ही पारद अपने स्वरूप को त्यागे। इसके लिए पारद का गालन-पातन आदि क्रिया भी न किया जाय। अर्थात् गालन-पातन आदि क्रिया के बिना ही अपने अन्दर गन्धक-अभ्रक-माक्षिक-सुवर्ण-रत्न एवं दिव्यौषधियाँ आदि

पदार्थों को जीर्ण कर ले, किन्तु इससे पारद की मात्रा एवं स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हो, तो इसे पारद की जारणा कहते हैं। यथाह माधवः—

जारणा हि नाम गालनपातनव्यतिरेकेण ग्रस्तघनहेमादिरसस्य पूर्वावस्थाप्रतिपन्नत्वं जारणा। (आयु. प्रकाश १।१०७) अर्थात्—तुलया तोलितो नाधिको भवेदिति यावत्। आचार्य सोमदेव ने जारणा की परिभाषा इस प्रकार दी है। बिड एवं यन्त्रों के माध्यम से पिघले हुये धातुओं के ग्रास का पारद में पूर्ण रूपेण विलीन हो जाने की क्रिया को जारणा कहते हैं। इसके करोड़ों प्रकार हैं।

द्रुतग्रासपरीणामो बिडयन्त्रादियोगतः ।
जारणेत्युच्यते तस्याः प्रकाराः सन्ति कोटिशः ॥
(रसेन्द्रचूडामणिः ४।१०२)

इसके अतिरिक्त अन्य आचार्यों ने कहा भी है कि पारद में पिघली हुयी (द्रुतधातुओं) धातुओं के जीर्ण होने के बाद ग्रास का क्षय होना ही जारणा है।

"द्रुतग्रासक्षय एव जारणा"।

अर्थात् दीपन संस्कार के बाद चार महत्त्वपूर्ण संस्कारों गगनभक्षण-चारण-गर्भद्रुति एवं बाह्यद्रुति के बाद जारणा संस्कार किया जाता है। ये चारों संस्कार जारणा संस्कार के अन्तर्गत ही आते हैं। जारणा क्रम में प्रथम अष्टसंस्कार के बाद सर्व प्रथम पारद को बुभुक्षित किया जाता है जिसे मुखकरण कहा जाता है। बुभुक्षित पारद में अभ्रकग्रास एवं अभ्रकादि का चारण कर पुनः गर्भ एवं बाह्यद्रुति बनाकर उक्त मुखकरण से युक्त बुभुक्षित पारद में उन द्रुतियों के जारणोपरान्त जारणा संस्कार किया जाता है। जारणा संस्कार सफलता पूर्वक पूर्ण होने पर देहवाद या धातुवाद की अधिकांश गुत्थियाँ सुलझ जाती है या ऐसा कहें कि अधिकांश कार्य सम्पन्न हो जाता है।

जारणा संस्कारित पारद के अन्दर अभ्रक-सुवर्णादि पत्रों के जीर्ण हो जाने पर पुनः उसे वस्त्र से छाना न जाय और न ही त्रिविध पातनादि कार्य किये जाँय। क्योंकि शास्त्र इसके लिये निषेध करता है। सम्भवतः पारद ठोस हो जाता होगा जिसका गालन-पातन सम्भव नहीं होगा।

धातु जारित पारद धातु सम्पर्क होने या धातुगर्भ-(amalgam) होने पर न कपड़ा से छन सकता है और न ही उसका ऊर्ध्वपातन ही हो सकता है। अतः

"रसस्य पूर्वावस्था" शब्द पारद का तोल (weight) से ही सम्बन्धित है, न कि द्रवस्वरूप पारद से। यद्यपि कुछ लोग यह तर्क उपस्थित करते हैं कि गर्भद्रुति एवं बाह्यद्रुति द्रव स्वरूप है अतः जारण परिणाम भी द्रव ही होगा अर्थात् जारणोपरान्त पारद अपने पूर्वावस्थानुसार "गलद्रूप्यनिभं" ही होगा, तथापि यहाँ वार्तिक कार का अभिप्राय इससे भिन्न है। उनका अभिप्राय है कि उक्त जारित पारद का गालन-पातन नहीं किया जाय। क्योंकि वह पारद गालन-पातन के योग्य नहीं रहता होगा। वह अवश्य ही ठोस हो जाता होगा, तभी शास्त्रकारों ने निषेध किया है।

जारणा के बाद यदि पारद द्रव रूप ही रहे तो भी उसका गालन-पातन नहीं किया जाय, क्योंकि सम्भव है कि जारित धातु के अधिकांश भाग वस्त्र में छन जाय और सुवर्णादि कुछ पारद के साथ amalgam बनकर वस्त्र में ही रह जाय। यदि छानने के बाद यही परिणाम निकलना है तो उसका जारण क्या हुआ? अतः जारण संस्कार में ग्रास का तोल क्षय अवश्य होना चाहिये। इस क्रिया के बाद निश्चित ही पारद ठोस हो जाता है, ऐसा मेरे पूज्य गुरुदेव स्व० पं० हजारीलाल शुक्ल जी का भी विचार था। क्योंकि वे २-४ बार पारद में स्वर्ण का जारण किये थे।

जारणा भेद—

अ. १. भूचरी जारणा २. खेचरी जारणा

ब. १. बाल जारणा २. वृद्ध जारणा

स. १. समुख जारणा- २. निर्मुख जारणा ३. वासनामुख जारणा।

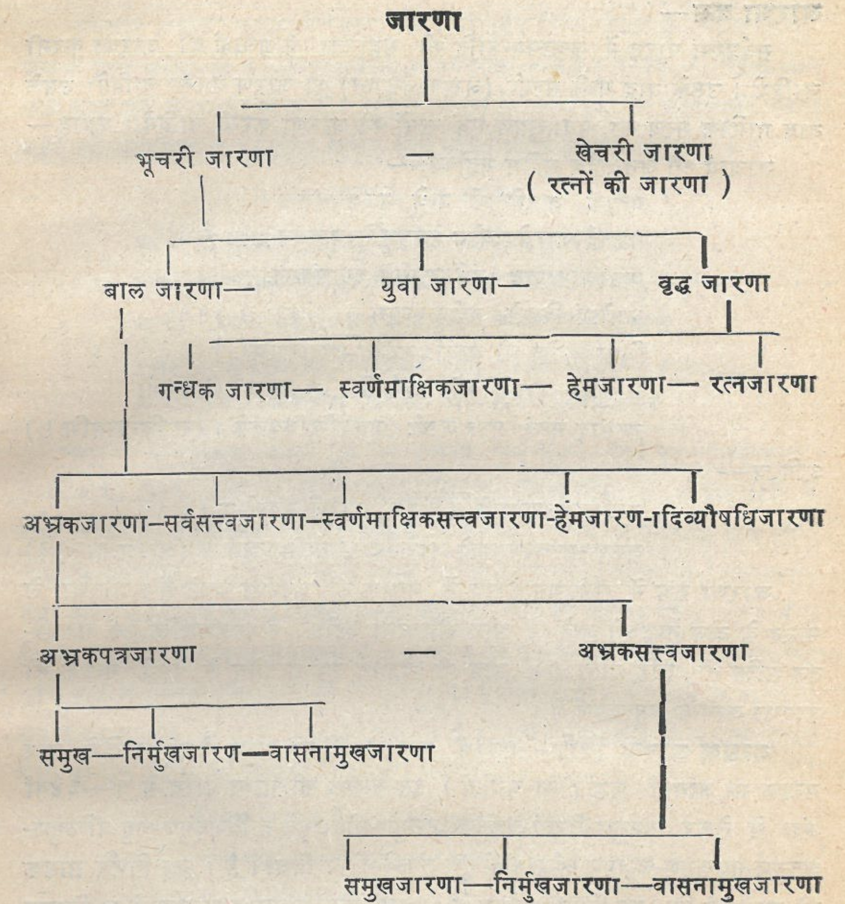
यथा अ. भूचरी जारणा प्रोक्ता खेचरी जारणा शृणु। रसार्णव ११। ९८

ब. जारणा द्विविधा बालजारणावृद्धजारणा ।। रसार्णव ११। ७

स. समुखं निर्मुखं चैव वासनामुखमेव च। रसार्णव ११। १५

पारद बुभुक्षित होगा तभी वह अन्य धातुओं को भक्षण करेगा। बुभुक्षित के बाद उसमें धातु आदि का जारणोपरान्त कुछ अंश भी दिखाई न दे। उसकी स्थिति बताते हुये आचार्य कहते हैं कि वह अवशिष्ट उतना ही बचेगा, जितना पारद मूल में लिया गया होगा। यथाह—

गालनैरूर्ध्वपातैश्च स्वर्णं नायाति दृक्पथम्।
मूलमानं च यत्रास्ते जानीयात्तं बुभुक्षितम्॥ (रसार्णव)



उपर्युक्त तालिका में जो जारणा के भेद बताये गये हैं वे किसी एक ग्रन्थ के नही हैं, अपितु रसशास्त्रीय ग्रन्थों के सम्मिलित अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकाला गया है।

भूचरी जारणा के भेद में ही बाल-युवा-एवं वृद्ध जारणा क्रमशः कहा गया है। ये जारणा पारद में अभ्रकपत्र एवं अभ्रकसत्त्व जारण के लिये कहा गया है।

१. समाभ्रजीर्ण पारद को बाल जारणा कहते हैं।

२. चतुर्गुणाभ्रजीर्ण पारद को युवा जारणा कहते हैं।

३. षड्गुणाभ्रजीर्ण पारद को वृद्ध जारणा कहते हैं।

जारणा क्रम—

सर्वप्रथम पारद में कच्छपयन्त्रादि की सहायता से गन्धक की जारणा करनी चाहिये। उसके बाद सभी सत्त्वों (अभ्रक-वैक्रान्त) का जारण करना चाहिये; उसके बाद माक्षिक सत्त्व का, पुनः सुवर्ण एवं रत्नों की जारणा करनी चाहिये। यथाह—

आचार्य श्री अनन्तदेव सूरिम महोदयः—

गन्धकं जारयेत्पूर्वं यन्त्रे कच्छपसंज्ञके।
पश्चाद्वै जारयेद्व्योम हेमप्रभृति यद्भवेत् ॥ ७० ॥
पश्चान्नागादयः सर्वे जार्यन्ते रत्नसंकराः।
क्रमोऽयं विद्यते सर्वजारणासु न संशयः ॥ ७१ ॥
विना गन्धेन यो मर्त्याः कुर्वंति धातुजारणाः।
न क्षुधा जायते सूते जरयन्ति न धातवः ॥ ७२ ॥
तस्माद् गन्धं पुरा जार्यः सूतवह्निविवृद्धये। (रसचिन्तामणि ५)

अपि च—

गन्धकजारणमादौ कुर्यादथ जारणं सुवर्णस्य।
जलधरसत्त्वस्य ततो जारणमथ सर्वलोहानाम् ॥ (आ. प्र.१।२१६)

जारणा क्रम में सर्वप्रथम पारद में गन्धक की जारणा करते हैं। जारणा से पारद के दोष नष्ट हो जाते हैं और रोगघ्नता शक्ति, रागग्रहणशक्ति एवं पक्षच्छेदन शक्ति की वृद्धि होती है। साथ ही देहवेध एवं धातुवेध के लिये गन्धक की जारणा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

गन्धक जारण विधि—एतदर्थ अष्टसंस्कारित पारद लेना चाहिये और गन्धक भी अत्यन्त शुद्ध होना चाहिये। इस गन्धक की मात्रा पारद से १—६४वाँ अंश से लेकर समगुण-द्विगुण-चर्तुगुण-अष्टगुण-षोडशगुण-द्वात्रिंशद्गुण-चतुःषष्ठिगुण-शतगुण-सहस्रगुण-लक्षगुण-और कोटिगुण तक लेने का विधान है। यह निर्णय साधक को करना है कि वह किस उद्देश्य से गन्धक का जारण कर रहा है। जितना अधिक गन्धक पारद में जीर्ण होगा, पारद उतना ही बलवान् एवं गुणशाली होगा।

किन्तु रसार्णवकार का मत इससे भिन्न है। यथा—

गगनं जारयेदादौ सर्वसत्त्वमतः परम्।
ततो माक्षिकशुद्धं च सुवर्णं तदनन्तरम् ॥ (रसार्णव ११।८)

गन्धक जारणार्थ यन्त्र—

कच्छपयन्त्र–इष्टिकायन्त्र–डमरुयन्त्र–बालुकायन्त्र–लवणयन्त्र
नाभियन्त्र–पालिकायन्त्र–भूधरयन्त्र–मूषायन्त्र–दर्वीयन्त्र।

गन्धक जारण के लिए दो विधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं।

१. अन्तर्धूम — २. बहिर्धूम

अन्तर्धूम जारणा मध्यमाग्नि द्वारा सावधानी पूर्वक किया जाता है। किन्तु बहिर्धूम के लिये अग्नि पर अधिक अंकुश की आवश्यकता नहीं है। गन्धक जारण के लिए पात्र-मूषा एवं काचकूपी श्रेष्ठ है। गन्धक जारण में अग्न्यंकुश पर सावधानी रखना बहुत ही आवश्यक है। क्योंकि गन्धक हीन पारद शीघ्र ही उड़ जाता है।

जारणा का प्रकार

तप्ते तीक्ष्णसमुद्भवे सुविमले खल्वेऽथ सूतं क्षिपे-
त्पादांशं कनकं विमर्द्य शनकैर्दत्त्वाऽम्लजम्बीरकम् ॥ २० ॥
पात्रे[1] जम्भलवारिणा सुविपुले[2] काचोद्भवे पूरिते
स्थाप्यं सूर्यखरातपे पटुतरं घस्रं ततो मर्दितम्।
तस्मिन्नेव पुनर्ददीत विमलं सञ्चारणात्साम्यता

जारणा के प्रकार बताते हुये आचार्यश्री सर्व प्रथम यहाँ पर "तप्तखल्व" निर्माण के लिये कहते हैं कि तप्तखल्व निर्मल तीक्ष्ण लोह से सम्यग् रीति से निर्माण करावें। तत्पश्चात् उसमें बुभुक्षित पारद और पारद के चतुर्थांश शुद्ध स्वर्ण डालकर मर्दन करें। पुनः जम्बीरी निम्बू स्वरस देकर अग्नि प्रज्वलित (तप्त-खरल बना कर) कर मर्दन करें। स्वरस सूखने पर पुनः पुनः रस डालते रहें। ऐसा तीन दिनों तक करें। तत्पश्चात् तप्तखल्व से उक्त पारद को एक बिजौरा निम्बुस्वरस से पूरित काँच पात्र में भरकर प्रखर सूर्य की रोशनी (धूप) में तीन दिनों तक रखने से पारद में सुवर्ण का उपर्युक्त मात्रा में जारण हो जाता है। पार्वतीपुत्र सिद्ध नित्यनाथ ने भी ऐसी ही एक विधि का उल्लेख किया है। यथा—

तं रसं तप्तखल्वे तु क्षिपेद्वस्त्रेण गालितम्।
पादांशकं पक्वबीजं दत्त्वाऽम्लैर्मर्दयेद्दिनम् ॥ १० ॥
तं क्षिपेज्जारणायन्त्रे जम्बीररससंयुतम्।
तं यन्त्रं धारयेद् घर्मे जारितो जायते रसः ॥ ११ ॥
(रसरत्नाकर वादि १२)

जारणा का प्रकार

पश्चात् कच्छपयन्त्रके सबिडकं घस्रं पचेत्पूर्ववत् ॥ २१ ॥
जार्यं सार्यमनेकशः पुनरिदं बीजं सुपक्वं रसे।

इसके बाद कच्छपयन्त्र में बिड देकर एक दिन तक पूर्ववत् पाक करें। अनेक बार इस तरह जारणा और सारणा करने के बाद सुपक्व बीज को रस में डाल कर अर्थात् पारद में डाल कर जारण करे।

---

१. 'यन्त्रे' इति पाठ भेदः। २. 'च सुनले' इति पाठ भेदः।

विमर्श— अनेक आचार्यों ने अलग-अलग धातुओं को जारण करने के लिए पृथक् पृथक् बिडों का वर्णन किया है। इसी प्रकार पारद को बुभुक्षित करने के लिए भी अनेक बिडों का उल्लेख शास्त्रकारों ने बताया है। यथाह सिद्धनित्यनाथः—रसबुभुक्षितीकरणार्थं बिडः—

दग्धं शंखं रविक्षीरैर्भावितं शतधाऽऽतपे।
ततःपञ्चपुटैः पक्वं रुध्वा रुध्वाथ सम्पुटे ॥ ५४ ॥
तत्समं टङ्कणं क्षिप्त्वा ह्यम्लवर्गेण भावयेत्।
राजावर्तं प्रवालं च दरदं गन्धकं शिला ॥ ५५ ॥
पञ्चानां तु समं चूर्णं शंखतुल्यं नियोजयेत्।
सर्वं तदम्लवर्गेण मर्दयेद् दिवसत्रयम् ॥ ५६ ॥
अयं महाबिडः ख्यातो खोटानां जारणे हितः।
(रसरत्नाकर वादि १०)

रसबुभुक्षितीकरणार्थं बिडः—

त्रिक्षारं पञ्चलवणं नवसारं कटुत्रयम्।
इन्द्रगोपं घनं शिग्रु सूरणं वनसूरणम् ॥ ५९ ॥
भावयेदम्लवर्गेण त्रिदिनं ह्यातपे खरे।
अनेन मर्दितः सूतो भक्षयेदष्टलोहकम् ॥ ६० ॥
(रसरत्नाकर वादि १०)

ज्वालामुखो बिडः—

त्रिक्षारं गन्धकं तालं भूखगं नवसारकम्।
सैन्धवं च समं सर्वं मूत्रवर्गैर्दिनं पचेत् ॥ ६८ ॥
ज्वालामुखो बिडो नाम हितः सर्वत्र जारणे ॥ ६९ ॥
(रसरत्नाकर वादि १०)

सुवर्णजारणार्थं विड—

देवदाली शिफाबीजं गुञ्जासैन्धवटङ्कणम्।
समांशं निचुलक्षारमम्लवर्गेण सप्तधा ॥ ७८ ॥
कोषातकीदलरसैर्भावयेद्दिनसप्तकम्।
तीव्रानलो नाम बिडो विहितो हेमजारणे ॥ ७९ ॥
(रसरत्नाकर वादि १०)

सत्त्वजारणार्थं बिडः—

भावयेन्निचुलक्षारं देवदालीदलद्रवैः।
एकविंशतिवारं तु बिडोऽयं सत्त्वजारणे ॥ ७७ ॥
(रसरत्नाकर वादि १०)

ऐसे ही आचार्य सिद्ध नित्यनाथ ने अनेक प्रकार के बिडो का वर्णन अपने ग्रन्थ रसरत्नाकर में किया है।

परम्परानुसार एक प्रचलित बिड इस प्रकार है—त्रिक्षार-गन्धक-लवण-सूर्यक्षार-कर्पूर-कांक्षी— तालकासीस—शिलाजतु-गौरीपाषाण—नवसादर—बिडलवणानां अथवा-पञ्चलवण-कांक्षी-मनःशिला-मयूरतुत्थाम्लवर्ग-स्नुह्यर्कदुग्ध-मूत्रवर्गाणां कूपिका यन्त्रेण द्रवं निष्कास्य तैः सह मर्दयन्ति। इसी प्रकार अन्य बिडों को भी जानें।

शास्त्रकारों ने कच्छप यन्त्र का वर्णन इस प्रकार किया है। यथा—

जलपूर्णपात्रमध्ये दत्त्वा घटखर्परं सुविस्तीर्णम्।
तदुपरि बिडमध्यगतः स्थाप्यः सूतः कृतः कोष्ठचाम् ॥ १३ ॥
लघुलोहकटोरिकया कृतपटमृत्सन्धिलेपयाऽऽच्छाद्य।
पूर्वोक्तघटखर्परमध्येऽङ्गारैः खदिरकोलभवैः ॥ १४ ॥
स्वेदनतो मर्दनतः कच्छपयन्त्रस्थितो रसो जरति।
अग्निबलेनैव ततो गर्भे द्रवन्ति सर्वसत्त्वानि ॥ १५ ॥
(रसरत्नसमुः ९)

रसरत्नाकर में सिद्ध नित्यनाथ ने भी इसी प्रकार जारणा के लिए कहा है। यथा—

स्वर्णं नागं समावर्त्य माषमात्रं तु घर्षयेत्।
तप्तखल्वे ततस्तस्मिन् पलमेकं रसं क्षिपेत् ॥ २ ॥
सिद्धमूलीद्रवं दत्त्वा मर्दयेत्काञ्जिकैर्दिनम्।
घर्मे वा तप्तखल्वे वा ततो ग्रासं तु दापयेत् ॥ ३ ॥
चतुः षष्ठ्यंशकं पूर्वं द्वन्द्वं सत्त्वं सुभावितम्।
दत्त्वा घर्मे दिनैकं च जारणायन्त्रके क्षिपेत् ॥ ४ ॥
सजम्बीरे दिनं घर्मे धारितश्चरति ध्रुवम्।
त्रिक्षारं पञ्चलवणमम्लवर्गः स्नुहीपयः ॥ ५ ॥
गोमूत्रैर्लोलयेत् सर्वं तेन वस्त्रं घनं लिपेत्।
तन्मध्ये धारितं सूतं वद्ध्वा भूर्जेन वेष्टयेत् ॥ ६ ॥
सिद्धमूल्यम्लसंयुक्ते दोलायन्त्रे त्र्यहं पचेत्।
उद्धृत्योष्णारनालेन क्षालयेल्लोहपात्रके ॥ ७ ॥
वस्त्रपूतं ततः कृत्वा सोष्णे पात्रे विमर्दयेत्।
हस्तेनैव भवेच्छुष्कं यावत्तं पारदं पुनः ॥ ८ ॥
चतुर्गणेन वस्त्रेण गालयेन्निर्मलो भवेत्।
अजीर्णं चेत्पुनर्मर्द्यमम्लं दत्त्वा दिनावधि ॥ ९ ॥
दोलायां स्वेदयेत्तद्वद् भवेज्जीर्णं न संशयः।
(रसरत्नाकर वादि १४)

सारणा संस्कार

तस्मात्सार्यमसंशयं सुविमलं यन्त्रे वसाद्यन्विते ।
मूषां तालसमन्वितां दृढतरां कृत्वाऽथ तस्यां दृढं
पक्वं बीजमथो न्यसेद्रसवरे तैलाक्तयन्त्रस्थिते ॥ २२ ॥

विविध तैल-घृतवसादि से युक्त सुन्दर एवं निर्मल सारणा यन्त्र में सारण करना चाहिये । पुनः मजबूत मूषा को शुद्ध ताल से युक्त करके (अर्थात् मूषा में शुद्ध हरिताल रखकर) सारणा तैल से युक्त पक्व बीज (पारद में स्वर्णादि जीर्ण करना ही पक्वबीज है) को डालकर सारणा करनी चाहिये ।

विमर्श—आचार्य श्री नित्यनाथ ने सारणा तैल इस प्रकार कहा है । यथा—

ज्योतिष्मती करंजाक्ष कटुतुम्बीसमुद्भवम् ।
तैलमेकं समादाय मण्डूकवसया समम् ॥ ३८ ॥
कूर्मसूकरमेषाहिजलौकामत्स्यजाऽपि च ।
एतेष्वेका वसा ग्राह्यापूर्वतैलं समाहरेत् ॥ ३९ ॥
रक्तवर्गः पीतवर्गः क्वाथ्यः क्षीरैश्चतुर्गुणैः ।
पुष्पाणां रक्तपीतानामनेकेषां द्रवं हरेत् ॥ ४० ॥
एतद्द्रावं द्विभागं स्यात्पूर्वक्वाथचतुष्टयम् ।
पातयेत्काकतुडचुत्थं महाराष्ट्रीद्रवं तथा ॥ ४१ ॥
प्रत्येकं भागमेकैकं पूर्वतैलं वसायुतम् ।
योज्यं भागद्वयं तत्र भूलतामलतालकम् ॥ ४२ ॥
द्वन्द्वमेलापयोगैकं तैलात्षोडशकांशकम् ।
प्रत्येकं योजयेत्तस्मिन् सर्वमेकत्र पातयेत् ॥ ४३ ॥
ग्राह्यं तैलावशेषं तद्वस्त्रपूतं सुरक्षयेत् ।
विख्यातं सारणातैलं रसराजस्य सारणे ॥ ४४ ॥
(रसरत्नाकर वादि १०)

इस विधि से सारणा तैल बनाकर पक्वबीज युक्त पारद को सारित करें ।

सारणा संस्कार के बाद की क्रिया

एकीभूतमिदं सुसारितमतः खल्वे विमर्द्यं रसै-
र्जम्बीरप्रभवैर्विडैः समतुलैः कूर्माभिधे जारयेत् ।
जीर्णे बीजरसौ विमर्द्य सलिलैर्जम्बीरलुङ्गोत्थितै-
र्घर्मे धार्यमतस्तु सार्यममलं बीजं त्रिपादं पुनः ॥ २३ ॥
सार्यं जार्यमनेन पूर्वविधिना सिद्धं सुधीभिः पुन-

सारणा संस्कार के बाद यह क्रिया करें । जब पारद में सारित बीज जीर्ण हो जाय अर्थात् बीज एवं पारद का एकीभाव हो जाय, सम्यक् सारित हो जाय, तब उस सारित पारद को तप्तखल्व में रख कर समभाग बिडों को देकर जम्बीरी निम्बूस्वरस के साथ मर्दन करें । पुनः कच्छप यन्त्र में जारण करें । समभाग बीज पारद में जीर्ण हो जाने पर फिर से जम्बीरी एवं मातुलुङ्ग निम्बूस्वरस में मर्दन कर धूप में रखें । तत्पश्चात् उस जारित बीज को वस्त्रपूत करें, पुनः द्विगुण बीज और बिड देकर जम्बीरी स्वरस के साथ मर्दन करें तथा कच्छप यन्त्र में पूर्ववत् जारण करें । द्विगुण बीज जारित पारद को वस्त्रपूत कर जम्बीरी एवं मातुलुङ्ग स्वरस में तीक्ष्ण धूप में तीन दिनों तक रख कर सारित करें । इसी प्रकार सबिड त्रिगुण बीज जारित पारद को वस्त्र पूत कर जम्बीरी एवं मातुलुङ्ग स्वरस में सारित करें ।

विमर्श—आचार्य नित्यनाथ सिद्ध ने पक्वबीज सारण की विधि इस प्रकार बतायी है । यथा—

जारितं सारणायन्त्रे क्षिपेत्तैलं वसान्वितम् ॥ १३ ॥
द्रावितं नालमूषायां पक्वबीजरसान्वितम् ।
तद्यन्त्रे धारयेदेवं सारितो जारयेद् रसः ॥ १४ ॥
सारितं तत्पुनर्मर्द्यं पूर्ववत् बिडसंयुतम् ।
जारयेत्कच्छपे यन्त्रे जीर्णे बीजे तु सारयेत् ॥ १५ ॥
पूर्ववत् सारणायन्त्रे बीजेन द्विगुणेन वै ।
पुनस्तं जारयेत्तदवत्तथैव प्रतिसारयेत् ॥ १६ ॥
त्रिगुणेन तु बीजेन पूर्ववज्जारयेत्पुनः ।
(रसरत्नाकर वादि १२)

मुखबन्धन संस्कार

धत्तूरोद्भवतैलसंयुतमिदं शुद्धं तु तालं समम् ।
द्रावैर्दिव्यगणस्य लोहघटिते तप्तेऽथ खल्वे दिनं
मर्द्यं चान्धितवज्रमूषविधृतं दद्यात्करीषैः पुटम् ॥ २४ ॥
एवं त्रिःपरिपाचितं रसवरं बद्ध्वा मुखं तद्भवे-
च्छुल्बं माक्षिकधौतकं शशिरजस्तीक्ष्णं रसेन्द्रं समम् ।
सर्वं जालिनिकारसैर्दृढतरं मर्द्यं दिनं तत्पुनः
क्षौद्राज्यैस्त्रिदिनं विमर्दितमिदं गोलीकृतं शोषितम् ॥ २५ ॥
वज्रक्रौञ्चिगतं पिधानवसनैराच्छादितं सप्तधा
शोष्यं खादिरकोकिलैः खरतरं तीव्राग्निना संधमेत् ।
खोटं टङ्कणकाचचूर्णमणुशो दत्त्वा पुनः संधमे-
द्वारांस्त्रींस्तरुणार्ककान्तिरमलो बद्धो रसेन्द्रो भवेत् ॥ २६ ॥

सारित एवं जारित पारद को कृष्ण धत्तूरबीज तैल के साथ लोहनिर्मित

तप्त खल्व में रखें, तथा उसमें समभाग शुद्ध हरताल डाल कर दिव्यौषधिगण के द्रव्यों के स्वरस के साथ एक दिन पर्यन्त (२४ घण्टे तक) मर्दन करें। पुनः मर्दित उक्त सारित पारद को वज्रमूषा में रखकर उस मूषा का मुख बन्द कर अर्थात् अन्ध मूषा बनाकर करीषाग्नि से पुट देकर पाक करें। करीषाग्नि से लघु पुट समझना चाहिए। करीष=बन्योपल को कहते हैं ॥ २४ ॥

इस प्रकार तीन बार पाक करने पर पारद में मुख उत्पन्न हो जाता है। इसके बाद पुनः उस पारद में ताम्र-धौतमाक्षिक-रजत और तीक्ष्णलोह समभाग अर्थात् पारद के बराबर प्रत्येक धातु को लेकर तप्त खल्व में जालिनी स्वरस के साथ एक दिन तक दृढ़तर मर्दन करें। तत्पश्चात् मधु एवं घृत के साथ एक दिन तक मर्दन करके गोली बनाकर सुखा लें ॥२५॥

जब उक्त पारद की गुटिका अच्छी तरह से सूख जाय तो उसे वज्रमूषा में रख कर उसका मुख पिधान से बन्द कर सात बार कपडमिट्टी करें और सुखा लें तथा खैर के कोयले की तीव्राग्नि में दृढ़तर (खूबजोर से) धमन करें। तत्पश्चात् उसमें किञ्चिन्मात्र खोट-टङ्कण-काचचूर्ण देकर पुनः पुनः धमन करें। ऐसा तीन बार जोर से धमन करने पर पारद बालसूर्य (उगता हुआ सूर्य अर्थात् लालवर्ण) जैसा कान्ति से युक्त निर्मल होकर बद्ध हो जायगा ॥ २६ ॥

विमर्श—ऐसा मुख बन्धन प्रकार सिद्ध नित्यनाथ ने भी कहा है। यथा—

तद्रसं तालकं तुल्यं तैलं धत्तूरसम्भवम्।
दिव्यौषधिगणद्रावैः सर्वं मर्द्यं दिनावधि ॥ १७ ॥
वज्रमूषान्वितं पच्यात्करीषाग्नौ दिनावधि।
पुनर्दिव्यौषधीद्रावैर्मर्द्यं पाच्यं दिनावधि ॥ १८ ॥
इत्येवं च पुनः कुर्यात्सूतो बद्धमुखो भवेत्।
तं रसं धौतमाक्षीकं तीक्ष्णं शुल्बरजः शशी ॥ १९ ॥
समांशं देवदाल्युत्थद्रवैर्मर्द्यं दिनावधि।
त्रिदिनं मधुसर्पिभ्यां मर्दितं गोलकीकृतम् ॥ २० ॥
वज्रमूषागतं रुध्वा शोष्यं तीव्राग्निना धमेत्।
खदिराङ्गारयोगेन खोटबद्धो भवेद्रसः ॥ २१ ॥
तत्खोटं टङ्कणैः काचैः शोधयेद्वै धमन्धमन्।
तेजःपुञ्जो रसो बद्धो बालार्कसदृशो भवेत् ॥ २२ ॥
(रसरत्नाकर वादि १२)

माक्षिकसत्त्व को ही आचार्य ने धौतमाक्षिक संज्ञा से उद्धृत किया है। दिव्यौषधियाँ ६४ प्रकार की कही गयी हैं। इसके लिए रसेन्द्रचूडामणि की मेरी व्याख्या देखी जा सकती है।

क्रामण संस्कार या वेधनक्रम

तं सिक्थेन सुवेष्टितं कनकजे सामुद्गके स्थापितं
तारं क्रामणसंयुतं शतमितं स्वर्णं भवेद्वल्लतः ॥ २७ ॥
अष्टानवतिभागं स्याद्रौप्यमेकं च हाटकम्।
एको भागो वेधकः स्यादित्येवं वेधनक्रमः ॥ २८ ॥

नोट—२७वाँ श्लोक अपूर्ण एवं आधा है, दो ही चरण इसमें है तथा आचार्य श्री ने पहली बार २८वाँ श्लोक अनुष्टुप छन्द में प्रयोग किया है जो शुद्ध है।

उपर्युक्त सिद्ध पारद को मधूच्छिष्ट (मोम) से आवृत करें अर्थात् मोम की छोटी कटोरी जैसा पात्र बनाकर उसी में सिद्ध पारद रख कर मुख आवृत कर दें। पुनः स्वर्ण पात्र में मूँग (द्विदल जातीय मुद्ग) भरकर उसी मूँग के बीच में मोमवेष्टित पारद को २१ दिनों तक स्थापित कर उनका पूजन करें।

अब इस सिद्धबीज का प्रयोग बताते हुये आचार्य श्री कहते हैं कि एक मूषा में चाँदी पिघला कर इस सिद्ध पारद का शतांश में क्षेपण करने मात्र से स्वर्ण रूप में परिवर्तित हो जाता है।

अनुष्टुप छन्द में प्रयुक्त २८वाँ श्लोक में भी इस सिद्ध पारद बीज का शतांश वेधक प्रयोग ही बताया गया है। इसमें कहा है कि एक मूषा में ९८ भाग या ९८ रत्ती चाँदी रख कर उसमें १ रत्ती स्वर्ण डालें और धमन करें। रजत एवं स्वर्ण के द्रवित होने पर उसमें सिद्ध पारद बीज १ रत्ती क्षेपण करें तो शुद्ध स्वर्ण हो जायेगा।

विमर्श—आचार्य सिद्ध नित्यनाथ ने भी इसी प्रकार से रौप्यवेध का एक प्रकार बताया है। यथा—

तं रसं सिक्थकेनैव वेष्टयित्वाऽथ पूजयेत्।
शतांशेन द्रुते तारे क्रामणेनैव संयुतम् ॥ २३ ॥
तत्तारं जायते स्वर्णं जाम्बूनदसमप्रभम्।
अष्टानवति भागं स्याद्रौप्यमेकं च हाटकम् ॥ २४ ॥
(रसरत्नाकर वादि १२)

वेध एवं क्रामण संस्कार का प्रकार
(कामाभिधो रसः)

शुद्धं संस्कृतिभिस्तथा सुविमलं गन्धं रसं भावितं
पात्रे[1] लोहतुलामये विनिहितं धूमं पिबत्यल्पशः।
एवं षोडशभागगन्धजनितं धूमं हि चार्यं मुहुः
पश्चाद्गन्धकवासितो रसवरो नाम्ना तु कामाभिधः ॥ २९ ॥

१. यन्त्रे इति पाठ भेदः।

अनेक संस्कारों से संस्कृत विशुद्ध एवं निर्मल पारद तथा गन्धक को एक खरल में पृथक्-पृथक् कोषातकी एवं लाङ्गली के रसों की भावना देकर लौह पात्रों से निर्मित तुलायन्त्र के एक पात्र में पारद तथा दूसरे पात्र में गन्धक रखें। जिस पात्र में गन्धक रखा हो उनके नीचे अग्नि दें और जिस पात्र में पारद हो उसके नीचे पानी रखें। इस तरह अग्नि से द्रवित एवं वाष्पित होकर गन्धक तुलायन्त्र की नलिका से गन्धक धूम के रूप में पारद पात्र में जायगा तथा पारद थोड़ी-थोड़ी मात्रा में धीरे-धीरे गन्धक धूम्र को पीयेगा और अपने में (पारद में) जीर्ण करेगा। इसी प्रकार बार-बार १६ बार इसी क्रम से पारद में गन्धक धूम्र का चारण करना चाहिये। इसके बाद पारद को गन्धक से वासित करें। इस तरह सिद्ध पारद को "कामरूप" या कामधेनु नाम से जाना जाता है। गन्धक वासित का अभिप्राय यह है कि एक मूषा में पहले शुद्ध गन्धक चूर्ण ४ तो० रखकर हाथ से दवा दें तथा उस पर ८ तो० सिद्ध पारद रख कर मूषा मुख बन्द कर १ सप्ताह तक छोड़ दें। यही गन्धक वासित है।

विमर्श—आचार्यों ने दो प्रकार के तुला यन्त्र का वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है। एक का वर्णन संक्षेप में हम ऊपर कर चुके हैं, नीचे विस्तार से कह रहे हैं। किन्तु तुलायन्त्र जो अधिकतर ग्रन्थों में वर्णित है, में बनावट दोनों का एक जैसा है। एक मूषा में पारद तथा दूसरी मूषा में गन्धक रखकर मूषा मुख बन्द कर "बालुका यन्त्र" में बन्दकर पाक करते हैं। किन्तु आचार्य विन्दु सिर्फ गन्धक वाली मूषा के नीचे ही आग डाल कर पाक करते हैं। पारद की मूषा को पानी में डालकर शीतल किये रहते हैं। यही भिन्नता है। किन्तु आनन्दकन्दकार इनके ही पक्षधर हैं।

यथा— तुलायन्त्रं तुलाऽऽकारं मूषायन्त्रं तदुच्यते।
लोहमूषाद्वयं कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः॥
ईषच्छिद्रान्वितामेकां तत्र गन्धकसंयुताम्।
मूषायां रसयुक्तायामन्यस्यां तां प्रवेशयेत्॥
तोयं स्यात्सूतकस्याधो गन्धाधो वह्निदीपनम्।

(आनन्दकन्द परिशिष्ट पृ० ६७६)

पक्वबीज और बिड पहले ही हम कह चुके हैं। इस सम्बन्ध में रसरत्नाकरकार सिद्ध नित्यनाथ ने भी इसी प्रकार से कहा है। यथा—

अथ शुद्धस्य सूतस्य जारयेत्पूर्वभावितम्।
गन्धकं तु तुलायन्त्रे पश्चात्सर्वं पलं पलम्॥ २८॥
मूषा नालान्विता ऊर्ध्ववक्त्रा स्याद्द्वादशांगुला।
दृढा लोहमयी कार्या त्वनया सदृशी परा॥ २९॥

एकस्यां निक्षिपेत्सूतमन्यस्यां गन्धकं समम्।
एकस्या मुखमध्ये तु ह्यपरस्या मुखं क्षिपेत्॥ ३०॥
लिप्त्वा मृल्लवणैः सन्धिं गन्धकाधः पुटं लघु।
रसस्याधो जलं स्थाप्यं गन्धं धूमं पिबत्यलम्॥ ३१॥
जीर्णे गन्धे समुद्घाटच तुल्यं गन्धं च दापयेत्।
इत्येवं षोडशगुणं गन्धं जार्यं पुनः पुनः॥ ३२॥
जारितः सूतराजोऽयं वासनामुखितो भवेत्।

(रसरत्नाकर वादि १४)

वेध एवं क्रामण संस्कार का प्रकारान्तर

व्योमादिप्रभवं तु सत्त्वममलं साध्यं ततश्चारये-
त्सार्यं जार्यमनेकशो [1]मुखभवं बन्धं च संक्रामकम्।
चन्द्रार्के निहितं सहस्रशतशो वेधेन जाम्बूनदं
कुर्याद्दानविधौ नियोज्य सकलं भोगे च राजोचिते॥ ३०॥

कृष्णवज्राभ्रक (आदि शब्द से स्वर्णमाक्षिक वैक्रान्त सत्त्वों को ग्रहण करना चाहिए) द्रव्यों के विशुद्ध एवं निर्मल सत्त्व को उपर्युक्त पारद में बिड दे कर अनेक बार चारण-सारण एवं जारण करें। ऐसा करने से पारद में मुखोत्पन्न हो जाता है, और पारद बन्ध जाता है। यह पारद चाँदी को शतांश एवं सहस्रांश में बेधन कर विशुद्ध स्वर्ण रूप में परिणत कर देता है। इस विशुद्ध स्वर्ण का अनेक प्रकार से दान देकर और स्वयं इसका उपयोग कर राजा के जैसा उपभोग कर कर सम्मानित जीवन व्यतीत करें।

विमर्श—आचार्य नित्यनाथ सिद्ध ने भी इसी प्रकार से कहा है। यथा—

व्योमसत्त्वं ताप्यसत्त्वं शुल्बं शुद्धं समं समम्।
आवर्त्यं द्वन्द्वलिप्तायां मूषायामथ चूर्णयेत्॥ ३४॥
भावयेदभिषेकेन पूर्ववच्छतवारकम्।
पूर्ववच्चारयेदेतद्वासनामुखिते रसे॥ ३५॥
तावज्जार्यं प्रयत्नेन यावद्भवति षड्गुणम्।
तत्सूते सारितं जार्यं सिद्धबीजं तु पूर्ववत्॥ ३६॥
मुखं च बन्धनं कृत्वा वेधायान्तं प्रदापयेत्।
क्रामणेन समायुक्तं चन्द्रार्कं काञ्चनं भवेत्॥ ३७॥
सहस्रांशेन तत्सत्यं रसोऽयं कामरूपकः।

(रसरत्नाकर वादि १४)

---

१. मुखवधं पाठ भेदः।

वेध एवं क्रामण संस्कार का प्रकारान्तर

यद्वा निष्कशतं शतांशविमले गन्धं रसं कन्यका-
द्रावैर्मर्द्यमथोर्ध्वपातविधिना चोर्ध्वं नयेत्पारदम् ।
तं संगृह्य पुनर्नयेत्सुविमले यन्त्रेऽथ भूसंज्ञके
पाकं कुम्भिपुटैस्त्रिसप्तदिवसं गौर्याख्ययन्त्रे क्षिपेत् ॥ ३१ ॥
[1]एकद्वित्रिचतुः क्रमेण शतशो जार्यं तु लक्षावधि
चार्यं जार्यमनेकबीजघटितं[2] स्वर्णं शतादिक्रमैः ।
बद्ध्वाऽऽस्यं रसखोटशोधनमथो बन्धं च वेधं क्रमा-
त्तारे क्रामणसंयुतं शतगुणे युञ्ज्याद्रसं[3] पूर्ववत् ॥ ३२ ॥
पूर्वैर्भावितगन्धकं रसवरे जार्यं तु षड्भागतो
यन्त्रेणाथ तुलाभिधेन च ततः कोषातकी लाङ्गली ।
खल्वेतद्द्रवतो दिनावधि पुनः पादांशकं बीजकं
चार्यं जार्यमनेकशो बिडयुतं कूर्माभिधे तं रसम् ॥ ३३ ॥
त्रिर्बीजेन सुसारितं त्वथ मुखं बद्ध्वा तु खोटं चरे-
च्छोध्यं टंकणकाचतोऽर्कसदृशो बद्धो भवेत्पारदः
तं संक्रामणयोगतः शतगुणे तारे तु वेधः क्रमा-
देवं गन्धकयोगतो बहुविधं कुर्यात्सुधीः काञ्चनम् ॥ ३४ ॥

अथवा १०० निष्क विशुद्ध पारद लें (निष्क २४ रत्ती के बराबर मान का एक पर्याय है) अर्थात् २५ तोले लगभग है, तथा विशुद्ध गन्धक पारद से शतांश अर्थात् १ निष्क=२४ रत्ती लें। दोनों को एक खरल में रखकर श्लक्ष्ण कज्जली बनावें और घृतकुमारी स्वरस की भावना देकर मर्दन करें। सूखने के बाद उक्त भावित कज्जली को उर्ध्वपातनयन्त्र में रखकर विधिपूर्वक ऊर्ध्वपातन करें। पुनः ऊर्ध्वपातनयन्त्र के ऊर्ध्व पात्र से पारद को ग्रहण करें। तत्पश्चात् पुनः उस पारद में पूर्वप्रमाण में अर्थात् १ निष्क शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली करें और कुमारी स्वरस की भावना दें। सूखने पर उक्त कज्जली को शरांवसम्पुट कर भूधर यन्त्र या कुम्भपुट (भाण्डपुट) में पाक करें। तत्पश्चात् पूर्वमान में पुनः कज्जली बनाकर गौरी यन्त्र में २१ दिनों तक पाक करें ।। ३१ ॥

इसी प्रकार से एक बार, दो बार, तीन बार, चार वार एवं क्रमशः एक सौ बार तथा लाख बार उक्त पारद में गन्धक का चारण एवं जारण करें। अनेक बीजों (स्वर्ण-रजतादि) से घटित (मर्दित) कर सौ बार तथा हजारों बार

१. 'एवं' इति पाठभेदः ।   २. 'पुटितं' इति पाठभेदः ।   ३. 'रसे' इति पाठभेदः ।

जारण करें। ऐसा करने से वह पारद बद्ध होकर उसमें मुखोत्पन्न होगा और खोट होकर वेधन गुण से युक्त होकर सौ गुना चाँदी को क्रामित करता है ।। ३२ ॥

पुनः गन्धक में कोषातकी एवं लाङ्गली स्वरस की भावना दें और पारद के साथ मर्दन कर कज्जली बनाकर तुलायन्त्र में छः गुना भावित गन्धक का जारण करें और तत्पश्चात् तप्त खल्व में कोषातकी एवं लाङ्गली स्वरस दे कर एक दिन पर्यन्त मर्दन करें। पुनः उस पारद में बिड देकर कच्छप यन्त्र में चतुर्थांश बीज के साथ अनेक बार (उस पारद को) जारण करें ।। ३३ ॥

पुनः तीन बीजों (स्वर्ण-रजत-ताम्र) से सम्यक्तथा सारित, मुखोत्पन्न एवं बद्ध (पारद) खोट को जारण करें। इस प्रकार से जीर्ण यह पारद बद्ध हो कर टङ्कण, काचलवण एवं सूर्य जैसा शुभ्र हो जाता है। क्रामण योग से यह पारद १०० गुनी चाँदी को विद्ध कर स्वर्ण कर देता है। अर्थात् शतवेधी पारद स्वर्णबीज रूप में तैयार हो जाता है। इसी प्रकार जारित गन्धक योग से अनेक प्रकार से विद्वान् साधक स्वर्ण निर्माण करें।। ३४ ॥

विमर्श—शतवेधी पारद (बीज) बनाने के लिए आचार्य श्री नित्यनाथ सिद्ध ने भी इसी प्रकार की एक विधि का उल्लेख किया है। यथा—

शतनिष्कं शुद्धसूतं दशनिष्कं तु गन्धकम् ।
श्लक्ष्णं कन्याद्रवैर्मर्द्यं पातनायन्त्रके पचेत् ।। ११३ ॥
ऊर्ध्वलग्नं समादाय गन्धकं दश निष्ककम् ।
दत्त्वा मर्द्यं पुनस्तद्वद् यन्त्रे पाच्यं तु भूधरे ।। ११४ ।।
एवं पुनः पुनः कुर्यादेकविंशतिवारकम् ।
गौरीयन्त्रे तु तत्सूतं क्षिप्त्वा देयं तु गन्धकम् ।। ११५ ।।
भावितं पूर्वयोगेन विंशत्यंशेन चूर्णितम् ।
रुद्ध्वा लघुपुटे पाच्यं जीर्णे गन्धं प्रदापयेत् ।। ११६ ।।
एवं पुनः पुनर्जार्यं यथाशक्तिक्रमेण वै ।
जीर्णे शतगुणे गन्धे शतवेधी भवेद्रसः ।। ११८ ।।
सहस्रगुणिते जीर्णे सहस्रांशेन वेधयेत् ।
लक्षजीर्णे लक्षवेधी कोटिवेधी भवेद्रसः ॥ ११८ ॥
जीर्णे कोटिगुणे गन्धेऽप्येवं स्यादुत्तरोत्तरम् ।
सारयेत्पक्वबीजेन पूर्ववज्जारयेत्क्रमात् ।। ११९ ।।
मुखं वद्ध्वा रसं वद्ध्वा तारे वेधं प्रदापयेत् ।
जायते कनकं दिव्यं देवाभरणभूषणम् ।। १२० ।।
(रसरत्नाकर १६)

इस विधि में आचार्य नित्यनाथ ने कहा है कि शतगुण-सहस्रगुण-लक्षगुण एवं कोटिगुण गन्धक जारण करने से पारद में उतनी ही वेधन शक्ति उत्पन्न होती है।

हिङ्गुलोत्थ संस्कारित पारद से सहस्रांश वेधन

हिङ्गूलोत्थमथो रसेन्द्रममलं संस्वेदितं सप्तधा
भूनागैः सह मर्दितं दृढतरं खल्वे तु तप्ते ततः।
पात्यं चोर्ध्वविलग्नमाहृतरसं पादांशतो द्वन्द्वितं
व्योम्नः सत्त्वमतस्तु माक्षिकभवं पादांशतो जारयेत्॥ ३५॥
सर्वेषां खलु सत्त्वकं मृदुतरं तप्तं दिनैकं पुन-
र्गर्भद्रावकसंयुतं विमृदितं[1] जातद्रवं पूर्ववत्।
मूषायां सुविपाचितं पुनरिदं [2]सत्त्वे सुजीर्णे पुन-
र्देयं पाच्यमनेकशो द्रुततरं द्रावं सुपक्वं वसु॥ ३६॥
मात्रापाकबिडप्रयोगमखिलं पूर्वक्रमेणैव त-
च्चार्यं जार्यमनेकशः पुनरिदं सार्यं च जार्यं क्रमात्।
एवं क्रामणशोधनं च बहुशः कृत्वाऽथ तारे लवं
दत्त्वा स्वर्णचयं सहस्रगुणितं कुर्याद्यथेष्टं भिषक्॥ ३७॥
यद्वा भूफणिसत्त्वतैलममलं भूनागचूर्णैर्युतं
मूषां वज्रमृदा विधाय तदधो निक्षिप्य सूतस्य हि।
दत्त्वा चोर्ध्वमधो निरुध्य सकलां काचेन टङ्केन वा
पाच्या भूधरयन्त्रगा तुषकरीषाग्नौ तु घस्रं पुनः॥ ३८॥
एवं मासयुगं क्रमेण रचितो बद्धश्च रक्षः समो
वह्नौ तिष्ठति लोहसत्त्वममलं भुंक्ते दवाग्निर्यथा।
कुर्यात्पूर्ववदेव जारणविधिं बन्धं च संक्रामणं
वेधं पूर्ववदेव कोटिगुणितं चन्द्रार्कयोः काञ्चनम्॥ ३५॥

हिंगुल से प्राप्त पारद (हिंगुलोत्थ पारद) जो पूर्णतया विशुद्ध है, उसे सात बार क्षार-अम्लादि वर्ग में स्विन्न कर लें। तत्पश्चात् उक्त पारद को भूनाग के साथ तीन दिनों तक दृढ़ मर्दन करें और ऊर्ध्व पातन यन्त्र में इस पिष्ट को रखकर विधिवत् ऊर्ध्वपातन करें। स्वाङ्गशीत होने पर ऊर्ध्वपातन यन्त्रके उपरि पात्र में संलग्न पारद को वस्त्र से रगड़ कर (पारद) प्राप्त करें। पुनः उक्त पारद में चतुर्थांश अभ्रकसत्त्व और चतुर्थांश माक्षिक सत्त्व को द्वन्द्वित कर बिड के साथ जारण करें। अभ्रक-माक्षिक सत्त्वों के जारणार्थ बिडों का वर्णन पिछले श्लोकों में किया गया है॥ ३५॥

1. तु विमृतं" इति पाठभेदः। 2. जीर्णे" इति पाठभेदः।

विमर्श—आचार्य नित्यनाथ सिद्ध ने भी इसी प्रकार से सहस्र वेधी पारद के लिए कहा है। यथा—

हिंगुलोत्थितसूतं च भूनागैर्मर्दयेत्त्र्यहम्।
तप्तखल्वे ततः पात्यमूर्ध्वलग्नं समाहरेत्॥ ७२॥
पादांशं जारयेत्तस्य द्वन्द्वितं व्योमसत्त्वकम्।
ततो माक्षिकसत्त्वं च पादांशं तत्र जारयेत्॥ ७३॥
पूर्ववद् द्वन्द्वयोगेन मात्रापाकं च पूर्ववत्।
(रसरत्नाकर वादि १५)

महारस-रस-उपरस-साधारण रसों का सत्त्व पातन करें तथा प्रत्येक का पादांश सत्त्व लेकर पारद के साथ तप्त खल्व में गर्भद्रावक ओषधों एवं बिडों के साथ द्रव रूप होने पर्यन्त मर्दन करें। इसके बाद उक्त मर्दित एवं द्रवित पारद एवं रसादि सत्त्वों को मूषा में रखकर बिडादि पाचन द्रव्यों के साथ सत्त्व को पारद में जीर्ण करें। ऐसा अनेक बार बिडादि पाचन द्रव्यों को दे-देकर द्रवित रसादि सत्त्वों का सुपाक द्वारा आठ बार जारिण करें। वसु आठ संख्या वाचक है॥ ३६॥

इसी तरह सत्त्व की मात्रा, पाक काल, अग्नि, बिड, यन्त्र एवं प्रयोगादि सभी बातें पूर्ववत् या पूर्वक्रम जैसा स्थिर रखते हुये अनेक बार चारण एवं जारण करें। पुनः क्रमशः उसका अनेक बार सारण एवं जारण करें। इसी प्रकार क्रामण और शोधन बहुत बार करने के बाद इस निर्मित तथा सिद्ध पारद को पिघली चाँदी पर लेश मात्र (लव=सूक्ष्मांश को कहते हैं) निक्षेप करने से या डालने मात्र से सहस्रांश वेधित स्वर्ण समूह को वैद्य प्राप्त करें। अर्थात् पिघली चाँदी पर उक्त बीज का अत्यल्प मात्रा में (सहस्रांश में देकर) वैद्य अत्यधिक मात्रा में स्वर्ण प्राप्त करें। स्वर्णचयं=स्वर्णसमूहं अर्थात् भण्डार प्राप्त करें, ऐसा अर्थ है॥ ३७॥

आचार्य नित्यनाथ सिद्ध ने भी इसी प्रकार की विधि बतलायी है। यथा—

महारसैश्चोपरसैर्यत्सत्त्वं पातितं पुरा॥ ७४॥
तत्सत्त्वं च पृथक्पादं सूते दत्त्वा विमर्दयेत्।
तप्तखल्वे दिनैकं तु गर्भद्रावणसंयुतम्॥ ७५॥
द्रवत्येव ततो जार्यं मूषायन्त्रे तु पूर्ववत्।
जीर्णे जीर्णे पुनर्देयं प्रतिसत्त्वं क्रमेण वै॥ ७६॥
ततस्तथैव पादांशं गर्भद्रावणबीजकम्।
पूर्ववद्द्रावितं जार्यं क्रमेणानेन षड्गुणम्॥ ७७॥

सारणादि क्रामणान्तं तारे वेधं प्रदापयेत् ।
सहस्रांशेन तत्स्वर्णं भवेज्जाम्बूनदप्रभम् ॥ ७८ ॥
(रसरत्नाकर वादि १५)

अथवा भूनाग सत्वतैल के साथ पारद को मर्दन करें। तत्पश्चात् मिट्टी आदि उपकरणों के द्वारा वज्रमूषा बनावें तथा उस वज्रमूषा में पहले भूनाग चूर्ण रख कर उसमें उपर्युक्त भूनाग तैल मर्दित पारद रखें और पारद के ऊपर भी भूनाग चूर्ण डाल दें। अर्थात् पारद के ऊपर नीचे भूनाग चूर्ण से ढक दें और भूनाग सत्व जारणार्थ बिडादि देकर मूषा मुख को पिधान से बन्द कर काचलवण या टंकण से सन्धि बन्धन कर तुष एवं करीषाग्नि (करीब=वन्योपल) से एकदिन पर्यन्त भूधरयन्त्र में पाक करें ॥ ३८ ॥

इसी क्रम से दो महीने तक अर्थात् ६० बार पूर्वक्रम से भूनागादि सत्त्वों को गन्धक योग से १-१-दिन तक जारण करें। इससे पारद अपने स्वरूप की रक्षा करते हुये बद्ध हो जाता है। जिस प्रकार बुभुक्षित दावाग्नि वनों को जलाकर अपनी बुभुक्षा को तृप्त करती है, उसी प्रकार बुभुक्षित पारद निर्मल भूनागादि सत्त्वों को अपने में जीर्ण कर बद्ध होकर क्रामण (अन्य धातुओं में प्रवेश करने की शक्ति) गुण से युक्त हो जाता है। यह बद्ध पारद वेध गुणों से युक्त होकर करोड़ गुना चांदी और ताम्र को वेध कर दिव्य स्वर्ण में परिणत कर देता है ॥ ३९ ॥

विमर्श—आचार्य श्री नित्यनाथ सिद्ध ने भी इसी प्रकार भी एक विधि गुह्यसूत कर अपनी पुस्तक रसरत्नाकर में दी है जिसके जारण से पारद कोटि गुण वेधी हो जाता है। यथा—

तप्तखल्वे शुद्धसूतं जीवद्भूनागसंयुतम् ।
त्रिदिनं मर्दयेद्गाढं तत्समस्तं समुद्धृतम् ॥ १५ ॥
भूनागचूर्णयुक्तायां मूषायां सन्निवेशयेत् ।
तदूर्ध्वं भूलताचूर्णं दत्त्वा रुद्ध्वाऽथ शोषयेत् ॥ १६ ॥
गर्तान्तर्गोमयं सार्द्धं क्षिप्त्वा मूषां निवेशयेत् ।
पादमात्रं तु तां गर्भे करीषं तुषवह्निना ॥ १७ ॥
पुटे पच्यादिनैकं तु समुद्धृत्याथ दापयेत् ।
ऊर्ध्वाधो भूलताचूर्णं दत्त्वा तद्वत्पुटे पचेत् ॥ १८ ॥
मासमात्रमिदं कुर्याद्भवेदग्निसहो रसः ।
जायते मूर्तिबद्धश्च राक्षसो वडवामुखः ॥ १९ ॥
ग्रसते सर्वलोहानि सत्त्वानि विविधानि च ।
वज्रादिसर्वरत्नानि द्रुताणि च मृतानि च ॥ २० ॥
गुह्यसूतमिदं ख्यातं वक्ष्यते तस्य जारणा ।
(रसरत्नाकर वादि १६)

गुह्यसूत जारणा

अस्यैव षोडशांशेन दत्त्वा भूनागसत्त्वकम् ॥ २१ ॥
तप्तखल्वे दिनं मर्द्यं ततः सिद्धबिडान्वितम् ।
भूनागतैललिप्तायां मूषायां तन्निवेशयेत् ॥ २२ ॥
रुद्ध्वा स्वेद्यं करीषाग्नौ जीर्णसत्त्वं तु पूर्ववत् ।
पूर्ववल्लिप्तमूषायां जारयेत्स्वेदनेन वै ॥ २३ ॥
एवं सत्त्वं समं जार्यं पूर्ववत्कच्छपेन वा ।
गर्भद्रावेण बीजं तु पूर्ववत् षड्गुणं शनैः ॥ २४ ॥
जारयेद्द्रावितं गर्ते मूषायन्त्रे तु पूर्ववत् ।
ततस्तु रञ्जकं बीजं जार्यमस्यैव षड्गुणम् ॥ २५ ॥
ततस्तु पक्वबीजेन सप्तशृंखलिकाक्रमात् ।
सारणं जारणं कुर्यान्मुखं बद्ध्वा तु बन्धयेत् ॥ २६ ॥
अनेन कोटिभागेन चन्द्रार्कं काञ्चनं भवेत् ।
(रसरत्नाकर वादि १६)

आचार्य नित्यनाथ सिद्ध ने अपने ग्रन्थ में भूनागसत्त्व पातन की अनेक विधियों का वर्णन किया है उनमें से एक दो विधि का उल्लेख हम यहाँ पर कर रहें हैं। यथा—

गोमूत्रं रजनी राजी लवणं कल्कयेत् समम् ।
तेन सिञ्च्यात्तु भूनागं खरे घर्मे द्रवत्यलम् ॥ ९ ॥
कङ्कुष्ठं तद्द्रवं तुल्यं कृत्वा सत्त्वं समाहरेत् ।
व्योमवत् क्रमयोगेन रसबन्धकरं भवेत् ॥ १० ॥
(रसरत्नाकर वादि १४)

अपि च—

भूलतास्तु गवां मूत्रैः क्षालयेत्ताभिराहरेत् ।
तैलं पातालयन्त्रेण तत्तैलं जारणे हितम् ॥ १४ ॥
(रसरत्नाकर वादि १६)

पुनः गन्धक योग से मुखकरण

एवं गन्धकयोगतोऽपि सुमुखं कृत्वा तथा[1] वाऽभ्रकं
गौरीयन्त्रविधानतोऽपि सुमुखं पश्चात्तु धान्याभ्रकम् ।
सत्त्वं बीजमनेकयन्त्रविधिना सोमानले वा पुन-
श्चक्रे नाभिसमुद्भवे त्वनुदिनं कुर्वीत यत्नं पुनः ॥ ४० ॥

१. "यथा चाभ्रकं" इति पाठः । २. "यन्त्रं" इति पाठः ।

इसी प्रकार गन्धक योग से भी पारद में मुखोत्पन्न करके तथा गौरीयन्त्र के विधान से धान्याभ्रक एवं अभ्रकसत्त्व का जारण कर मुखोत्पन्न करें। इसी प्रकार अनेक यन्त्रों सोमानल या चक्रयन्त्र या नाभियन्त्र की विधि से प्रतिदिन यत्न करते हुये जारण करना चाहिये।

जारणा का उपसंहार

स्थालीयन्त्रविधानतश्च मसृणां गन्धस्य संचारणां
यन्त्रे गर्भसमुद्भवेऽथ सिकताहंसे तु कूप्यां पुनः।
यन्त्रे सैकतसम्भवे च नलिकायन्त्रे हि मूषाभिधे
यन्त्रे भूधरसंज्ञके त्वथ पुनः सोमानले चक्रके ॥ ४१ ॥
यन्त्रे नाभिसुसंज्ञके जलसमुद्भूते दृढ़े लोहजे
ग्रस्ते मूषिकया कृते सुविमले विद्याधरे डामरे।
स्थालीयन्त्रवरे तु धूपनविधौ धूपाभिधे पालिका-
यन्त्रे गन्धकजारणां सुविमले कुर्याद्यथायोग्यतः ॥ ४२ ॥

स्थाली यन्त्र की विधि से गर्भयन्त्र बनावें तथा पारद-गन्धक की श्लक्ष्ण कज्जली बनाकर चारणा करें। इसके बाद पुनः पारद-गन्धक की कज्जली बनाकर बालुका यन्त्र में पाक करें। इसी तरह पारद में गन्धक की जारणा निम्न लिखित यन्त्रों द्वारा यथा योग्य विधि से करें। गन्धक जारणा के लिये गर्भयन्त्र, हंसयन्त्र, कूपीयन्त्र, बालुकायन्त्र, नलिकायन्त्र, मूषायन्त्र भूधरयन्त्र, सोमानलयन्त्र, चक्रक-यन्त्र, नाभियन्त्र, जलयन्त्र, लोहा के मजबूत ग्रस्तयन्त्र, विद्याधरयन्त्र, डामरयन्त्र, स्थालीयन्त्र, धूपयन्त्र और पालिकायन्त्र का उल्लेख आचार्यश्री ने किया है।

पारद की मूर्च्छणा

रससिन्दूर अर्थात् पारद में गन्धक की जारणा

सूतं पञ्चपलं सपादपलकं गन्धं च टङ्कद्वयं
चुल्लीलोणमथो विमर्द्य सकलं कांक्ष्यास्तु कर्षं पुनः।
यद्वा गन्धसमं तदर्धमथवा यन्त्रे दृढे शार्करे
कूप्यां घस्रचतुष्टयं रसवरः सिन्दूरतुल्यो भवेत् ॥ ४३ ॥

रससिन्दूर निर्माण के लिए गन्धक लेने की कई भिन्न परम्परा हैं। आचार्य श्री ने भी यहाँ पर तीन विभिन्न परम्पराओं को लिया है। पहली परम्परा यह है कि—१—अष्टसंस्कारित पारद या हिंगुलोत्थ पारद अथवा शुद्ध पारद ५ पल अर्थात् २० तोले लें, शुद्ध गन्धक सवा पल अर्थात् ५ तोले लें, नवसादर २ टङ्क अर्थात् ½ तोला लें, फिटकरी १ कर्ष अर्थात् १ तोला लें। सर्वप्रथम एक साफ पत्थर के

खरल में पारद+गन्धक को तीन दिनों तक मर्दन कर कज्जली करें, तत्पश्चात् उसमें नवसादर और फिटकरी मिलाकर ६ घण्टे तक मर्दन करें। अथवा पारद के बराबर ही शुद्ध गन्धक तथा अन्य दोनों द्रव्य पूर्व मात्रा में लेकर पूर्व विधि से कज्जली करें। अथवा पारद से शुद्ध गन्धक आधी मात्रा में लेकर भी पूर्वविधि से कज्जली बनाकर रससिन्दूर बनाया जा सकता है। अर्थात् पारद से गन्धक चतुर्थांश या समांश या अर्धांश गन्धक लेकर कज्जली बनायी जा सकती है। इसके बाद दृढ़ काच कूपी में ७ बार कपड मिट्टी कर उसमें उपर्युक्त कज्जली भर कर बालुकायन्त्र में औषधिपूरित काचकूपी रख कर बालू से पूरित करें तथा चूल्हे पर चढ़ाकर क्रमशः मृदु-मध्य-तीक्ष्णाग्नि से चार दिनों तक पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर कूपी को सावधानी से तोड़कर सिन्दूर के जैसा पारद का भस्म अर्थात् रस-सिन्दूर प्राप्त करें।

विमर्श—आचार्य श्री सोमदेव ने बालुकायन्त्र इस प्रकार कहा है। यथा—

पञ्चाढबालुकापूर्णे भाण्डे निक्षिप्य यत्नतः।
पच्यते रसगोलाद्यं बालुकायन्त्रमीरितम् ॥

(रसेन्द्रचूडामणिः ५।७७)

आचार्य वाग्भट ने इस यन्त्र को विस्तार पूर्वक कहा है। यथा—

सरसां गूढवक्त्रां मृद्वस्त्राङ्गुलवनावृताम्।
शोषितां काचकलशीं पूरयेत्त्रिषु भागयोः ॥ ३६ ॥
भाण्डे वितस्ति गम्भीरे बालुकासु प्रतिष्ठिताम्।
तद्भाण्डं तु पूरयेत्त्रिभिरन्याभिरवगुण्ठयेत् ॥ ३७ ॥
भाण्डवक्त्रं मणिकया सन्धिं लिम्पेन्मृदा पचेत्।
चुल्यां तृणस्य चादाहान्मणिकापृष्ठवर्तिनः ॥ ३८ ॥
एतद्धि बालुकायन्त्रं तद्वत्तु लवणाश्रयम्। (रसरत्नसमु. ९)

आचार्यों ने कपडमिट्टी करने के लिये भी अलग ही विधि कही है। यथा—

श्वेताश्मानस्तुषा दग्धाः शिखित्राः शणखर्परौ।
लिहः किट्टं कृष्णमृच्च संयोज्याः कूपिका मृदि ॥
अथवा कौलालकी ग्राह्या ....।

अन्य आचार्यों ने भी इसी तरह या इससे कुछ भिन्न प्रकार रससिन्दूर बनाने का निर्देश दिया है। यथाह आचार्य माधवः—

सूतः पञ्चपलस्वदोषरहितस्तत्तुल्यभागो बलि-
द्वौ टङ्कौ नवसादरस्य तुवरी कर्षश्च सम्मर्दितः।

कूप्यां काचभुवि स्थितश्च सिकतायन्त्रे त्रिभिर्वासरैः
पक्वो बह्निभिरुद्धवत्यरुणभाः सिन्दूरनामा रसः ॥ ३९७ ॥
(आयु. प्रकाश १)

रसराजलक्ष्मीकार ने भी कुछ इसी प्रकार की विधि बतायी है किन्तु इसमें कुछ परिवर्तन भी किया है । यथा—

कूपी सप्तमृदंशुकैः परिवृता शुष्काऽत्र गन्धेश्वरौ-
तुल्यौ तौ नवसारपादकलितौ सम्मर्द्य तस्यां न्यसेत् ।
सा यन्त्रे सिकताख्यके तलबिले पक्त्वाऽर्कयामं हिमं
भित्त्वा कुङ्कमपञ्जरं रसवरं भस्मादतीतोत्तमम् ॥
(रसराजलक्ष्मी)

आचार्य गोपालकृष्ण भट्ट ने भी रससिन्दूर बनाने की एक विधि कही है । यथा—

भागो रसस्य त्रय एव भागा गन्धस्य माषः पवनाशनस्य ।
सम्मर्द्य गाढं सकलं सुभाण्डे तां कज्जली काचघटे निदध्यात् ॥ ६६ ॥
संरुध्य मृत्कर्पटकैर्घटीं तां मुखे सचूर्णां खटिकां च दद्यात् ।
क्रमाग्निना त्रीणि दिनानि पक्त्वा तां बालुकायन्त्र गतां ततः स्यात् ॥ ६७
बन्धूकपुष्पारुणमीशजस्य भस्म प्रयोज्यं सकलामयेषु ।
निजानुपानैर्मरणं जरां च हन्त्यस्य वल्लः क्रमसेवनेन ॥ ६८ ॥
(रसेन्द्रसा रसंग्रह १)

यहाँ पर आचार्यश्री ने नाग (सीस धातु) भी इसमें देने का निर्देश किया है । पवनाशनः=नागः ऐसा अर्थ है, । इस विधि में पारद १ भाग और गन्धक ३ भाग और नाग १ माशा लेने का निर्देश है ।

आचार्य "यशोधर" ने भी सीसा देकर रससिन्दूर बनाने की एक विधि का वर्णन किया है । यथा—

विमलनागवरैकविभागिकं हरजभागचतुष्टयमिश्रितम् ।
सततमेवविमर्द्य शिलातले बलिवसां च समां कुरु तद्भिषक् ।। १९ ॥
दिनमितं सुविमर्द्य च कन्यका स्वरस ऐनकरेऽतिविशोषयेत् ।
तदनु सूतवरस्य तु कज्जलीं रुचिरकाचघटे विनिवेशयेत् ॥ २० ॥
दिवसयुग्ममधःकृतवह्निना स च भवेदरुणः कमलच्छविः ।
सकलरोगविघातकवह्निकृद्वलकरः परमोऽपि हि कान्तिकृत् ।। २१ ॥
(रसप्रकाशसुधाकर ३)

अपि च—

विगतदोषकृतौ रसगन्धकौ तदनु लुङ्गरसेन परिप्लुतौ ।
प्रहरयुग्ममितं च शिलातले रविकरेण विमर्द्य विचूर्णितौ ॥ ११ ॥
रुचिरकाचघटीविनिवेशितौ सिकतयन्त्रवरेण दिनत्रयम् ।
कुरु भिषग्वर ! वह्निमधस्ततः स च भवेदरुणः कमलच्छविः ॥ १२ ॥
(रसप्रकाशसुधाकर ३)

यद्यपि रससिन्दूर बनाने की और भी अनेक आचार्यों की अनेक विधियाँ हैं, किन्तु विस्तारभय से उन्हें यहाँ नहीं दे रहा हूँ । तथापि संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि आचार्यों ने गन्धक की मात्रा पारद से चतुर्थांश-अर्धांश-समांश-द्विगुण-चतुर्गुण-षड्गुण-अष्टगुण तक लेने का आदेश दिया है । कई आचार्यों ने पाक काल या अग्नि देने का समय १२ प्रहर, १६ प्रहर से ३ दिन, ४ दिन, ७ दिन तक (अग्नि में पाक करने को) कहा है । यह भी एक प्रकार से पारद में गन्धक की जारणा ही है । आचार्य भैरव ने तो रसार्णव में कहा है कि जितने दिनों तक पारद और गन्धक की कज्जली को कूपी, मूषा आदि यन्त्रों के माध्यम से अग्नि पर रखकर जारण किया जाय तो उस पारद में अधिक शक्ति आती है और जारण करने वाला व्यक्ति उतने दिन के दो हजार गुना वर्षों तक शिवलोक में रमण करता है । यथा—

यावद्दिनानि वह्निस्थो जार्यते धार्यते रसः ।
तावद्युगसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥
दिनमेकं रसेन्द्रस्य यो ददाति हुताशनम् ।
द्रवन्ति तस्य पापानि कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥
(रसार्णव १९।५)

आज कल लोहा का ढाला हुआ बालुका यन्त्र बाजार में उपलब्ध होता है। अतः उसी प्रकार के लौह निर्मित बालुका यन्त्र में कूपीपक्व औषधों का निर्माण करना चाहिए । क्योंकि मिट्टी निर्मित हाँडी आदि के बालूकायन्त्र के बीच में ही फूट जाने का भय बना रहता है जिससे औषधियाँ नष्ट हो जाती हैं । यद्यपि आज-कल ६ घण्टे तक की अग्नि में सामान्यतया रससिन्दूर आदि कूपीपक्व औषधियाँ तैयार कर ली जाती हैं जो उचित नहीं है । अतः गुण वृद्धि के लिए अधिक गुण-शाली औषधि के लिए ७२ घण्टे अर्थात् ३ दिन-रात तक मृदु-मध्य-तीक्ष्णाग्नि अवश्य देनी चाहिए । कम अग्नि में जल्दी पाक करने के कारण ही औषधियाँ उचित गुण नहीं प्रदान करती हैं । अतः अधिक गुण प्राप्ति के लिए ७२ घण्टे तक अग्नि में कूपी पक्व औषधों को पकाना आवश्यक है ।

८–१० घण्टे की अग्नि के बाद तप्त शलाका से कूपी कण्ठ को साफ करते रहना चाहिए। वरना नवसादर के तथा गन्धक के धुँआ से कूपी कण्ठावरोध होकर तथा कूपी में सल्फर डाइ ऑक्साइड गैस रुक कर कूपी फूट सकती है। अतः कूपी के मुख को हमेशा साफ करते रहें जिससे उसके अन्दर की गैस आदि निकलती रहे। एवं प्रकार से ४८ घण्टे तक पाक करें, तत्पश्चात् तीव्राग्नि देकर पाक करें। तीव्राग्नि से कूपी तली से अग्नि की ऊँची शिखा (लपटें) निकलेगी। ६० घण्टे के बाद यह शिखा धीरे-धीरे स्वयं शान्त हो जाती है और औषधि पाक भी सन्निकट आने लगती है। आचार्य माधव ने इसके लिए कहा है कि—

पाके रुद्धं मुखं कूप्या नवसारेण जायते।
ततः शलाकया कुर्यात्कूपिकानाशशान्तये ॥ ३९९ ॥
अनेन विधिना पाका यावन्तोऽस्य भवन्ति हि।
तावन्तो हि गुणोत्कर्षा जायन्ते रसभस्मनः ॥ ४०० ॥

(आयु० प्रकाश १)

पाक परीक्षा—रात्रि में या कूपी मुख को अन्धकार करके देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कूपी की तली में "सूर्योदय" हो रहा है। सूर्योदय जैसा ही कूपी की तापी बिल्कुल लाल दिखाई पड़ती है। (२) ठण्डा शलाका कूपी में **प्रवेश** करने पर शलाका निर्धूम एवं कुछ कीचड़ जैसा पदार्थ उस पर चिपका हुआ **नहीं** हो। (३) कूपी के मुख पर ताम्रपत्र रखने पर यदि वह सफेद हो जाता है या होने लगता है तो यह समझिए कि पारद उड़ रहा है। अर्थात् गन्धक जीर्ण हो गया है। जब पारद में गन्धक अत्यल्प रह जाता है तभी पारद अकेला (स्वतन्त्र) हो जाने पर उड़ता है। यदि ये तीनों लक्षण उस कूपी में उपस्थित हो गये हों तो कूपी में कार्क (मिट्टी का कार्क) लगाकर कपडा मिट्टी से मुख बन्द कर अग्नि प्रज्वलित कर छोड़ दें। स्वाङ्ग-शीतल होने पर दूसरे दिन कूपी निकालकर चाकू से खरोच कर कपड मिट्टी हटा दें और जहाँ तक औषधि चिपकी हो उसी जगह मिट्टी के तेल (किराशन) में धागा भिगोकर लपेट दें और माचिस से अग्नि प्रज्वलित करें। अग्नि बुझने पर भींगे कपड़े से उस स्थान को पकड़ लें। तप्त काँच जल-स्पर्श से सीधी लाइन में टूट जायगा। तत्पश्चात् उससे औषधि निकाल कर खरलकर शीशी में रख लें।

इस विधि से न तोड़कर, कूपी को यों ही तोड़ देने पर उस औषधि में काँच के टुकड़े भी मिल जायगें जो हानिकर होगा।

यदि उक्त औषधि में काँच के टुकड़े मिल जायँ तो अच्छी चाकू की नोक को भींगे कपड़े से पोंछ कर औषधि पर चाकू घुमावें तो काँच के छोटे-छोटे टुकड़े चाकू

की नोंक में चिपक जायगें, जिसे कपड़े पर पोंछते जाँय। इसी प्रकार सभी काँच के टुकड़े पृथक् किये जा सकते हैं।

आजकल सिर्फ पारद + गन्धक समभाग की कज्जली से इस सिन्दूर बनाने की परम्परा प्रचलित है। विधि इस प्रकार है। यथाह—आचार्य गोपालकृष्णः।

पलमात्रं रसं शुद्धं तावन्मात्रन्तु गन्धकम्।
विधिवत्कज्जलीं कृत्वा न्यग्रोधांकुरवारिभिः ॥ ६९ ॥
भावना त्रितयं दत्त्वा स्थाली मध्ये निधापयेत्।
विरच्य कवचीयन्त्रं बालुकाभिः प्रपूरयेत् ॥ ७० ॥
दद्यात्तदनु मन्दाग्निं भिषग्यामचतुष्टयम्।
अष्टप्रहरमध्याग्निं चतुः तीव्राग्निना पचेत् ॥ ७१ ॥
जायते रससिन्दूरं तरुणादित्य सन्निभम्।
अनुपानविशेषेण करोति विविधान् गुणान् ॥ ७२ ॥

(रसेन्द्रसारसंग्रह १)

आचार्य श्री माधव ने रस सिन्दूर के गुण कुछ इस प्रकार बताया है। यथा—

अपहरति रोगवृन्दं द्रढयति कायं महद्बलं कुरुते।
शुक्रशतानि च सूते सिन्दूराख्यो रसः पुंसाम् ॥ ४०५ ॥
स्मरस्यायुर्नागदगहनदावानलशिखा,
पटं वह्नेस्तेजो बलरुचिरतावल्लिमुदिरः।
अपि प्रौढस्त्रीणामतुलबलहारी निधुवने,
रसः सिन्दूराख्यः सकलरसराजो विजयते ॥ ४०६ ॥

(आयु० प्रकाश १)

रसकर्पूर निर्माणविधिः

कासीसं खटिका च सिन्धुलवणं क्षुण्णं त्रिभागं रसा-
न्मर्द्यं शुष्कमिदं दिनं मृदुतरं विद्याधरे वह्निना।
ताम्रेणोर्ध्वविलग्नशङ्खधवलं संगृह्य कूप्यां न्यसे-
त्कासीसं लवणं च तुल्यमभितो दद्यात्पचेत्पूर्ववत् ॥ ४४ ॥
यद्वोन्मत्तककाकमाचिकरसैर्व्याघ्रीरसैः पूर्वव-
त्पाच्यं डामरयन्त्रके लवणयुक् कूप्यां च तद्वन्न्यसेत्।

शुद्ध कासीस १ भाग, खटिका १ भाग, सैन्धवलवण १ भाग और शुद्ध पारद ३ भाग लें। सर्वप्रथम कासीस-खटिका-सैन्धव को कूटकर सूक्ष्म चूर्ण करें, तत्पश्चात् पारद के साथ सूखा ही मर्दन कर कज्जली करें। पुनः इस मर्दित कज्जली

को (कपड मिट्टी की हुई काँच कूपी में रख कर) विद्याधर यन्त्र में रखकर एक दिन पर्यन्त पाक करें। दूसरे दिन स्वाङ्गशीत होने पर ऊर्ध्वपात्र में लगा हुआ शंख जैसा श्वेत वर्ण के पारद (रसकर्पूर) ग्रहण करें। पुनः कासीस-सैन्धव लवण को पारद के बराबर लेकर पूर्ववत् मर्दन कर धत्तूर-स्वरस, काकमाची-स्वरस, कण्टकारी-स्वरस की एक-एक भावना देकर सुखा लें। तत्पश्चात् काँचकूपी में उक्त मर्दित पारद को रख कर लवणपूरित डामरयन्त्र (डमरु यन्त्र) में लवण के बीच औषधि पूरित काँचकूपी रखकर एक दिन तक पूर्ववत् पाक करें।

दूसरे दिन स्वाङ्गशीत होने पर कूपी निकाल कर कूपी की मिट्टी आदि हटा कर कूपी को सावधानी से तोड़कर कर्पूर के जैसा शुभ्र "रसकर्पूर" प्राप्त करें।

विमर्श—अनेक आचार्यों ने "रसकर्पूर" बनाने की अनेक कई विधियों का वर्णन किया है, उनमें से दो-एक विधि का उल्लेख हम यहाँ कर रहे हैं। यथा—

भागैकं नवसारटङ्कणफणी कासीसकं तूबरी
श्वेता गैरिकसैन्धवं लवणजं[1] सर्वैः समं पारदम्।
आकाशस्थितवल्लिराक्षसलता तोयैस्त्रिभिर्मर्दये-
त्कूप्यां स्थाप्य निरोधयेच्छुभदिने यन्त्रे गतं पाचयेत्॥
आदौ दद्याच्च मन्दं तदनु दृढतरं[2] वेद संख्या दिनान्ते
पश्चाच्छीतं प्रकुर्यात्स्फटिकमणिनिभं जायते सूत भस्म। इति महादेवः

अपि च—

टङ्कणं मधु लाक्षा च ऊर्णा गुञ्जायुतो रसः।
मर्दितो भृङ्गजद्रावैर्दिनैकं चालयेत् पुनः॥
ध्मातो भस्मत्वमाप्नोति शुद्धकर्पूरसन्निभम्॥ ७७॥
(रसेन्द्रसारसंग्रहः १)

रसकर्पूर की दूसरी विधि

भागाः षट् तु रसस्य सिन्धुलवणात्सप्तैव सौराष्ट्रित-
स्तद्द्वन्द्वं च सुवर्णगैरिकभवा भागास्तथा विंशतिः॥ ४५॥
एकीकृत्य रसेन मर्दितमिदं यन्त्रे तु विद्याधरे
कासीसं स्फटिका सुवर्णगिरिजा मृद्रञ्जिका मृत्तिका।
वल्मीकप्रभवा खटी च लवणं सिन्धोः समं हण्डिका-
यामास्थाप्य तदूर्ध्वतश्च विमलं फेनस्य मूषाद्वयम्॥ ४६॥

१. "मलयजं" इति पाठभेदः।
२. "दृढहठं" इति पाठभेदः।

मध्येऽस्मिन्[1] रसराजकं विनिहितं दत्त्वा तदूर्ध्वं पुन-
र्मृत्स्नां तां परितो निरुध्य विमलं पात्रं मुखे मुद्रितम्।
दद्याद्वासरसप्तकं दृढतरं वह्निं ततः शीतलं
ग्राह्यं स्फटिकसन्निभं रसवरं दद्याद्यथायोगतः॥ ४७॥

शुद्ध पारद छः भाग, सैन्धव लवण सात भाग, शुद्ध फिटकरी चौदह भाग, शुद्ध स्वर्णगैरिक बीस भाग इन सबों को एक खरल में रखकर क्रमशः पारद को फिटकरी के साथ मर्दन करें, तत्पश्चात् सैन्धव और गैरिक मिलाकर २ दिनों तक मर्दन करें॥ ४५॥

पुनः अलग एक खरल में शुद्ध कासीस, शुद्ध स्फटिका, सुवर्ण गैरिक, कुम्हार जिस मिट्टी से कच्चे वर्तन पर लेप कर वर्तन को आग में पकाता है और वर्तन रंगीन लाल हो जाता है वही रंगने वाली मिट्टी (गाविस मिट्टी), वाम्वी (वल्मीक) की मिट्टी, खड़िया मिट्टी और सैन्धव लवण ये सातो द्रव्य प्रत्येक सम भाग लें और एक साथ पीस कर चलनी से छान लें। इसके बाद शुद्ध अहिफेन की दो मूषा बना लें। पारद मिश्रित चूर्ण १ मूषा में भर कर दूसरी मूषा से ढक कर इसकी सन्धि बन्द कर दें। तत्पश्चात् विद्याधर यन्त्र बनाने वाली १ हाँडी में कासीसादि सात द्रव्यों के चूर्ण का आधा भाग रखें। उस चूर्ण पर पारदादि औषध पूरित अफीम की मूषा को रख कर कासीसादि मिश्रित चूर्ण का शेष भाग से मूषा को आच्छादित करें। दूसरी हाँडी (औषधि पूरित हाँडी) का मुख बन्द कर सम्यक् सन्धि बन्धन करें और विद्याधर यन्त्र विधि से सात दिनों तक दृढ़ाग्नि से पाक करें। तत्पश्चात् स्वाङ्गशीत होने पर विद्याधर यन्त्र के ऊपरी हाँडी की तली से स्फटिक जैसा श्वेतवर्ण का रसकर्पूर ग्रहण कर शीशी में रख लें और रोगानुसार प्रयोग करें॥ ४६–४७॥

विमर्श—सात दिनों की दृढ़ाग्नि से अफीम की मूषा जल जायगी और अफीम के गुण से युक्त पारद हाँडी की तली में शीतल होने के कारण चिपक जायगा। हाँडी की ऊपरी भाग को शीतल जल के सिञ्चन से शीतल करते रहें।

लोहों का वर्गीकरण

रुक्मं रौप्यमयांसि शुल्बमुरगं रङ्गं घनं वर्त्तुलं
घोषं लोहमिदं त्रयं च चरमं नाम्नोपलोहं जगुः।
कान्तं तीक्ष्णकमुण्डके त्रयमिदं तानि प्रशस्तं यथा
पूर्वं शस्त्रभवं तु तीक्ष्णमितरत्साधारणोत्पादकम्॥ ४८॥

१. "समराजिकं" इति पाठभेदः।

इस श्लोक के द्वारा आचार्यश्री ने लोहों को दो वर्गो—प्रथम लोहवर्ग द्वितीय उपलोहवर्ग—में विभक्त किया है।

लोह वर्ग में—सोना-चाँदी-लोहा-तामा-सीसा और रांगा ये छः लोह कहे गये हैं।

उपलोह वर्ग में—घनं=कास्यं, वर्त्तुलं=पित्तलं, घोषं=पञ्चरसं-पञ्चलोहमिति अर्थात्-कांसा-पीतल और वर्त्तलोहों को उपलोह की श्रेणी में रखा गया है।

लोहा (अयस) के तीन भेद बताये गये हैं—कान्त, तीक्ष्ण और मुण्डलोह। ये यथा पूर्व श्रेष्ठ होते हैं। सबसे श्रेष्ठ कान्तलोह होता है, उसके बाद तीक्ष्णलोह होता है और मुण्डलोह सबसे हीन प्रकार का होता है। कान्तलोह औषधि निर्माण कार्य हेतु, तीक्ष्णलोह शस्त्रोत्पादनार्थ और मुण्डलोह कटाहादि अन्य साधारण कार्य हेतु उपयोगी होता है। कहा भी है —

किट्टाद्दशगुणं मुण्डं मुण्डात्तीक्ष्णं शतोन्मितम्।
तीक्ष्णांल्लक्षगुणं कान्तं भक्षणात्कुरुते गुणान्॥ (र. र. समु. ५।१४९)

विमर्श—कुछ अन्य आचार्यों ने भी लोहों का वर्णन विभिन्न क्रम से किया है। रसार्णवकार ने छः प्रकार के लोहों का वर्णन किया है। यथा—

सुवर्णं रजतं ताम्रं तीक्ष्णं वङ्गं भुजङ्गकम्।
लोहं तु षड्विधं तच्च यथापूर्वं तदक्षयम्॥

(रसार्णवम् ७।१७)

आचार्य गोविन्दपादाचार्य ने तीन प्रकार के लोहों का वर्गीकरण किया है।

यथा—सारलोह—सुर्वण-रजत।

सत्त्व लोह—ताम्र-पित्तल-तीक्ष्ण-कान्त और अभ्रकसत्त्व।

पूतिलोह—नाग, वंग—

... ... शिखिशशिनौ सारलोहाख्यौ।
ताम्रारतीक्ष्णकान्ताभ्रसत्त्वलोहानि नागवङ्गौ च॥
कथितास्तु पूति संज्ञास्तेषां संशोधनं कार्यम्।

(र. हृ. तं. ९।६)

यहाँ पर आचार्यश्री ने तीन प्रकार के लोह कहा है।

१. शुद्धलोह	२. पूतिलोह	३. मिश्रलोह

अपि च—

शुद्धं लोहं कनकरजतं भानुलोहाश्मसारम्।
पूतीलोहं द्वितयमुदितं नागवङ्गाभिधानम्॥
मिश्रं लोहं त्रितयमुदितं पित्तलं कांस्यवर्त्तम्॥

(रसेन्द्रचूडामणि-रसरत्नसमु.)

अपि च—

अग्निसोमार्कतीक्ष्णानि नागं वङ्गं षडायसाः।
पीतं सितं तथा रक्तं कृष्णं श्यामं सितं विदुः॥

(गोरक्षसं. भूति. २।४१)

अपि च—

स्वर्णरूप्यार्ककान्ताभ्रसत्त्वं तीक्ष्णं च मुण्डकम्॥९॥
भुजङ्गं त्रपुसं चैव रीतिः कांस्यं च वर्त्तकम्।
द्वादशैतानि लोहानि मण्डूरो लोहकिट्टकम्॥१०॥

(आनन्दकन्द क्रि. १)

अपि च—

स्वर्णं रूप्यं च ताम्रं च रङ्गं यशदमेव च।
सीसं लोहञ्च सप्तैते धातवो गिरिसम्भवः॥

(भावप्रकाश पूर्वा. धातु १)

कान्तलोह के लक्षण

कान्तं तद्ब्रुवते न यत्र सलिले तैलं विसर्पेत्पयोऽ-
प्युच्चैस्त्वं न जहाति यत्र कटुतां निम्बच्छदाम्भस्त्यजेत्।

आचार्यश्री ने कान्तलोह का लक्षण इस प्रकार दिया है। जिस कान्तलोह के पात्र में पानी भर कर उस पानी पर तैल के कुछ बिन्दु डालने के बाद तैल फैले नहीं। जिस कान्तलोह के पात्र में अत्यधिक आग पर बहुत देर तक दूध उबालने पर दूध फेन से युक्त उबल कर शिखराकृति होकर वैसे ही रह जाय किन्तु जमीन में दूध नहीं गिरे। इसके अतिरिक्त तीसरी परीक्षा में यह कहा है कि निम्बपत्र स्वरस उक्त कान्त पात्र में रखने पर निम्ब स्वरस की कटुता नष्ट हो जाय अर्थात् तिक्तता नष्ट हो जाय तो उसे कान्तलोह पात्र कहते हैं।

विमर्श—अन्य आचार्यों ने भी इसी तरह की कान्तलोह की परीक्षा कही है। किन्तु वहाँ पर आचार्य ने हिंगु गन्धनाशन की परीक्षा बढ़ा दी है। यथा—

पात्रे यस्य प्रसरति जले तैलबिन्दुर्न लिप्तो

हिंगुर्गन्धं विसृजति निजं तिक्ततां निम्बकल्कः ।
पाच्यं दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमौ
कान्तं लोहं तदिदमुदितं लक्षणोक्तं च नान्यत् ॥

(रसेन्द्रचूडामणिः १४ । ९३)

(रसरत्नसमु. ५ । ९५)

आचार्यश्री ने कान्त लोह के ४ एवं ५ भेद बताया है ।

भ्रामकं चुम्बकं चैव कर्षकं द्रावकं तथा ।
एवं चतुर्विधं कान्तं रोमकान्तं च पञ्चमम् ॥

(रसरत्नसमु. ५ । ७१)

सभी लोहों का शोधन

तक्रे काञ्जिकमूत्रयोस्तिलभवे तैले कुलित्थाम्भसि
स्याच्छुद्धं परिवर्त्य लोहमखिलं त्रिःसप्तधा वापितम् ॥ ४९ ॥

आचार्य श्री ने सभी लोहों का सामान्य शोधन बताया है । स्वर्ण, रजत, ताम्र-लोहादि धातुओं का सूक्ष्मपत्र बनाकर अग्नि में प्रतप्त करें और अलग-अलग कटोरी में रखे हुये तक्र-काञ्जी-गोमूत्र-तिलतैल और कुर्थी के क्वाथ में बुझावें। ऐसा बार-बार प्रतप्तकर प्रत्येक द्रव में एक्कीस बार बुझावें । ऐसा करने से उपर्युक्त धातुयें शुद्ध हो जाती हैं ।

विमर्श—कई अन्य आचार्यों ने भी इसी प्रकार से धातुओं का शोधन बताया है । यथाह वाग्भट :—

तैले तक्रे गवांमूत्रे ह्यारनाले कुलत्थजे ।
क्रमान्निषेचयेत्तप्तं द्रावे-द्रावे तु सप्तधा ॥
स्वर्णादिलोहपत्राणां शुद्धिरेषा प्रशस्यते ।

(रसरत्नसमु० ५।३२)

स्वर्ण भस्म की विधि

हेम्नः श्लक्ष्णदलाद्बली[1] द्विगुणितं तादृग्रसस्तौ पुन-
र्जम्बीरेण विमर्दयेत्सकरकौ यावद्भवेद्बद्धता ।
प्रातः पर्युषितौ तु जम्भसलिले तावन्धमूषान्तरे
मध्ये तत्समगन्धकं मृदुपुटे पक्त्वा शनैरुद्धरेत् ॥ ५० ॥
तौ त्रिः काञ्चनवारिणा विलुलितौ वा कन्यया सप्तभिः
पूर्वप्रक्रिययैव जाम्बवनिभे स्यातां पुटैर्भस्मनी ।

१. श्लक्ष्णदलाद्रजो इति मूले ।

आचार्य श्री कहते हैं कि स्वर्ण का पतला एवं चिकना पत्र बनाकर शोधन कर लें । तत्पश्चात् शुद्ध स्वर्ण पत्र १ तोला लें, शुद्ध गन्धक २ तोले लें और शुद्ध पारद २ तोले लें । सर्व प्रथम स्वर्ण पत्र को कैंची से छोटे-छोटे कण के रूप में काट लें । उसके बाद एक खरल में स्वर्ण पत्र के उन कणों को रख कर उतनी ही मात्रा पारद डालकर दिन भर दृढ़ मर्दन करें, पिष्टी होने पर शेष पारद को डालकर मक्खन जैसी पिष्टी बना लें । तदन्तर उसमें शुद्ध गन्धक डालकर ३ दिनों तक मर्दन करें; कज्जली हो जायगी । उसमें थोड़ी मात्रा (करको=गारपाषाण) में गारपाषाण डालकर जम्बीरी स्वरस की भावना दें और गुटिका (गोला) बना लें । पुनः जम्बीरी स्वरस पूरित मूषा में उक्त गुटिका को २४ घण्टे तक रख दें । तत्पश्चात् एक अन्ध-मूषा में दो तोले शुद्ध गन्धक चूर्ण रखें तथा उसपर उपर्युक्त गुटिका रखें और ऊपर से शुद्ध गन्धक चूर्ण से ढक कर शरावसम्पुट कर कपोत पुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर उक्त स्वर्ण-पारद के यौगिक को काञ्चनार के स्वरस की तीन भावना दें अथवा कुमारी स्वरस की सात भावना देकर टिकिया बनावें, सुखाकर पुनः-पुनः कपोतपुट में ३ बार पाक करें। इसीतरह भावना देकर सम्पुट करें और ३ बार कुक्कुट पुट में पाक करें । तत्पश्चात् इसी तरह भावनादि विधान के बाद ३ बार वाराह पुट में पाक करें । इस प्रक्रिया से ९-१० पुट में स्वर्ण की भस्म जामुन की तरह हो जाती है ।

विमर्श—स्वर्ण भस्म बनाने के क्रम में पहले कपोत पुट से भस्म प्रारम्भ करें और धीरे-धीरे अग्नि बढाते रहें । इससे स्वर्ण अग्नि सह होकर भस्म हो जाता है । यदि स्वर्ण को पहले ही अधिक अग्नि वाले पुट में पाक करेंगे तो स्वर्ण पिघल कर शराब में ही फैल कर कठिन हो जाता है और भस्म बनाने में और भी अधिक कठिनाई होती है । अतः लघु पुट में पहले पाक करना उचित है । अन्य आचार्यों ने स्वर्णभस्म के रंग के लिये "स्वर्ण गैरिकवर्णाभं" तथा "स्वर्ण चम्पकवर्णाभं" कहा है ।

सुवर्णभस्म का प्रकार

यद्वा कज्जलिकोपलिप्तमसकृद्धेम्नो दलं काञ्चन-
त्वङ्मध्यस्थितमन्धपात्रपुटितं द्विःसप्त भस्मीभवेत् ॥ ५१ ॥

आचार्य विन्दु ने स्वर्ण भस्म बनाने की दूसरी एवं सुगम विधि का वर्णन यहाँ पर किया है । सर्व प्रथम स्वर्ण का कण्टकवेधी पत्र बनाकर उसे उपर्युक्त विधि से संशोधन कर लें । तत्पश्चात् उन पत्रों का ३-५ इञ्च के दुकड़े कर लें । स्वर्ण के आधा भाग समगुण कज्जली लें, उस कज्जली में काञ्चनार स्वरस की भावना देकर स्वर्ण पत्र

के टुकड़ों पर लेप कर सुखा लें। अब काञ्चनार त्वक् को पीस कर कल्क बनावें। उसी कल्क के मध्य में कज्जलीलिप्तस्वर्णपत्र रखकर शराबसम्पुट कर सन्धि-बन्धन करें और लघुपुट में पाक करें। इसी तरह पूरी विधि के साथ १४ बार लघु पुट में पाक करने से स्वर्ण का सुन्दर लाल रंग की भस्म बनती है। "स्वर्ण गैरिकवर्णाभं कृष्णत्वं तारताम्रयोः" इस सिद्धान्त के अनुसार धीरे-धीरे अग्नि मात्रा हर पुट में बढ़ानी चाहिए।

सुवर्ण भस्म का प्रकार (३)

स्थूलं वा लघु किञ्च काञ्चनदलं त्रिः काञ्चनारिद्रव-
प्रक्लिद्यन्मृतशृङ्गलिप्तपुटितं भस्मत्वमापद्यते।

आचार्य श्री ने स्वर्ण भस्म बनाने की तीसरी विधि इस प्रकार दी है कि सुवर्ण का मोटा या पतला पत्र बनाकर ३-४ इञ्च के टुकड़े करके रखें। ततः मरी हुयी गाय के सींग का भस्म कर काञ्चनार स्वरस की तीन भावना देकर उन स्वर्ण पत्र के टुकड़ों पर लेप कर सुखा लें और शराबसम्पुट कर लघुपुट में पाक करें। ऐसा ही पूरी विधि के साथ तीन बार लघुपुट में पाक करने से सुवर्ण का सुन्दर भस्म बन जाता है। यह विचार इसके टीकाकार आचार्य महादेव का है।

प्रकारान्तर—इस पाठ का दूसरे प्रकार से ऐसा भी अर्थ लगाया जाता है कि मृद्दारशृङ्ग को भस्म बनाकर काञ्चनार स्वरस की तीन भावना देकर सुखालें और शराबसम्पुट कर तीन बार लघुपुट में पाक करें। ऐसा करने से स्वर्ण भस्म हो जाता है।

विमर्श—आचार्य सोमदेव एवं वाग्भट्ट ने भी धातुओं की भस्मों के लिये पारद द्वारा धातु कारण को सर्वश्रेष्ठ कहा है और अरिलोह से मृत धातु भस्मों को दुर्गुणप्रद कहा है। यथा—

लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना।
मूलीभिर्मध्यमं प्राहुः कनिष्ठं गन्धकादिभिः॥
अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम्॥
(रसेन्द्रचूडामणि १४)

अतः मृद्दारशृङ्ग विशुद्ध नाग (सीसा) है, नाग भस्म द्वारा मारित स्वर्ण अरिलोह मारित कहा जायगा। क्योंकि नाग, सोना का शत्रु है। अतः मृद्दारशृंग द्वारा मारित स्वर्ण हानिकारक है और इस विधि का उपयोग नहीं ही करना चाहिए। सम्भवतः शृङ्ग से "मृगशृङ्ग" भस्म को काञ्चनार स्वरस की भावना देकर स्वर्णपत्र पर लेपने के बाद शराबसम्पुट देकर भस्म करने का आचार्य का उद्देश्य है।

एतदर्थं यहाँ भी प्राणिज द्रव्यों गोशृङ्ग या मृगशृङ्ग भस्म द्वारा ही भस्म करने की विधि उचित प्रतीत होती है।

रजत भस्म का प्रकार

हिंगूलेन च माक्षिकेण बलिना तुल्येन जम्भाम्भसा।
लिप्तं रौप्यदलं पुटेन पटुना स्याद्भस्म मूषास्थितम्॥ ५२॥

सर्वप्रथम रजत का सूक्ष्म पत्र बनाकर ३-४ इंच के उसके टुकड़े बना लें और संशोधन कर लें। तत्पश्चात् शुद्ध रजत के बराबर शुद्ध हिंगुल, शुद्ध स्वर्णमाक्षिक तथा शुद्ध गन्धक लेकर एक पत्थर के साफ खरल में रखें और जम्बीरी निम्बु स्वरस की भावना देकर रजत पत्र पर लेप कर सुखा लें, पुनः बड़ी मूषा में रखकर सम्यक् सन्धि-बन्धन कर कुक्कुट पुट में पाक करें, ऐसा ही ८ पुट में रजत की काली एवं सुन्दर भस्म बनती है।

"कृष्णत्वं तारताम्रयोः" के अनुसार चाँदी की भस्म काली ही होनी चाहिए।

आयुर्वेदप्रकाशकार ने भी इस विधि को इसी स्थान से लेकर अपने ग्रन्थ में संग्रहीत किया है।

लोहा भस्म का प्रकार

शाणाकृष्टमयोरजस्त्रिदिवसं पिष्टं वरावारिणा
यद्वा रक्तपुनर्नवादलरसैर्यद्वाऽद्रिकर्णीरसैः।
चाङ्गेरीसलिलैस्तथैव सलिलैर्वा नीरवानीरजै-
स्त्रिशद्दन्तिपुटैः परैर्जलतरं स्याद् भस्म जम्बूप्रभम्॥ ५३॥

लोह ग्रहण करने के लिए आचार्यश्री ने कहा है कि शस्त्रों को तेज करने या चमकाने के लिए जो शाण पर घिसे जाते है और शस्त्र घिस कर तेज एवं चमकीले हो जाते हैं, किन्तु घिसने से लोहे के सूक्ष्म चूर्ण उस स्थान पर गिरते हैं उसे ही लेने के लिए कहा है। उस सूक्ष्म चूर्ण को लोहे के एक खरल में रखकर त्रिफला क्वाथ में तीन दिनों तक भावना देते रहें। इसी प्रकार रक्तपुनर्नवा स्वरस या गिरिकर्णी स्वरस या चाङ्गेरीरस, काञ्जी या जलवेतस स्वरस में भी तीन-तीन दिनों तक भावना देकर तीस बार गजपुट में पाक करने के बाद लोहे का वारितर एवं जामुन के रंग जैसी उत्तम भस्म बनती है। आचार्यों का मत है कि "लोहं जम्बुप्रभं प्रोक्तं" के अनुसार लोह भस्म उत्तम होता है। नीरवानीरः=जलवेतसः।

विमर्श—आचार्यों ने पारद के बिना लोह भस्म को उत्तम नहीं माना है। कुछ आचार्य यह कहते हैं कि बिना पारद के लोहा उदर में किट्टरूप में पड़ा रहता है।

यथा—

पारदेन विना लोहं यः करोति पुमानिह ।
उदरे तस्य किट्टानि जायन्ते नात्र संशयः ॥ २२७ ॥
(आयु० प्र० ३)

किन्तु इसके निराकरण के लिए यह भी कहा जा सकता है कि उक्त लोह भस्म को सेवन करते समय रससिन्दूर या पारद के साथ ग्रहण करना अत्युत्तम होगा ।

सरलता से लोह भस्म निर्माणार्थ लोहे का तीन तरह की पाक परवर्ती रस-ग्रन्थों में क्रमशः निम्न प्रकार से कहे गये हैं ।

१. भानुपाक २. स्थालीपाक ३. पुटपाक

लोहे के टूटे-फूटे शस्त्रों या चूर्णों को संग्रह कर, त्रिफला क्वाथ पूरित मिट्टी के बड़े भाण्ड में या नाद में रख कर सूर्यप्रकाश में ६ से १२ महीनों तक रख छोड़ें, त्रिफला एवं सूर्य की किरणों के प्रभाव से लोहे गलकर चूर्ण रूप में हो जाते हैं। त्रिफला क्वाथ सूखने पर बीच-बीच में पुनः क्वाथ डालते रहना चाहिए। पुनः उसे कूटकर महीन छलनी से छान लें। अब सब चूर्ण को एक हाड़ी में त्रिफला क्वाथ या अन्य लोह मारक गण की औषधों के साथ ९ घण्टे तक पाक करें। पुनः उस लोह को पुटपाक विधि से त्रिफला की भावना देकर टिकिया बनावें, सुखावें, शराबसम्पुट कर गजपुट में पुनः-पुनः ३० बार पाक करें, तभी लोहे की उत्तम भस्म बनती है। एतदर्थ मेरी पुस्तक "आयुर्वेदीय रसशास्त्र" देखें।

लोह भस्म का दूसरा प्रकार

शाणोद्दान्तमयस्तु कान्तमथवा क्षिप्त्वाऽर्धलेलीतकं
दत्तांघ्रयंशरसं विमर्द्य सलिलैर्भृङ्गाद्रिकर्णीरसैः ।
पक्वं सूर्यपुटैश्चतुर्दशदिनैरेरण्डपत्रावृतं
भस्म स्याद् गृहधूमधूसररुचि प्राग्धान्यराशिस्थितम् ॥ ५४ ॥

शाण से घिसा हुआ कान्त लोह के चूर्णों को प्रक्षालित कर शुद्ध करें तथा सुखा कर कान्त लोह चूर्ण के आधा शुद्ध गन्धक चूर्ण तथा कान्त से चतुर्थांश शुद्ध पारद मिला कर लोहा के साफ खरल में रखकर मर्दन करें। अतः दिन में सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त धूप में बैठकर काञ्जी, भृङ्गराज स्वरस, एवं गिरिकर्णी स्वरस के साथ १४ दिनों तक अनवरत मर्दन करें। अतः उक्त मिश्रण को गोला बनाकर कई एरण्ड पत्रों में लपेट कर ६ महीनों तक धान्य राशि में रखकर छोड़ दें। तत्पश्चात् निकाल कर खरल में मर्दन कर बोतल में सुरक्षित रख लें। लोहा गृहधूम के जैसा

धूसरवर्ण का भस्म रूप में हो जायगा। अन्य आचार्यों ने भी ऐसे भस्मों का उल्लेख अपने-अपने ग्रन्थों में किया है।

सलिलैः से काञ्जिकैः अर्थ लेना अधिक उचित प्रतीत होता है।

ताम्र भस्म की विधि

अङ्घ्र्यंशेन रसेन तुल्यबलिना जम्भाम्बुपिष्टेन च
लिप्त्वा ताम्रदलानि संस्तरचितान्यर्कस्य पक्वच्छदैः ।
भाण्डेऽरन्ध्रिणि तिन्तिणीविटपकत्वग्भस्मसम्पूरिते
घस्त्रैकं परिपाचितानि शुचिना तीव्रं म्रियन्ते सकृत् ॥ ५५ ॥

आचार्यश्री ने ताम्र भस्म की एक बड़ी अच्छी एवं नयी विधि का उल्लेख यहाँ किया है। सर्वप्रथम शुद्ध ताम्र पत्र १ तोला लें, शुद्ध पारद ¼ तोला लें और शुद्ध गन्धक १ तोला लें। एक पत्थर के खरल में पारद गन्धक की कज्जली करें। श्लक्ष्ण कज्जली होने पर उसमें जम्बीरी स्वरस की भावना दें तथा ताम्र पत्र पर उक्त कज्जली का लेप करें। अब एक मिट्टी की बड़ी हाँड़ी में इमली त्वक् की भस्म को आधी दूर तक भरें, हाथ से दबा कर उस भस्म के ऊपर पके हुये अर्कपत्र फैला दें। कज्जली लिप्त ताम्रपत्रों को हाँड़ी स्थित अर्कपत्र पर सावधानी से फैला दें। ताम्रपत्रों के ऊपर पुनः पके हुये अर्कपत्रों से आच्छादित करें तथा इमलीत्वक् की भस्मों से हाँड़ी को भर दें। पूरित हाँड़ी के ऊपर एक रिक्त दूसरी हाँड़ी औंधा कर सन्धि बन्धन करें। हाँड़ी में किसी प्रकार का छिद्र नहीं रहे इस बात को ध्यान में रखें। पुनः तीव्राग्नि से युक्त चूल्हा पर उक्त सम्पुटित हाँड़ी को रख कर १२ घण्टे तक पाक करने से निश्चित ही ताम्र भस्म हो जाता है। तीव्राग्नि (प्रखराग्नि) देनी चाहिये।

ताम्र भस्म का दूसरा प्रकार

त्रिक्षारैः पटुभिः स्नुगर्कजनुषा क्षीरेण पिष्टैर्यथा-
लाभं चाम्लगणद्रवेण दशधा ध्मातां विलिप्यानले ।
शेफालीसलिलेऽम्लवर्गसलिले निर्वापिता भूरिशः
पूर्वप्रक्रियया त्रिगव्यलुलिता भस्म स्युरर्कच्छदाः ॥ ५६ ॥

सर्वप्रथम शुद्ध ताम्रपत्र लें तथा सजिक-यव-टंकण क्षारों एवं पञ्चलवणों को लेकर स्नुही एवं अर्क दुग्ध की भावना दें, इसी प्रकार अम्ल वर्ग के यथालाभ द्रव्यों की भावना देकर ताम्र पत्रों पर लेप करें और तीव्राग्नि में धमन करें। इसी तरह क्षारलवण और अम्लों से भावित ताम्रपत्रों को पुनः-पुनः लेप कर १० बार तीव्राग्नि से धमन करें और निर्गुण्डी स्वरस में बार-बार निर्वापित करें। (शेफाली=नील पुष्प

निर्गुण्डी है। इस तरह अग्नि में बार-बार प्रतप्त कर अम्ल वर्ग के द्रवों में दश बार बुझावें। पुनः उक्त ताम्र पत्रों को कूट कर सूक्ष्मचूर्ण करें और त्रिगव्य (गाय के दूध-दही-घी) के साथ ३-३ दिन मर्दन कर चक्रिका बनावें, सुखा कर शराव सम्पुट कर बाराह पुट में पाक करें। ऐसा कम से कम १५ बार मर्दन (भावना) और पुट देना चाहिए तभी ताम्र की भस्म होगी। "अर्कच्छदास्ताम्रपत्राणि भस्म स्युः" ऐसा अर्थ है।

विमर्श—ताम्र भस्म का यह प्रकार केवल वानस्पतिक द्रव्यों द्वारा बताया गया है। यद्यपि कुछ क्षार एवं लवणों का प्रयोग किया गया है तथापि यह प्रकार मूलों द्वारा भस्म निर्माण का है। अतः मध्यम विधि है।

ताम्र भस्म की तीसरी विधि

यद्वा तानि समेन गन्धकशिलातालेन गन्धेन वा
शिष्टेन द्वितयेन वाऽम्लसलिलैः पिष्टेन यैः कैरपि।
यद्वा प्रस्तरगन्धकेन निविडं लिप्तानि भाण्डान्तरे
क्षिप्त्वा सम्पुटितानि केवलमहः पक्वानि जीवन्ति न॥ ५७॥

आचार्यश्री ने केवल अरिलोहों द्वारा मारित इस विधि का उल्लेख यहाँ किया है। शुद्ध ताम्र पत्र ३०० ग्राम और शुद्ध गन्धक-शुद्ध हरिताल तथा मनः शिला प्रत्येक १०० ग्राम लें और जम्बीरी निम्बु स्वरस की भावना देकर उक्त ताम्र पत्र पर लेप करें। अथवा केवल शुद्ध गन्धक ताम्र के बराबर लेकर जम्बीरी स्वरस की भावना देकर ताम्र पत्र पर लेप करें। अथवा गन्धक के अतिरिक्त हरताल एवं मनःशिला दोनों द्रव्यों को ताम्र के बराबर लेकर जम्बीरी स्वरस या कोई अन्य अम्ल स्वरस की भावना देकर पूर्ववत् ताम्र पत्र पर लेप करें। अथवा पाषाण गन्धक ताम्र के बराबर लेकर किसी भी अम्ल द्रव्य के स्वरस की भावना देकर ताम्र पत्र पर लेप करें तथा शराव-सम्पुट कर भाण्डपुट में उक्त सम्पुट को रखकर केवल एक दिन पर्यन्त तीव्राग्नि से पाक करने से ताम्र की भस्म निश्चित हो जाती है।

विमर्श—भाण्डपुट—

यथा— स्थूलभाण्डे तुषापूर्णे मध्ये मूषासमन्विते।
वह्निना विहिते पाके तद्भाण्डपुटमुच्यते॥ (र. र. समु. १०।६०)

(सोमनाथीताम्रभस्म) ताम्रभस्म की चौथी विधि

नेपालं समरुद्रबीजमसुरस्तुल्यस्तयोस्तालकोऽ-
स्यार्धोऽस्यार्धशिलां विधाय विधिना श्लक्ष्णां परां कज्जलीम्।
लिप्त्वा ताम्रदलानि सम्यगनया भाण्डे पचेद्यामकं
यन्त्राध्यायसमुक्तशास्त्रविधिना तत्स्वाङ्गशीतं हरेत्॥ ५८॥
तत्तद्रोगहरानुपानसहितं ताम्रं द्विवल्लोन्मितं
संलीढं परिणामशूलमुदरं पाण्डुं च शूलं ज्वरम्।
गुल्मप्लीहयकृत्क्षयाग्निसदनं मेहं च मूलामयं
दुष्टां च ग्रहणीं हरेद्ध्रुवमिदं तत्सोमनाथाभिधम्॥ ५९॥

आचार्य श्रीसोमनाथ द्वारा बतायी गयी ताम्रभस्म की नई विधि का उल्लेख यहाँ पर किया गया है। इस विधि से निर्मित ताम्र भस्म एक ही बार में निर्दोष एवं विशेष गुणप्रद हो जाती है। विधि निम्न प्रकार से कही गयी है।

शुद्ध नेपाली ताम्रपत्र १०० ग्राम, शुद्ध पारद १०० ग्राम, शुद्ध गन्धक १०० ग्राम, शुद्ध हरताल ५० ग्राम और शुद्ध मनःशिला २५ ग्राम; सर्वप्रथम एक पत्थर के खरल में पारद एवं गन्धक को डाल कर मर्दन करते हुये कज्जली बनावें, तत्पश्चात् उसमें हरताल तथा मनःशिला डालकर मर्दन करें और श्लक्ष्ण कज्जली करें। पुनः उक्त कज्जली को जम्बीरी स्वरस की भावना देकर ताम्रपत्रों पर लेप करें, सुखाकर शराव-सम्पुट करें, उक्त सम्पुट को यन्त्राध्याय में निर्दिष्ट भाण्डयन्त्र या पुट यन्त्रमें रखकर चूल्हे पर चढावें और १२ घण्टों तक तीव्राग्नि द्वारा पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर कृष्ण वर्ण के ताम्रपत्रों एवं अवशिष्ट चूर्णों को खरल कर शीशी में रख कर उपयोग में लावें। यह ताम्रभस्म तैयार हो गया है, ऐसा समझ कर उन उन रोगों में अनुपान भेद से दो वल्ल (४ से ६ रत्ती) की मात्रा में प्रयोग करें। इस सोमनाथी ताम्रभस्म के प्रयोग से परिणामशूल-उदररोग, पाण्डु, शूल, ज्वर; गुल्म, प्लीह, यकृत्, क्षय, अग्निमांद्य, प्रमेह, अर्श और असाध्य संग्रहणी रोग निश्चित ही नष्ट होते हैं।

विमर्श—आचार्य सोमदेव ने अपने ग्रन्थ "रसेन्द्रचूडामणि" में इसी प्रकार किन्तु यन्त्रादि में भिन्नता बताते हुये सोमनाथी ताम्रभस्म की विधि बतायी है। यथा—

शुल्वतुल्येन सूतेन बलिना तत्समेन च।
तदर्धांशेन तालेन शिलया च तदर्धया॥ ६६॥
विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां भिन्नकज्जलसन्निभाम्।
यन्त्राध्यायविनिर्दिष्टगर्भयन्त्रोदरान्तरे ॥ ६७॥

कज्जलीं ताम्रपत्राणि पर्यायेण विनिक्षिपेत् ।
प्रपचेद्यामपर्यन्तं स्वाङ्गशीतं प्रचूर्णयेत् ॥ ६८ ॥
(रसेन्द्रचूडा. १४।)

इस विधि में औषधों एवं उनकी मात्रा पूर्ववत् बताते हुये आचार्यश्री ने विधियों में भिन्नता बतायी है। १. पहली बात तो यह कि यहाँ पर कज्जली में भावना देकर ताम्रपत्रों पर लेप करने को नहीं कहा है। इसमें एक शराव में पहले कज्जली चूर्ण फैलाने तथा उस पर ताम्रपत्र रखने तथा पुनः उस पर कज्जली तथा पुनः ताम्रपत्र और पुनः कज्जली (पर्याय क्रम से) रखने को कहा है। अर्थात् ऊपरनीचे कज्जली और बीच में ताम्रपत्र रखने का स्पष्ट निर्देश दिया है। २. दूसरा अन्तर यह कि आचार्य विन्दु ने भाण्डयन्त्र में रख कर पाक करने को कहा तथा आचार्य सोमदेव ने गर्भयन्त्र में पाक करने को बताया है।

सीस भस्म की विधि

सीसं काष्ठकृशानुना पटुघटभ्राष्ट्रे द्रुतं कन्यका-
मूलैर्घृष्टमिभाशनार्कबहुपाद्ब्रह्मद्रुमूलायसाम् ।
दण्डेनान्यतमस्य यावदवधि स्यात्पिष्टिका तत्पुनः
सिन्दूरारुणमुद्धृतं च शिलया वस्वंशया योजितम् ॥ ६० ॥
कन्यावारिविभावितं पुनरपि प्राक्प्रक्रियोत्पादितं
त्रिः स्याद्भस्म करीषवह्निपुटितं प्रान्तेऽतिमन्दं सकृत् ।

आचार्यश्री ने नाग भस्म करने के लिये एक प्राचीन प्रक्रिया का उल्लेख किया है। एक मजबूत घड़े के खर्पर को चूल्हे (भट्ठी) पर स्थापित कर सूखी लकडी से प्रज्ज्वलित करें। घट-खर्पर में शुद्ध नाग डाल कर पिघलावें। पिघलने के बाद उसमें घृतकुमारीमूल, पीपर (अश्वत्थ) मूलदण्ड, वटमूलदण्ड (बहुपादः-वटवृक्षः), पलाशमूलदण्ड और लोहदण्ड या अन्य और भी किसी के दण्ड से पिघले हुये नाग को दृढ मर्दन करें, जब तक सम्पूर्ण नाग, चूर्ण नहीं हो जाय। पुनः वह नाग चूर्ण सिन्दूर जैसा लाल हो जायगा। स्वाङ्गशीत होने पर उसे निकाल कर महीन छलनी से छान लें। पुनः उस नागचूर्ण के आठवाँ अंश शुद्ध मनःशिला मिलाकर घृतकुमारी स्वरस की सात बार भावना दें और चक्रिका बनाकर सुखावें, शरावसम्पुट कर करीषाग्नि में पाक करें। करीषाग्नि=शुष्क गोमय चूर्ण की अग्नि अर्थात् लघुपुट देने का आचार्यश्री का मत है। यहाँ पर एक ही पुट देने का उल्लेख है। किन्तु क्रमशः अग्नि विवर्धन करते हुये ४ बार कुक्कुट एवं वाराहपुट में पाक करना अत्युत्तम भस्म के लिये अच्छा होगा।

विमर्श—पटुघटभ्राष्ट्रे=का अर्थ मजबूत घट खर्पर की भट्ठी में। इभाशनः=अश्वत्थः अर्थात् इसे हाथी प्रेम से खाते हैं। कन्यामूलदण्ड, अर्कमूलदण्ड, वटमूलदण्ड और पलाशमूलदण्ड इन पाँचों मूलदण्डों से १-१ घण्टा तक द्रुतनाग को मर्दन करें, पुनः लोहदण्ड अर्थात् कलछुल से मर्दन करें। आचार्य श्री ने तो यह भी कह दिया कि उपर्युक्त पाँचों मूलों के अभाव में कोई दूसरे वृक्ष के दण्ड से भी मर्दन कर सकते हैं।

वङ्ग भस्म की विधि

कन्यामूलविघट्टनारहितया वङ्गोऽपि भस्मीभवे-
त्पूर्वप्रक्रिययैव मानसशिलास्थाने तु दत्तालया ॥ ६१ ॥

आचार्यश्री ने नागभस्म के जैसा ही वङ्गभस्म बनाने के लिए कहा है किन्तु दो परिवर्तनों के साथ। वङ्गभस्म निर्माण में घृतकुमारी मूल से द्रवित वङ्ग को घर्षण करने को मना किया है। दूसरा यह कि मनःशिला के स्थान पर शुद्ध हरताल का प्रयोग किया गया है। शेष सभी कार्य पूर्ववत् (नागभस्म जैसा) करना है।

विधि—एक लोह की छोटी कड़ाही या मजबूत घटखर्पर को भट्ठी पर चढ़ाकर उसमें शुद्ध वङ्ग रखकर तीव्राग्नि द्वारा वङ्ग को द्रवित करें। द्रवित वङ्ग को पीपर-मूलदण्ड, पलाशमूलदण्ड, अर्कमूलदण्ड और वटमूलदण्ड से घर्षण कर चूर्ण करें। जब सम्पूर्ण वङ्ग चूर्ण हो जाय तो उसके वजन के अष्टमांश शुद्ध हरिताल डाल कर मिला कर इकट्ठा कर शराव से ढक कर २-३ घण्टे तक पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर महीन छलनी से छान कर घृतकुमारी स्वरस की भावना देकर टिकिया बनावें, सुखा कर शराव-सम्पुट कर करीषाग्नि से लघुपुट में पाक करें। इस तरह कुमारी स्वरस की बार-बार भावना देकर अग्नि बढ़ा कर कुक्कुट और वाराह पुट में बार-बार पाक करें। वङ्गभस्म श्वेत होता है।

वङ्गभस्म की द्वितीय एवं तृतीय विधि

वङ्गे घर्षणकाल एव भिषजः पीतायवानीरजो
न्यस्यन्ति क्षणशः शिलाजतु तथा भस्माऽप्यपामार्गजम् ।
लिप्त्वा रङ्गदलान्यरुष्कपिशितैर्भाण्डे तु चिञ्चात्वचो
भूत्याः संस्तरसंस्थितानि पुटतः कुर्वन्ति भस्मान्यपि ॥ ६२ ॥

पूर्ववत् दृढ घटखर्पर को चूल्हे पर चढ़ा कर अग्निप्रज्वलित करें, उसमें शुद्धवङ्ग डाल कर द्रवित करें। तत्पश्चात् द्रवित वङ्ग में अष्टमांश हल्दी चूर्ण और

अष्टमांश यवानी बीजचूर्ण का थोड़ा-थोड़ा प्रक्षेप देकर पलाशमूलदण्ड, पीपरमूलदण्ड या अर्कमूलदण्ड से अथवा कलछुल से दृढ़ घर्षण कर चूर्ण करें। पुनः कर्पूर गन्धी शिलाजतु (कलमीसोरा=Potassium Nitrate का प्रक्षेप देकर मर्दन करें। तत्पश्चात् अपामार्ग पञ्चाङ्ग भस्म डालकर मर्दन करें तथा सभी चूर्णों को एकत्रकर शराव से ढक दें और ३ घण्टे तक तीव्राग्नि से पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर वस्त्रपूत कर शीशी में रख लें।

तृतीय विधिः—शुद्ध वङ्ग को पतला पत्र बना लें तथा उन पत्रों पर भल्लातक तैल या भल्लातक बीज के मांसल भाग को पीस कर लेप करें। तत्पश्चात् मिट्टी की एक हाँडी में इमली वृक्ष की छाल की भस्म (छलनी से छानी हुई राख) पहले फैला दें और उस राख पर भल्लातक लिप्त वङ्गपत्र को रख कर पुनः उस पत्र पर इमलीभस्म फैलावें। इसी तरह बार-बार भस्म और लिप्त वङ्गपत्र रख कर (संस्तर=एक पर एक) हांडी के मुख को शराव-सम्पुट कर गजपुट में पाक करें।

आचार्य ने तो एक ही बार पुट देने का निर्देश दिया है किन्तु एक बार के पुट में अच्छी भस्म नहीं बनती है अतः सम्पुट से वङ्गपत्रों को निकाल कर खरल में मर्दन कर चूर्ण कर लें तथा घृतकुमारी स्वरस की भावना देकर टिकिया बनावें, सुखाकर शराव-सम्पुट कर पुनः पुनः १० बार वाराहपुट में तथा गजपुट में पाक करें। भस्म श्वेत होती है।

वङ्गभस्म की चौथी विधि

यद्वैतस्य दलानि विंशतिगुणे पिण्याकचूर्णेऽतसी-
सम्भूते शणपट्टवर्तिनि पुनस्तद्वद्यवान्या अपि।
कीर्णानि क्रमशो निबध्य सुदृढं रज्ज्वा गजाह्वे पुटे
स्युर्भस्म, त्रपुणि स्थिते तु पुटतोऽपक्वेऽयमेव क्रमः ॥ ६३ ॥

आचार्य श्री ने वङ्गभस्म बनाने की एक नयी बिधि का यहाँ उल्लेख किया है। शुद्ध वङ्ग १ भाग, अतसी (तीसी) के पिण्याक=(खली)२० भाग और शण के रेशे से निर्मित पट्ट या बोरा आदि यथावश्यक लें। अलसी के खली को चूर्ण कर लें। मिट्टी की एक मजबूत हाँडी में पहले शण पट्ट या रेशे फैलावें, उस पर तीसी की खली के चूर्ण फैलावें, उस पर वङ्गपत्र फैलावें। क्रमशः पुनः पुनः शण पट्ट, तीसी पिण्याक चूर्ण तथा वङ्ग पत्र फैलाकर एक पर एक कई परत फैलावें ऊपर एवं नीचे अतसी पिण्याक एवं शण पट्ट रहना चाहिये। इसके बाद हाँड़ी का मुख बन्द कर गजपुट में पाक करें। दूसरे दिन हाँड़ी का मुख खोलकर

भस्म हुये वङ्ग के पत्रों को इकट्ठा कर चूर्ण कर शीशी में रख लें। यदि भस्म नहीं बनी है, अपक्व है; तो पुनः पुनः इसी क्रम से पुट दें तो निश्चित ही वङ्ग की श्वेत भस्म होगी।

विमर्श—शण के रेशे या उसकी सुतली से बोरा जैसा पट्ट बना लें। बाजार में शण के पाट भी मिलते हैं। उसी को लेना अधिक उचित होगा। इस भस्म में एक दो बार कुमारी स्वरस की भावना देकर टिकिया बनावें तथा सुखा कर शरावसम्पुट में दो बार पुट देने से और भी गुणकारी भस्में बनेंगी।

कृत्रिम लोहों (पित्तल-कांस्य-वर्त्त) की भस्म विधि

शेषाणां विकृतात्मनां रजतवद्वा शुल्बवत्प्रक्रिया
लोहानामरिलोहमारणमसत्कृत्यं तु नोक्तं मया।

आचार्य ने कृत्रिम लोहों के मारण के लिये कोई अलग विधि का वर्णन नहीं किया है। इन्होंने शेष बचे हुये विकृत लोहों=परस्पर मिले लोहों (पित्तल-कांस्य-वर्त्त) के लिये भस्म करने की विधि रजत अथवा ताम्र जैसी कही है। आचार्य श्री कहते हैं कि यद्यपि अन्य आचार्यों ने अरिलोहों से लोहों का मारण करना दुर्गुणप्रद बताया है तथापि असत्कृत=दुर्गुणप्रद होने के कारण उस विधि को मैंने नहीं कहा है। दुर्गुणप्रद (असत्कृत) होने के कारण आचार्य सोमदेव ने कहा है कि—

लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना।
मूलीभिर्मध्यमं प्राहुः कनिष्ठं गन्धकादिभिः ॥
अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम् ॥

(रसेन्द्रचूडामणि १४।१४)

लोहों के शत्रु वर्ग के द्रव्यों की एक तालिका यहाँ दी जा रही है।

धातुयें	शत्रुगण	पर्याय
स्वर्ण	नीलाञ्जन	स्वर्णघ्नः
रजत	हरताल	
ताम्र	गन्धक	शुल्बारि
लोहा	माक्षिक	लोहरिपु
नाग	मनःशिला	नागरिपु
वङ्ग	हरताल	वङ्गारि
पित्तल, कांस्य, वर्त्त	गन्धक	ताम्र बाहुल्यात्

भस्मों का एकाकी प्रयोग हेतु निर्देश

सर्वेषां मतमेतदेव भिषजां यत्तारसीसोद्भवं ।
पार्थक्येन गुणावहं न भसितं प्रोक्तोपलोहस्य च ॥ ६४ ॥

आचार्य श्री कहते हैं कि सभी वैद्यों (या वैद्याचार्यों) का यही मत है कि रजतभस्म और सीसभस्म का अकेला प्रयोग रोगियों पर नहीं करना चाहिये। इन भस्मों का अकेला (पृथक्-पृथक्) प्रयोग करने से गुण प्रद नहीं होता है। इसी तरह उपलोहों के भस्मों अर्थात् पित्तल-कांस्य-वर्त्तलोह के भस्मों का भी प्रयोग अकेले नहीं करना चाहिये। इनके अकेले प्रयोग गुणप्रद तो नहीं होंगे। सम्भवतः दुर्गुणप्रद हो जा सकते हैं। अतः इनके अकेले प्रयोग निषिद्ध हैं। व्यवहार में भी ऐसा ही देखा जाता है कि स्वर्ण-ताम्र-लोह-वङ्ग-यशद का प्रयोग अकेला भी होता है किन्तु रजत-नाग-पित्तल-कांस्य और वर्त्त लोहों का प्रयोग अकेला नहीं देखा जाता है।

स्वर्ण का पक्वापक्व गुणों का विचार

पक्वं हेम रसायनं विदुरथापक्वं तु सद्यो विष-
प्रध्वंसि क्षयिबृंहणं वमिहरं वर्ण्यं ज्वरिभ्यो हितम् ।

पक्व स्वर्ण अर्थात् सम्यग्रीति से निर्मित स्वर्णभस्म श्रेष्ठ रसायन है। तथा अपक्व अर्थात् कच्चा स्वर्ण या तो कठिन पत्थर पर जल-दूध आदि में घिसकर शहद से चटाया हुआ अथवा स्वर्ण का सूक्ष्म पत्र (तवक) बनाकर शहद से प्रयोग किया हुआ स्वर्ण सद्यः विषघ्न है, धातुओं के क्षय अथवा क्षय रोग को नाश करता है, बृंहण है, वमननाशक है, कान्तिप्रद है और ज्वरनाशक हैं।

विमर्श—अन्य आचार्यों ने भी स्वर्ण के भस्मों तथा अपक्व स्वर्ण के गुणों का वर्णन भी इसी प्रकार किया है।

यथा—

सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु रसायनम् ।
तुवरं स्वादु तिक्तं च पाके तु स्वादु पिच्छलम् ॥ २७ ॥
पवित्रं बृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृतिमतिप्रदम् ।
हृद्यमायुष्करं कान्तिवाग्विशुद्धिस्थिरत्वकृत् ॥ २८ ॥
विषद्वयक्षयोन्मादत्रिदोषज्वरशोकजित् ।
अपक्वमेव संशुद्धं, पक्वं तत्तु रसायनम् ॥ (आ. प्र. ३।२९)

अपि च—

आयुर्लक्ष्मीप्रभाधीस्मृतिकरमखिलव्याधिविध्वंसिपुण्यं
भूतावेशप्रशान्तिस्मरभरसुखदं सौख्यपुष्टिप्रकाशि ।
गाङ्गेयं चाथ रूप्यं गदहरमजराकारि मेहापहारि
क्षीणानां पुष्टिकारि स्फुटमतिकरणं वीर्यवृद्धिप्रकारि ॥ ९

स्निग्धं मेध्यं विषगदहरं बृंहणं बृष्यमग्र्यं
यक्ष्मोन्मादप्रशमनपरं देहरोगप्रमाथि ।
मेधाबुद्धिस्मृतिसुखकरं सर्वदोषामयघ्नं
रुच्यं दीप्तिप्रशमितरुजं स्वादुपाकं सुवर्णम् ॥ (र.र.समु.५।१०)
एतद्भस्म सुवर्णजं कटुघृतोपेतं द्विगुञ्जोन्मितं
लीढं हन्ति नृणां क्षयाग्निसदनं श्वासं च कासारुचिम् ।
ओजोधातुविवर्धनं बलकरं पाण्ड्वामयध्वंसनं
पथ्यं सर्वविषापहं गरहरं दुष्टग्रहण्यादिनुत् ॥ (र.र. समु.५।१८)

अपि च—

मृतं सुवर्णं मधुरं च वृष्यं हृद्यञ्च नेत्र्यं परमं च मेध्यम् ।
रसायनं पुसंवनोपयोगि विषापहं कान्तिकरं च शस्तम् ॥

अपि च—

सुवर्णं बृंहणं स्निग्धं मधुरं रसपाकयोः ।
विषदोषहरं शीतं सकषायं सतिक्तकम् ॥
हृद्यं कान्तिप्रदं बल्यं स्रंसनं गुरु लेखनम् ।
बुद्धिमेधास्मृतिकरं व्रणघ्नं वाग्विशुद्धिदम् ॥
क्षयोन्मादप्रशमनं चक्षुष्यं च रसायनम् ।
त्रिदोषशमनं सौम्यमायुष्यं रुचिरं शुचि ॥
(आनन्दकन्द क्रिया. २।४८)

अपि च—

शुद्धे हृदि ततः शाणं हेमचूर्णस्य दापयेत् ।
हेम सर्वविषाण्याशु गरांश्च विनियच्छति ॥
न सज्जते हेमपाङ्गे विषं पद्मदलेऽम्बुवत् ॥ (चरक चि. २।३०

अपि च—

अपक्वं हेम संघृष्टं शिलायां जलयोगतः ।
द्रवरूपं तु तत्पेयं मधुना गुणदायकम् ॥ (आ. प्र. ३।३३)

अपि च—

यद्वाऽपि तबकाख्यं तु स्वर्णपत्रं विचूर्णितम् ।
मधुना संगृहीतं चेतसद्यो हन्ति विषादिकम् ॥ (आ. प्र. ३।३४)

अपि च—

एतत्स्वर्णभवं करोति च रजः सौन्दर्यसौख्ये सदा
रोगान् दैवकृतान्निहन्ति सकलान् सत्यं त्रिदोषोद्भवान् ।
यः सेवेत नरः समां द्विदशकान् वृद्धश्च नो जायते
दोषा नैव गरोद्भवा विषकृता आगन्तुजाश्चैव हि ॥

(रसप्रकाशसुधाकर ४।२०)

स्वर्ण के अतिरिक्त अन्य अपक्वधातुओं के दोष

रूप्यादेषु विमृश्य वादिभिरुपक्षिप्तोऽस्त्यपक्वे गुणः ।
प्रोक्तः प्राकृतवैकृतेषु तु मया वैद्यैरपक्वं खलु ॥ ६५ ॥

रजत-ताम्रादि अन्य प्राकृतिक एवं कृत्रिम धातुओं का अपक्वावस्था में प्रयोग वैद्यों को प्रायः नहीं करना चाहिये । धातुवादियों से विचार कर इनके गुणों को कहना उचित है ।

विमर्श—प्राकृत धातुओं की श्रेणी में—स्वर्ण-रजत-ताम्र-लोहा-नाग-वङ्ग-यशद है तथा कृत्रिम धातुओं में पितल, कांस्य और वर्त्त धातुओं की गणना की जाती है। इन प्राकृत धातुओं में से स्वर्ण के गुणों का उल्लेख ६५ श्लोक के पूर्वार्द्ध में किया जा चुका है। अतः इस श्लोक के उत्तरार्द्ध में स्वर्ण के अतिरिक्त अन्य सभी धातुओं का अपक्वावस्था (कच्ची) में प्रयोग गर्हित बताया गया है। यद्यपि यहाँ इस शताब्दी से रजत का प्रयोग वर्क रूप में खूब प्रचलित है, यथा आजकल तो और भी अल्युमिनियम के वर्क का प्रयोग खान-पान की सामग्री में वे हिसाब एवं वेतरतीब बैठ गया है, जिसका दुष्प्रभाव समाज को परोक्ष रूप में असाध्य रोगों को उत्पन्न कर अपनी काली छाया से ग्रस्त करता जा रहा है।

आचार्यश्री ने ६४ वें श्लोक के उत्तरार्द्ध में पहले ही कहा है कि रजत और नाग के सम्यक्तया मारित भस्म भी अकेले (बिना किसी योग के) प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि अकेले उन सम्यग्मृत भस्मों का प्रयोग वर्जित है तो उन धातुओं को अपक्वावस्था में प्रयोग कैसे किया जा सकता है ? ताम्र तो ऐसे ही घोर विष है। यथा—

न विषं विषमित्याहुस्ताम्रं तु विषमुच्यते ।
एको दोषो विषे ताम्रे त्वष्टौ दोषाः प्रकीर्तिताः ॥

भ्रमो मूर्च्छा विदाहश्च स्वेदक्लेदन वान्तयः ।
अरुचिश्चित्तसन्ताप एते दोषा विषोपमाः ॥

(आयु. प्रकाश ३।११६)

ऐसे ही आधुनिक चिकित्सक भारी धातुओं का प्रयोग यह कह कर मना करते हैं कि heavy matel वृक्कों को क्षति पहुँचाते हैं। अतः स्वर्ण के अतिरिक्त धातुओं को (कच्चा) अपक्व प्रयोग नहीं करना चाहिये।

विशेष—आयुर्वेदप्रकाशकार श्री माधव ने अपने ग्रन्थ में रसपद्धति के इसी श्लोक को कुछ परिवर्तन के साथ उद्धृत किया है। यथा—इसी श्लोक के अन्तिम चरण इस प्रकार परिवर्तित हैं।

"स्ताम्रं चापि विषातिहृन्निगदितं वैद्यैरपक्वं ध्रुवम् ।।"

कान्तलोह भस्म के गुण

शोफं हन्ति हलीमकं च जरसं पाण्डुं च पाण्डुक्षयं
भूतिः कान्तिभवा, ततस्तु कियता न्यूनैव तीक्ष्णोद्भवा ।

कान्तलोहभस्म शोथ, हलीमक, जरारोग (जल्दी बुढ़ापा नहीं आने देता), पाण्डु और पाण्डुताजन्य क्षय रोग को नष्ट करता है। इस कान्तलोहभस्म से कुछ कम गुण तीक्ष्णलोह भस्म के होते हैं।

विमर्श—यह कान्तलोहभस्म अत्यधिक गुण वाला है। कान्तलोहभस्म अत्यन्त रसायन है, यदि स्वस्थ मनुष्य इसका अत्यधिक सेवन करता है तो यह उसे चिरायु प्रदान करता है अर्थात् आयुष्य है, मेहहर, त्रिदोषनाशक है, शूल, आमदोष, अर्श, गुल्म-प्लीह-यकृत्-क्षय-पाण्डु एवं उदररोगनाशक है। स्निग्ध है, शीतवीर्य है, अधिक कहने से क्या लाभ, यह सभी रोगों को नाश करता है। यथा—

कान्तायोऽतिरसायनोत्तरतरं स्वस्थे चिरायुः प्रदं
स्निग्धं मेहहरं त्रिदोषशमनं शूलाममूलापहम् ।
गुल्मप्लीहयकृत्क्षयामयहरं पाण्डूदरव्याधिनुत्
तिक्तोष्णं हिमवीर्यकं किमपरं योगेन सर्वार्तिनुत् ॥

(रसेन्द्रचूडामणि १४।९४)

अपि च—

कान्तायः कमनीयकान्तिजननं पाण्ड्वामयोन्मूलनं
यक्ष्मव्याधिनिबर्हणं गरहरं दोषत्रयोन्मूलनम् ।

नानाकुष्ठनिबर्हणं बलकरं वृष्यं वयस्तम्भनं
सर्वव्याधिहरं रसायनवरं भौमामृतं नापरम् ॥

(रसरत्नसमु. ५।१३६)

अपि च--

एतत्स्यादपुनर्भवं हि भसितं लोहस्य दिव्यामृतं
सम्यक् सिद्धरसायनं त्रिकटुकीवेल्लाज्यमध्वन्वितम् ।
हन्यान्निष्कमितं जरामरणजव्याधींश्च सत्पुत्रदं
दिष्टं श्रीगिरिशेन कालयवनोद्भूत्यै पुरा तत्पितुः ॥ १३७ ॥

अपि च—

लोहं जन्तुविकारपाण्डुपवनक्षीणत्वपित्तामय—
स्थौल्यार्शोग्रहणीज्वरार्तिकफजिच्छोफप्रमेहप्रणुत् ।
गुल्मप्लीहविषापहं बलकरं कुष्ठाग्निमान्द्यप्रणुत्
सौख्यालम्बिरसायनं मृतिहरं किट्टञ्च कान्तादिवत् ॥ १३८ ॥

अपि च—

मृतानि लोहानि रसीभवन्ति निघ्नन्ति युक्तानि महामयांश्च ।
अभ्यासयोगाद् दृढदेहसिद्धिं कुर्वन्ति रुजन्मजराविनाशम् ॥

(रसरत्नसमु. ५।१३९)

अन्य आचार्यों ने अशुद्ध लोहों के कई दोष भी बतायें हैं । यथा—

गुरुता दृढतोत्क्लेदः कश्मलं दाहकारिता ।
अश्मदोषः सदुर्गन्धो दोषाः सप्तायसः स्मृताः ॥

(आयुर्वेदप्रकाश ३।२२३)

इसी प्रकार अशुद्ध लोहों के प्रयोग से भी शरीर में भयङ्कर रोग उत्पन्न होते हैं । यथा—

षण्ढत्वकुष्ठामयमृत्युदं भवेद्धृद्रोगशूलौ कुरुतेऽश्मरीं च ।
नानारुजानां च तथा प्रकोपं करोति हृल्लासमशुद्धलोहम् ॥

(आयु. प्रकाश ३।२२४)

आचार्यों ने असम्यग् मारित लोह सेवन से मृत्युदायक रोग प्राप्त होने की भी चेतावनी दी है । अतः सावधानी पूर्वक लोहभस्म की सम्यक् परीक्षोपरान्त ही उपर्युक्त सद्गुण की प्राप्ति के लिए उपयोग करना चाहिये । यथा—

जीवहारि मदकारि चायसं देहशूलकृदसंस्कृतं ध्रुवम् ।
पाटवं न तनुते शरीरके दारुणां हृदि रुजां च यच्छति ॥

(आयु. प्रकाश ३।२२५)

आचार्यों ने लोहभस्म को सेवन करने में आवश्यक अपथ्य का भी निर्देश किया है। अतः सम्यग् गुण प्राप्ति के लिए इन अपथ्यों का पालन करना आवश्यक है । यथा—

कूष्माण्डं तिलतैलं च माषान्नं राजिकां तथा ।
मद्यमम्लं मसूरांश्च त्येजेल्लोहस्य सेवकः ॥

(आयुर्वेद प्रकाश ३।२२९)

ताम्र भस्म के गुण

कासश्वासिनि शूलिनि ज्वरिणि हृद्रोगिण्युपश्लोकिता
भूतिः शुल्बभवा, ...

ताम्रभस्म का प्रयोग–कास, श्वास, उदरशूल, ज्वर एवं हृद्रोग में करने के लिये कहा गया है ।

विमर्श—रसशास्त्र में ताम्र एक महत्त्वपूर्ण धातु है । सम्यग् मारित ताम्रभस्म बहुत ही उपयोगी है । अन्य सभी आचार्यों ने ताम्रभस्म का सम्यग् उपयोग बताया है । यथा—

ताम्रं तिक्तकषायकञ्च मधुरं पाके च वीर्योष्णकं
साम्लं पित्तकफापहं जठररुक्कुष्ठामजूर्त्यन्तकृत् ।
ऊर्ध्वाधः परिशोधनं विषयकृत्स्थौल्यापहं क्षुत्करं
दुर्नामक्षयपाण्डुरोगशमनं नेत्र्यं परं लेखनम् ॥

(रसेन्द्रचूडामणि १४।६९)

अपि च—

परिणामभवं शूलं तथा चाष्टविधं च तम् ।
उदरं पाण्डुशोफं च गुल्मप्लीहयकृत्क्षयान् ॥ ४५ ॥
अग्निसादक्षयकृतान् मेहादीन् ग्रहणीगदान् ।
जयेद् बहुविधान् रोगाननुपानप्रयोगतः ॥ ४६ ॥

(रसप्रकाशसुधा. ४)

आचार्य सोमनाथ द्वारा निर्मित–सोमनाथी ताम्रभस्म के गुण अन्य ग्रन्थों में भी बताया गया है। यथा—

संलीढं परिणामशूलमुदरं शूलं च पाण्डुं ज्वरम् ।
गुल्मप्लीहयकृत्क्षयाग्निसदनं मेहं च मूलामयं
दुष्टां च ग्रहणीं हरेद् ध्रुवमिदं तत्सोमनाथाभिधम् ॥

(रसेन्द्रचूडामणिः १४।७०)

वङ्ग नाग भस्मों के गुण

.... तु वङ्गजनिता मेहिन्यसन्मूत्रिणि ॥ ६६ ॥

सम्यग् मारित वङ्ग और नाग भस्मों का प्रयोग प्रमेह के सभी प्रकार में तथा मूत्राघात आदि मूत्र विकृतिओं में किया जाता है और उससे बहुत ही लाभ देखा जाता है।

विमर्श—अन्य सभी रसाचार्यों ने वङ्गभस्म के सुपरीक्षित गुणों का उल्लेख अपने-अपने ग्रन्थों में किया है। यथा—

सिंहो यथा हस्तिगणं निहन्ति तथैव वङ्गोऽखिलमेहवर्गम्।
देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ॥ (आ.प्र. ३।१५१)

अपि च—

बल्यं दीपनपाचनं रुचिकरं प्रज्ञाकरं शीतलं
सौन्दर्यैकविवर्धनं हितकरं नीरोगताकारकम्।
धातुस्थौल्यकरं क्षयिक्षयकरं सर्वप्रमेहापहं
वङ्गं भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः ॥ (आ. प्र. ३।१५३)

अपि च—

वङ्गं तीक्ष्णोष्णरूक्षं कफकृमिविमिजिन्मेहमेदोऽनिलघ्नं
कासश्वासक्षयघ्नं प्रशमितहुतभुङ्मान्द्यमाध्मानदारि।
बल्यं वृष्यं प्रभाकृन्मनसिजजनकं सर्वमेहप्रणाशि
प्रज्ञाकृद्वर्ण्यमुच्चैरलघुरतिरसस्यास्पदं बृंहणं च ॥ (आ. प्र. ३।१५२)

अपक्व नागवङ्ग के दोष

पाकेन हीनौ किल नागवङ्गौ कुष्ठानि गुल्मांश्च तथाऽतिकष्टान्।
पाण्डुप्रमेहानलसादशोथभगन्दरादीन् कुरुतः प्रयुक्तौ ॥
(आ. प्र. ३।१८९)

महारस वर्ग

वैक्रान्तं गगनं शिलाजचपलौ तापीजतुत्थे तु ष-
ण्णाम्ना नाम महारसाः ....

यहाँ पर आचार्य श्री ने महारस वर्ग में छः द्रव्यों की गणना की है। यथा—

१. वैक्रान्त २. अभ्रक ३. शिलाजतु ४. चपल ५. माक्षिक एवं ६. तुत्थ।

विमर्श—रसाचार्यों में महारस, रस, उपरस एवं साधारण रसों का वर्गीकरण बड़ा ही विवादास्पद कर दिया है। इस सम्बन्ध में प्रायः आचार्य एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं। जहाँ पर एक आचार्य अभ्रक को महारस के वर्ग में समाविष्ट किया है तो दूसरा आचार्य अभ्रक को रसवर्ग में पढ़ा है, तीसरा आचार्य अभ्रक को उपरसवर्ग में रखा है। उदाहरणार्थ कुछ उद्धरण प्रस्तुत है। यथा—

माक्षिको विमलः शैलश्चपलो रसकस्तथा।
सस्यको दरदश्चैव स्रोतोऽञ्जनमथाष्टकम् ॥
अष्टौ महारसाश्चैवमेतान् प्रथमतः शृणु। (रसार्णवम् ७।२)

अपि च—

माक्षिको विमलश्चैव रसो वैक्रान्तमेव च।
सस्यकं चपलं शैलं सप्त एव महारसाः ॥ (रसोपनिषत् ४।४)

अपि च—

महारसाः स्युर्धनराजवर्त्तवैक्रान्तसस्या विमलाद्रिजाते।
तुत्थञ्च ताप्यञ्च रसायनास्ते सत्त्वानि तेषाममृतोपमानि ॥
(रसेन्द्रचूडामणि १०।१)

अपि च—

क्रमेण गगनं ताप्यं वैक्रान्तं विमलं तथा।
रसकं शैलसम्भूतं राजावर्त्तकसस्यके ॥
एतेमहारसाश्चाष्टावुदिता रसवादिभिः।
(रसप्रकाशसुधा० ५।२)

अपि च—

महारसाः स्युस्तत्रादावष्टौ पारदहिङ्गुलौ।
विमलं सस्यकं शैलं चपलं रसकं तथा ॥
अभ्रकं तुत्थकं कान्तं राजावर्तमथाञ्जनम्।
वज्रं वैक्रान्तकञ्चेति टंकणं च रसान्विदुः ॥
(रसराजलक्ष्मी)

वैक्रान्त के भेद
TOURMALINE

... . पुनरयं वैक्रान्तकः सप्तधा।
यद्यप्यरित तथाऽपि कृष्णसुषमं तद्वच्मि सर्वात्मना
शेषाम्न प्रकृतोपयोगविरहाच्छुद्धरतु कृष्णो घनः। ६७
षट्कोणो वसुकोणकोऽपि मसृणो.... ....

इन महारसों में सर्वप्रथम वैक्रान्त होने के कारण पहले वैक्रान्त का वर्णन करता हूँ। यह वैक्रान्त वर्ण भेद से सात प्रकार का होता है। वर्ण भेद से यद्यपि यह वैक्रान्त सात प्रकार का है तथापि उनमें से [कृष्णसुषमं] कृष्णाभ का ही

वर्णन करता हूँ। शेष छः वर्ग वाले वैक्रान्त रसौषधियों के लिये अनुपयोगी है। अतः उनका वर्णन नहीं कर रहा हूँ। शुद्ध वैक्रान्त की परीक्षा [Test of Purity] वैक्रान्त निर्मल कृष्णवर्ण का हो, भारयुक्त हो, षट्कोण तथा आठकोण वाला हो और चिकना हो तो उसे शुद्ध वैक्रान्त [Pure Tourmaline] कहते हैं।

विमर्श—अन्य आचार्यों ने वैक्रान्त की परिभाषा बताते हुए कहा है कि जो खनिज द्रव्य लोहे को विकृत कर दे उसे वैक्रान्त कहते हैं। यथा—"विकृन्तयति लोहानि तेन वैक्रान्तकः स्मृतः" (रसार्णव)। आचार्य भैरव ने रसार्णव में वैक्रान्त का ७ ही प्रकार बताया है।

यथा— श्वेतः पीतस्तथा रक्तो नीलः पारावतप्रभः।
मयूरबालसदृशश्चान्यो मरकतप्रभः॥
(रसार्णवम् ६। १२७)

आचार्य वाग्भट् ने वैक्रान्त का आठ प्रकार बताया है। यथा—

श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नीलः पारावतच्छविः।
श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरश्चाष्टधा हि सः॥
(रसरत्नसमु० २।५४)

अधिकांश आचार्यों ने इसी प्रकार वैक्रान्त के ७–८ भेद बताया है। इनमें श्रेष्ठ वैक्रान्त के लक्षण अथवा इन आठ वर्गों से युक्त वैक्रान्त में कृष्णाभ वैक्रान्त को जिस तरह आचार्य श्री विन्दु ने उत्कृष्ट बताया है उसी तरह आचार्य माधव ने भी आयुर्वेद प्रकाश में कृष्ण को ही श्रेष्ठ बताया है तथा अन्य सात को त्याज्य बताया है।

यथा— वैक्रान्तः कृष्णवर्णो यः षट्कोणो बसुकोणकः।
मसृणो गुरुतायुक्तो निर्मलः सर्वसिद्धिदः॥
(आयुर्वेदप्रकाश ५।१६५)

आचार्य सोमदेव ने भी वैक्रान्त का ८ भेद बताया है।

यथा— श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नीलः पारावतच्छविः।
श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरश्चाष्टधा हि सः॥
(रसेन्द्रचूडामणिः १०।६२)

वैक्रान्त का शोधन एवं मारण

... .मूत्रे कुलित्थोदके
स्नुग्रम्भोत्तरवारुणीपयसि च स्विन्नस्त्रिघस्रं शुचिः।

मूत्रेऽश्वस्य विभावितस्त्रिचतुरैर्ध्मातः पुटैर्मारितो
योज्यो वज्रपदे सुबुद्धिभिरयं यद्वज्रतुल्यो गुणैः॥ ६८॥

गोमूत्र या कुलत्थक्वाथ या स्नुही स्वरस, या कदलीकन्द स्वरस, या इन्द्रवारुणी स्वरस (दुग्ध) से पूरित दोलायन्त्र में वैक्रान्त को पोटली में बद्धकर (लटकाकर) तीन घण्टे तक स्वेदन करने से (वैक्रान्त) शुद्ध हो जाता है।

वैक्रान्त का मारण—शुद्ध वैक्रान्त को लोहे के हमामदस्ता में कूट कर वस्त्रपूत सूक्ष्मचूर्ण कर लें, पुनः अश्वमूत्र की ३–४ बार भावना देकर खूब मर्दन करें, टिकिया बनावें, शराब सम्पुट करें और "वाराहपुट" में पाक करें। इसी तरह ३–४ बार भावना देकर टिकिया बनावें और पुनः पुनः ८–१० बार वाराहपुट में पाक करने से वैक्रान्त की सुन्दर भस्म बनती है। भस्म लाल या कथ्थई वर्ण की होती है।

गुण—विद्वान् वैद्यों द्वारा सद्बुद्धि के अनुसार वज्रभस्म के स्थान पर प्रयोग करने से वज्र (हीरा) भस्म जैसा ही फल (गुण) देता है।

विमर्श—वैक्रान्त को कई आचार्यों ने भ्रामक बना दिया है। कुछ आचार्य इसे महारस या रस वर्ग में पढते हैं और कुछ इसे उपरत्न वर्ग में भी पढ़ते हैं। कोई-कोई तो इसे दोनों वर्गों में पढ़ कर दो द्रव्यों की कल्पना कर दिये हैं।

आज कल चार तरह के पाषाण खण्ड को वैक्रान्त कहने का प्रयास किया जाता है।

१. टुर्मेलीन—Tourmaline को वैक्रान्त मानने का प्रबल मत है।
२. फ्लोरस्पार—Flourspar को भी वैक्रान्त मानते हैं।
३. कैल्सियम फ्लोराइट—Calcium Florite को भी वैक्रान्त मानते हैं।
४. स्फटिक—Rockcrystal को भी वैक्रान्त माना जाता है।

इनके अतिरिक्त एक "अग्निवैक्रान्त" है जो अत्यधिक लोकप्रिय रत्न है। इसका रंग आग के जैसा दमकने वाला है। इसके लिए विशेष ज्ञान सामग्री हेतु मेरी अन्य पुस्तक "आयुर्वेदीय रसशास्त्र" देखें।

वैक्रान्त का शोधन अन्य आचार्यों की दृष्टि में भी कुछ ऐसा ही है।

यथा— कुलत्थक्वाथसंस्विन्नो वैक्रान्तः परिशुद्ध्यति। (रसरत्नसमु०)

अपि च—

वैक्रान्तकाः स्युः त्रिदिनं विशुद्धाः संस्वेदिताः क्षारपटूनि दत्त्वा।
अम्लेषु मूत्रेषु कुलत्थरम्भानीरेऽथवा कोद्रववारिपक्वाः॥
(रसरत्नसमु० २।६५)

अपि च—

हयमूत्रेण तत्सिञ्चेत्तप्तं तप्तं त्रिसप्तधा । (रसेन्द्रचिन्ता० ७।६३)

आचार्यों ने वैक्रान्त का मारण इससे भिन्न बताया है । यथा शुद्ध वैक्रान्त को चूर्णकर उसमें समभाग शुद्ध गन्धक चूर्ण मिलावें और निम्बू स्वरस की भावना देकर टिकिया बनावें, सुखावें तथा शराब सम्पुट कर गजपुट में पाक करें । ऐसा आठ बार (पूरी प्रक्रिया) करने से वैक्रान्त की भस्म हो जाती है ।

यथ— ।म्रियतेऽष्टपुटैर्गन्धनिम्बूकद्रवसंयुतः ।। (रसेन्द्रचूडामणि १०।६५)

अपि च

म्रियतेऽष्टपुटैर्गन्धनिम्बूकद्रवसंयुतः ।
वैक्रान्तेषु च तप्तेषु हेयमूत्रं विनिक्षिपेत् ॥ ६७ ॥
पौनःपुण्येन वा कुर्याद् द्रवं दत्त्वा पुटं त्वनु ।
भस्मीभूतं तु वैक्रान्तं वज्रस्थाने नियोजयेत् ।। (रसरत्नसमु० २)

आचार्य सोमदेव एवं वाग्भट् ने वैक्रान्त भस्म का गुण निम्न शब्दों में प्रकट किया है ।

यथा— आयुष्प्रदश्च बलवर्णकरोऽति वृष्यः प्रज्ञाप्रदः सकलदोषगदापहारी ।
दीप्ताऽग्निकृत्पविसमानगुणस्तरस्वी वैक्रान्तकः खलु वपुर्बललोहकारी ।।
(ससेन्द्रचूडामणि १०।६३ रसरत्नसमुच्चय २।५६)

आचार्यों ने वैक्रान्त का सत्त्वपातन भी अपने ग्रन्थों में बताया है ।

यथा— सत्त्वपातनयोगेन मर्दितश्च वटीकृतः ।
मूषास्थो घटिकाध्मातो वैक्रान्तः सत्त्वमुत्सृजेत् ।।
(रसेन्द्रचूडामणिः ११।६६)

अभ्रक भेद एवं लक्षण

MICA

मण्डूकाहिपिनाकवज्रविभिदा ख्यातश्चतुर्धाऽभ्रकः
प्रत्येकं स पुनस्तथैव विशदः पीतोऽरुणः श्यामलः ।
यस्तत्रोत्प्लवते कृशानुशकटीध्मातः स आद्योऽपरः
फूत्कारी स तथैव यः स विसृजत्यग्नौ पिनाकश्छदान् ।। ६९ ।।
उक्तं यत्तदसत्त्रयं त्रयमपि श्वेतादिवज्राभ्रकाद्
वज्रंत्योम तदामनन्ति भिषजः प्राग्वैकृतैर्वर्जितम् ।

स्निग्धं कज्जलकालकान्ति सुकरोल्लेखच्छदं गुर्वपि
स्वच्छं वज्रवियत् ··· ···· ···· ···· ···· ॥

आचार्यश्री ने सर्वप्रथम अभ्रक के चार भेद बतलाया है—

१. मण्डूक २. नाग ३. पिनाक और ४. वज्र । पुनः इन चारों के श्वेतादि वर्ण भेद से (प्रत्येक के) ४–४ भेद बताये गये हैं । जो कुल मिलाकर अभ्रक के १६ भेद होते हैं ।

१. मण्डूक	—	श्वेत	—	पीत	—	रक्त	—	कृष्ण
२. नाग	—	,,		,,		,,		,,
३. पिनाक	—	,,		,,		,,		,,
४. वज्र	—	,,		,,		,,		,,

यहाँ पर विशदः का अर्थ श्वेतवर्णः किया गया है ।

लक्षण—१. मण्डूकाभ्रक—प्रज्वलित अग्नि से युक्त अँगीठी (लोहे की सिगड़ी) पर प्रतप्त करने पर जो अभ्रक मेंढक जैसा उछल कर चूल्हे से नीचे आ गिरे उसे मण्डूकाभ्रक कहते हैं ।

२. **नागाभ्रक**—प्रज्वलित अग्नि से युक्त अँगीठी पर प्रतप्त करने पर जो अभ्रक सर्प के जैसा फुत्कार करे उसे नागाभ्रक कहते है ।

३. **पिनाकाभ्रक**—प्रज्ज्वलित अग्नि से युक्त अँगीठी पर प्रतप्त करने पर जो अभ्रक पिनाक छूटने (धनुष छूटने) जैसा हन्नन्नन्-हन्नन्नन्''''शब्द करता हुआ अपने पत्र को त्याग दे अर्थात् पत्र को अलग-अलग कर दे तो उसे विद्वान् लोग पिनाकाभ्रक कहते हैं ।

आचार्य कहते हैं कि मण्डूक–नाग–पिनाक और वज्राभ्रक में पहले जो तीन (मण्डूक–नाग–पिनाकाभ्रक) कहे गये हैं, वे ग्राह्य नहीं हैं अर्थात् औषधोपयोग नहीं हैं । क्योंकि वे तीनों सेवन करने से दोषोत्पादक (रोगोत्पादक) होने के कारण त्याज्य अर्थात् असत् हैं । अतः पूर्वोक्त (मण्डूक–नाग–पिनाक) के अतिरिक्त वज्राभ्रक जो निर्विकारक हैं, पूर्वोक्त दोषों से रहित हैं उसे औषध के लिए ग्रहण करें ।

४. **वज्राभ्रक**—प्रज्ज्वलित अग्नि से युक्त अँगीठी पर वज्राभ्रक को धमन करने से उससे पूर्वोक्त मण्डूक–नाग–पिनाक जैसा तथा अन्य किसी प्रकार की कोई विकृति नहीं होती है । साथ ही वज्राभ्रक कृष्णवर्ण का स्निग्ध, काजल जैसा, भारी तथा नाखून से उसके पत्र आसानी से हटाये जा सकते हैं और स्वच्छ होता है । अभ्रक में यह परिवर्तन उनकी जलयुक्त त्रिषम सिराओं के कारण होता है ।

विमर्श—बिहार के कोडरमा खान अभ्रक के लिए विश्व प्रसिद्ध है । इसके

अतिरिक्त मद्रास–राजस्थान आदि क्षेत्रों में भी अभ्रक प्राप्त होता है। यह खनिज यथावत् खानों से निकाला जाता है। रासायनिक दृष्टि से अभ्रक के कई प्रकार पाये जाते हैं।

1. श्वेत—मस्कोबाइट–[Muscovite] $H_{२} K Al_{३} (SiO_{४})_{३}$
2. श्वेत—पैरागोनाइट–[Paragonite] $H_{२} Na Al_{3} (SiO_{४})_{3}$
3. पीत—लेपिडोनाइट [Lepidonite] $K Li [Al (OHF)_{२}] Al (SiO_{४})_{३}$
4. रक्त—फ्लोगोपाइट–[Phlogopite] $[HK (MgF)]_{3} Mg_{३} Al (SiO_{४})_{३}$
5. कृष्ण—बायोटाइट–[Biotite] $(H,K)_{२} (MgFe)_{२} (AlFe)_{२} (SiO_{४})_{३}$

इसके अतिरिक्त—

तत्वों को दृष्टि में रखते हुए आधुनिक वैज्ञानिकों ने अभ्रक के दो भेद किये हैं।

१. अल्कली माइका (Alkali Mica) श्वेताभ्र
२. फैरोमैग्नेसियम माइका (Faromagnesium Mica) कृष्णाभ्र

१. अल्कली माइका में सोडियम और पोटैशियम आदि क्षार स्वाभाविक रूप में रहते हैं। अतः इस अभ्रक का रंग श्वेत वर्ण का होता है।

२. फैरोमैग्नेसियम माइका में लोहा और मैग्नेसियम ये दो तत्त्व निश्चित रूप में रहते हैं। अतः इसका रंग कृष्ण वर्ण का होता है।

अन्य आचार्यों ने भी अभ्रक के भेद इसी प्रकार बताये हैं किन्तु उनके क्रम में कुछ अन्तर है। यथाह–सोमदेव

पिनाकनागमण्डूकवज्रमित्यभ्रकं मतम्।
श्वेतादिवर्णभेदेन प्रत्येकं तच्चतुर्विधम्॥
(रसेन्द्रचूड़ामणि १०।४ रसरत्नसमु. २।९)

इन चारों अभ्रकों के गुण एवं दोषों के वर्णन भी आचार्यों ने श्री विन्दु के जैसा ही बताया है। यथाऽऽहतु--सोमदेववाग्भटौ—

पिनाक—

पिनाकं पावकोत्तप्तं विमुञ्चति दलोच्चयम्।
तत्सेवितं मलं बद्ध्वा मारयत्येव मानवम्॥ ५॥

नाग—

नागाभ्रं नागवत्कुर्यात् ध्वनिं पावकसंस्थितम्।
तद्भुक्तं कुरुते कुष्ठं मण्डलाख्यं न संशयः॥ ६॥

मण्डूक—

उत्प्लुत्योत्प्लुत्यमण्डूकं ध्मातं पतति चाभ्रकम्।
तत्कुर्यादश्मरीरोगमसाध्यं शस्त्रतोऽन्यथा॥ ७॥

वज्र—

वज्राभ्रं वह्निसन्तप्तं निर्मुक्ताशेषवैकृतम्।
देहलोहकरं तत्तु सर्वरोगहरं परम्॥
(रसेन्द्रचूडामणि १४।८ रसरत्नसमु. २)

चतुर्विध वर्णात्मक अभ्रक की श्रेष्ठता बताते हुए आचार्य सोमदेव ने कहा है कि—

श्वेतं रक्तं च पीतं च कृष्णमेव चतुर्विधम्।
श्वेतं श्वेतक्रियासूक्तं रक्ताद्यं पीतकर्मणि॥
चतुर्विधं वरं व्योम यद्यप्युक्तं रसायने।
तथापि कृष्णवर्णाभं कोटिकोटिगुणाधिकम्॥
(रसेन्द्रचूडामणि १०।९)

श्रेष्ठ अभ्रक (कृष्णवज्राभ्रक) की परीक्षा आचार्य ने इन शब्दों में की है।—

स्निग्धं पृथुदलं वह्निसहं स्याद्भारतोऽधिकम्।
सुखनिर्मोच्यपत्रं च तदभ्रं शस्त्रमीरितम्॥
(रसेन्द्रचूडामणि १०)

अभ्रक का शोधन

....प्रतप्तमनले निर्वापितं सप्तधा॥७०॥
गोदुग्धत्रिफलाऽऽरनालसुरभीमूत्रे यथास्वं शुचि

कृष्णवज्राभ्रक को अग्नि (खदिराग्नि) में प्रतप्त कर गोदूध, त्रिफलाक्वाथ, काञ्जी गोमूत्र (इनमें से कोई एक में या) प्रत्येक द्रव पदार्थ में सात-सात बार बुझाने से (अभ्रक) शुद्ध हो जाता है।

विमर्श—आचार्य श्री ने उपर्युक्त इन चारों द्रवों में प्रतप्त अभ्रक को सात-सात बार निर्वापित करने को कहा है। किन्तु अन्य आचार्य श्री सोमदेव, श्री वाग्भट, माधव आदि में एक ही द्रव में निर्वापित करने को बताया है।

यथा— प्रतप्तं सप्तवाराणि निक्षिप्तं काञ्जिकेऽभ्रकम्।
निर्दोषं जायते नूनं निक्षिप्तं वाऽपि गोजले॥
त्रिफलाक्वथिते वाऽपि गवां दुग्धे विशेषतः।
(रसेन्द्र चूडामणि/रसरत्नसमु०)

अपि च—

वज्राभ्रं वह्निसन्तप्तं निक्षिप्तं सप्तसप्तधा ॥ ११० ॥
गोदुग्धे त्रिफलाक्वाथे काञ्जिके सुरभीजले ।
मलतः शुद्धिमायाति प्रक्षिप्तं वा त्रिधा त्रिधा ॥ (आयु० प्र० २।११९)

अपि च—

वज्राभ्रकं धमेद्वह्नौ ततः क्षीरे विनिक्षिपेत् ।
सप्तधा भिन्नपत्रं तत्तण्डुलीयाम्लयोर्द्रवैः ॥
भावयेदष्टयामं तदेवं शुध्यति चाभ्रकम् । (आयु० प्र० २।१०९)

धान्याभ्रकीकरण एवं अभ्रकमारण

श्लक्ष्णं व्रीहिभिरेकतः समतुलैरूर्णापटे घर्षयेत् ।
ऊर्णास्रंसितकाञ्जिकादपहृतं तत्षोडशांशेन वा
वस्त्वंशेन सुटङ्कणेन मिलितं संमर्दितं भावितम् ॥ ७१ ॥
दुग्धैरर्कभवैश्च वास्तुकरसैर्वा कासमर्दद्रवै-
र्मत्स्याक्षीसलिलैश्च गन्धवतिकाद्रावैश्च शिग्रुद्रवैः ।
चक्रीकृत्य तदर्कपत्रपिहितं पक्वं गजाह्वैः पुटै-
र्यावच्चन्द्रकमभ्रभस्म भवति प्रायः सुपीतारुणम् ॥ ७२ ॥
गाङ्गेयीवटदुग्धमूलसलिलैः पीतारुणावारिणा
तत्केचित्तु विभावयन्ति चरमे द्वित्र्येकपाकान्तरे ।
वर्णार्थं त्वथ तद्वपुर्बलकरं वृष्यं प्रमेहापहं

धान्याभ्रक—शुद्ध अभ्रक के बराबर बड़े मोटे धान लें। सर्वप्रथम शुद्ध अभ्रक को किसी धारदार शस्त्र (गड़ासी) विशेष से छोटे-छोटे टुकड़े कर लें। अर्थात् १ किलो शुद्ध अभ्रक एवं १ किलो मोटा धान दोनों को पुराना कम्बल के टुकड़े में बाँधकर काञ्जी पूर्ण पात्र में दो तीन दिनों तक फूलने के लिए छोड़ दें। पुनः तीसरे चौथे दिन उस अभ्रक की पोट्टली को हाथों या पैरों से दृढ़ मर्दन करें और उस काञ्जी पात्र में पोट्टली को डालकर हिलावें। ऐसा करने से धान की नोंक एवं धार से अभ्रक कट कर सूक्ष्म चूर्ण रूप में कम्बल की छिद्रों से निकल कर काञ्जी पात्र में आ जायगा जिसे छानकर एकत्र कर लें। ऐसा ही बार-बार करने से सम्पूर्ण अभ्रक कट कर सूक्ष्म चूर्ण रूप में हो जायगा। इसे ही "धान्याभ्रक" कहते हैं।

नोट—कम्बल के स्थान पर इन दिनों बोरा या टाट का प्रयोग करना अधिक सामयिक है। पोटली को जूता पहने पैर से मसलें या कोई लकड़ी से पीटे तो अधिक उचित होगा।

विमर्श—अभ्रक शोधनार्थ मेरी एक अनुभूत विधि है। जिसमें एक ही क्रिया में अभ्रक का शोधन एवं धान्याभ्रक दोनों कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। यथा—

एक बड़ी हाँड़ी में १ किलोग्राम कृष्ण वज्राभ्रक डालें और उसमें ४ लिटर गोमूत्र भरें और हाँड़ी को शराब सम्पुट कर तुरन्त गजपुट में पाक करें। दूसरे दिन स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर अभ्रक निकाल लें। सभी अभ्रक के टुकड़े फैलकर (खाजा मिठाई की तरह) भंगुर हो जाते हैं। हाँड़ी भी दबाव से फूट जाती है। अतः अब आप उसे इमामदस्ते में हल्का कूट कर महीन छलनी से छान लें और बाद में पानी से भरी बाल्टी में इन अभ्रक चूर्णों को डाल दें, हाथ से मसल कर कुछ देर पानी को स्थिर होने दें तत्पश्चात् महीन कपड़े पर अभ्रक और पानी को गिरा कर छान लें। इस क्रिया से मात्र शुद्ध अभ्रक के चूर्ण ही कपड़ा पर गिरेगा। छननी से छानते समय बड़े-बड़े कंकड़-पत्थर आदि अपद्रव्य तो पहले ही छन जाते हैं किन्तु कुछ अपद्रव्य जो कूटते समय चूर्ण हो जाते हैं वे सब बाल्टी की तली में ही बैठे रह जाते हैं। धान्याभ्रक में भी शुद्ध अभ्रक के चूर्ण प्राप्ति करने का उद्देश्य है और इस क्रिया में इस उद्देश्य की पूर्ति होती है और प्रपञ्च भी नहीं है। अतः इसी विधि से शोधन किया जाना अधिक लाभप्रद है।

अनेकाचार्यों ने धान्याभ्रक की इसी प्रकार की विधियों का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है। यथाह कृष्णगोपाल भटः—

पादांशशालिसंयुक्तमभ्रकं कम्बलोदरे ।
त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे तत् क्लिन्नं मर्दयेद् दृढम् ॥
कम्बलाद्गलितं श्लक्ष्णं बालुकारहितं च यत् ।
तद्धान्याभ्रमिति प्रोक्तमभ्रमारणसिद्धये ॥

(रसेन्द्रसारसंग्रह १।१५४)

यहाँ पर आचार्य ने चतुर्थांश धान लेने का निर्देश किया है किन्तु काञ्जी का कोई उल्लेख यहाँ नहीं है। यहाँ पर काञ्जी के स्थान पर जल लेना है। आचार्य वाग्भट ने धान का मान नहीं बताया है। अतः "मानेऽनुक्ते समताविधेया" के अनुसार अभ्रक एवं धान समभाग लेना चाहिये, किन्तु आचार्यश्री ने कम्बल के स्थान पर सामान्य वस्त्र का उल्लेख किया है। यथा—

चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं वस्त्रबद्धं हि काञ्जिके ।
निर्यातं मर्दनाद्वस्त्राद्धान्याभ्रमिति कथ्यते ॥ (रसरत्नसमु० २)

धान्याभ्रक का एक और विधान आचार्य शालिनाथ के शब्दों में। यथा—

अथवा बदरीक्वाथे ध्मातमभ्रं विनिक्षिपेत् ।
मर्दितं पाणिना शुष्कं धान्याभ्रादतिरिच्यते ॥

(रसमञ्जरी ३।४१)

इतना सब लिखने का मतलब धान्याभ्रक के लिये यही है कि जिस विधि से अभ्रक के सूक्ष्म चूर्ण कंकड़, बालू, पत्थर से रहित हो जायँ वही धान्याभ्रक है। धान की नोक एवं धार से अभ्रक जल्दी कटकर सूक्ष्म चूर्ण हो जाता है। अतः यह विधि निरापद एवं सभी आचार्यों द्वारा हजारों बार की परीक्षित है।

अभ्रक मारण—उपर्युक्त धान्याभ्रक को अर्थात् कम्बल से निर्गत और काञ्जी पात्र से निकाला हुआ अभ्रक के सूक्ष्म चूर्ण को लें। उस धान्याभ्रक के १६ वाँ भाग या आठवाँ भाग शुद्ध टंकण मिलावें और अर्क दुग्ध की, वास्तुकशाक स्वरस की, या कासमर्द स्वरस की और मत्स्याक्षी स्वरस की, या गन्धवती स्वरस की और शिग्रुमूल स्वरस की भावना देकर टिकिया बनावें, सुखावें तथा अनेक मिट्टी की शराब लेकर शराब में पहले अर्क पत्र फैलावें, पुनः उस पर अभ्रक की टिकिया रखें और ऊपर से अर्क पत्र से आच्छादित कर दूसरे शराब से सम्पुट कर कपड़मिट्टी करें। ऐसे सभी शराबों को शराब सम्पुट कर गजपुट में पाक करें। जब तक अभ्रक की निश्चन्द्र भस्म नहीं हो जाय जब तक उपर्युक्त क्रम से पुनः पुनः गजपुट में पाक करते रहें। प्रायः २० पुट में अभ्रक का निश्चन्द्र भस्म हो जाता है। तथा गाङ्गेयी (नागबला) वटदुग्ध या वटमूल स्वरस या प्ररोह स्वरस या हल्दी या मंजीठ क्वाथ या स्वरस की भावना देकर दो-तीन बार पुनः गजपुट में पाक करना चाहिये। ऐसा करने से अभ्रक का रक्ताभ या इष्टिकाचूर्णाभ लालवर्ण की सुन्दर भस्म बनती है।

यह अभ्रक भस्म शरीर एवं बलवर्द्धक है, वृष्य है, प्रमेहादि रोगनाशक है।

अभ्रक भस्म बनाने की भी अनेक विधियों का अन्य आचार्यों ने अपनी पुस्तकों में उल्लेख किया है। शीघ्र निश्चन्द्र अभ्रक भस्म के लिये आचार्य वाग्भट ने एक विधि का उल्लेख किया है। जिसमें ५०० ग्राम धान्याभ्रक तथा १२५ ग्राम गुड़ और यथावश्यक एरण्ड पत्र स्वरस तथा वटपत्र यथावश्यक लेना है। गुड़ और धान्याभ्रक को एक खरल में एरण्ड स्वरस की भावना से मर्दन करें, टिकिया बनावें तथा शराब में अर्ध्वाधः वटपत्र से आच्छादित कर सम्पुट करें और गजपुट में पाक करने से ३ पुट में ही अभ्रक निश्चन्द्र हो जाता है।

यथा— गन्धर्वपत्रतोयेन गुडेन सह भावितम्।
अधोर्ध्वं वटपत्राणि निश्चन्द्रं त्रिपुटैः खगम्॥ (रसरत्न समु. २।२६)

इससे भी अधिक जल्दी निश्चन्द्र अभ्रक भस्म के लिये इस विधि में अभ्रक से अष्टमांश कलमीसोरा (Potassium nitrate) मिलाकर पुट देने से ३ पुट में निश्चित ही अभ्रक भस्म निश्चन्द्र हो जाता है। यह कई बार का अनुभूत भी है।

आचार्य श्री वाग्भट ने कासमर्द स्वरस की भावना एवं गजपुट में पाक करने को कहा है। ऐसा १० बार पुनः पुनः इसी विधि से पाक करें तो अभ्रक का निश्चन्द्र भस्म हो जायगा।

यथाह— धान्याभ्रं कासमर्दस्य रसेन परिमर्दितम्।
पुटितं दशवारेण म्रियते नात्र संशयः॥ (रसरत्नसमु० २)

आनन्दकन्दकार ने अभ्रक भस्म को गुणप्रद सेवनोपयोगी बनाने के लिये अभ्रक में पाँच संस्कार करने को बताया है। १-शोधन २-धान्याभ्रक ३-मारण ४-अमृतीकरण ५-सत्त्वपातन।

यथा— संस्कारः पञ्चधा प्रोक्तो घनस्य परमेश्वरि!।
धान्याभ्रकरणं सत्त्वपातनं निर्मलक्रिया॥ १५०॥
सुमृतीकरणं चैव त्वमृतीकरणं तथा।
मारणे घनसत्त्वस्य घनपत्रस्य मारणं॥ १५१॥
(आनन्दकन्द क्रि० १)

आचार्य श्री सदानन्द ने अमृतीकरण की परिभाषा इस प्रकार की दी है।
लोहादीनां मृतानां वै शिष्टदोषापनुत्तये।
क्रियते यस्तु संस्कार अमृतीकरणं मतम्॥ (रसतरं. २।५८)

अमृतीकरणार्थ भस्म के बराबर गाय के घी को एक लोहे की छोटी कड़ाही में तब तक भर्जन करें जब तक पूरा स्नेह जल कर नष्ट न हो जाय, किन्तु अमृतीकरण से गुण में वृद्धि एवं वर्ण की हानि होती है।

तुल्यं घृतं मृताभ्रेण लोहपात्रे विपाचयेत्।
घृते जीर्णे ततश्चूर्णं सर्वकार्येषु योजयेत्॥
(आयु० प्रकाश २।१३९)

अपि—अभ्रकभस्मनस्तु पुनरमृतीकरणेन गुणवृद्धिवर्णहानिश्च भवति।
(आयुर्वेद-प्रकाश २।१३५)।

अभ्रक भस्म की परीक्षा के लिये अनेक आचार्यों ने १३–१४ पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया है। यथा—

१. निश्चन्द्र	२. अवामि	३. सूक्ष्म	४. वारितर
५. रेखापूर्ण	६. श्लक्षण	७. लाल	८. निर्धूम
९. लघु	१०. मृदु	११. दन्ताग्रेकच-कचाभावः	१२. निःस्वादु

भस्मों की दो परीक्षा अपुनर्भव और निरुत्थ मात्र धातुभस्मों के लिये ही कही गई है। उदाहरणार्थ—

निश्चन्द्रकं सुसूक्ष्मं च लोचनाञ्जनसन्निभम् ।
तदा तु मृतमित्युक्तमभ्रकं नान्यथा मृतम् ॥ १०४ ॥
मृतं निश्चन्द्रतां यातमरुणं चामृतोपमम् ।

(आयु० प्रकाश २)

अपि च—

निश्चन्द्रं चारुणं स्वच्छं सुसूक्ष्मं स्पर्शकोमलम् ।
अभ्रं मृतं विजानीयात् रसतन्त्रविचक्षणः ॥

(रसतरं० १०।५५)

अपि च—

कचकचिति न दन्ताग्रे कुर्वन्ति समानि केतकीरजसा ।
योग्यानि हि प्रयोगे रसोपरसलोहचूर्णानि ॥

(आयु० प्र० १।५५१)

अपि च—

रौक्ष्यं सौक्ष्म्यं जलप्लावः शोणवर्णसमुद्भवः ।
विचित्रगुणदीप्तिश्च जायते बहुभिः पुटैः ॥

(रसेन्द्रचूड़ामणिः १०।३६)

अभ्रक भस्म के गुण के लिए भी आचार्यों ने बहुत ही लिखा है जो आज भी प्रयोग द्वारा सिद्ध होते हैं। आचार्य सोमदेव ने कहा है कि—

गौरीतेजः परममृतं वातपित्तक्षयघ्नं
प्रज्ञोद्बोधिप्रशमितरुजं वृष्यमायुष्यमग्र्यम् ।
बल्यं स्निग्धं रुचिदमकफं दीपनं शीतवीर्यं
तत्तद्योगैः सकलगदहृद् व्योमसूतेन्द्रबन्धि ॥

(रसेन्द्रचूडामणिः १०।२)

अपि च—यशोधरः—

मृतं वज्राभ्रकं सम्यक् सेवनीयं सदा बुधैः ।
बलीपलितनाशाय दृढतायै शरीरिणाम् ॥ २७ ॥
सर्वव्याधिहरं त्रिदोषशमनं बह्नेश्च संदीपनं
वीर्यस्तम्भविवृद्धिकृत्परमिदं कृच्छ्रादिरोगापहम् ।
भूतोन्मादनिवारणं स्मृतिकरं शोकामयध्वंसकं
सद्यः प्राणविवर्धनं ज्वरहरं सेव्यं सदा चाभ्रकम् ॥

(रसप्रकाश० ५।२८)

अपि च—

रोगान् हन्ति द्रढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते
तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव ।
दीर्घायुष्यान्जनयति सुतान् विक्रमैः सिंहतुल्यान्
मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमानं मृताभ्रम् ॥

(आयु० प्र० २।१०२)

अपि च—

सर्वरोगहरं व्योम जायते योगवाहकम् ।
कामिनीमददर्पघ्नं शस्तं पुंस्त्वोपघातिनाम् ॥
वृष्यमायुष्करं शुक्रवृद्धिसन्तानकारकम् ॥

(रसेन्द्रचिन्ता० ४।२९)

अशुद्ध अभ्रक भस्म सेवन से निम्नलिखित रोग होते हैं।

पीडां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदं च शोथम् ।
हृत्पार्श्वपीडां च करोत्यशुद्धमभ्रं हि तद्वद्गुरु वह्निहृत्स्यात् ॥

(आयु० प्रकाश २।१०३)

सचन्द्र अभ्रक भस्म सेवन से हानि—

यथा विषं यथा वज्रं शस्त्राग्निः प्राणहा भवेत् ।
भक्षितं चन्द्रिकायुक्तमभ्रकं तादृशं गुणैः ॥

(रसप्रकाशसुधा० ५।१५)

शिलाजतु के भेद एवं लक्षण

BLACK BITUMEN

स्वातन्त्र्यात्तु शिलाजतु द्विरचलोद्भूतं तथोषोद्भवम् ॥ ७३ ॥
तत्राद्यं शितिकान्ति काञ्चनघनश्लक्ष्णं जले शैवल-
च्छायं स्यादनले तु लिङ्गमिव यद्गोमूत्रगन्धीरितम् ।

स्वतन्त्ररूप से शिलाजतु दो प्रकार का होता है। १. अचलोद्भूत् अर्थात् पर्वत-स्राव या गिरिजत्य और दूसरा २. उषोद्भव-उषा=क्षारमृत्तिका को कहते हैं। इनमें से पहला अर्थात् पर्वतजन्य शिलाजतु काला होता है, शिति=कृष्णवाचक है। घन होता है, श्लक्ष्ण होता है। इसे जल में डालने से शैवाल के तरह केशाकृति होकर जल में घुल जाता है और आग में डालने पर फूलकर लिङ्गाकृति हो जाता है तथा यह शिलाजतु गोमूत्रगन्धी होता है।

आचार्यों ने शिलाजतु के दो भेद, चार भेद और छः भेद माना है। आचार्य सुश्रुत ने शिलाजतु के छः भेद माना है। स्वर्ण-रजत-ताम्र-लोह-नाग-वङ्ग खनिजों

से युक्त पर्वत जब प्रखर सूर्य की किरणों से तप्त होते हैं तो उन पर्वतों से छः विशेष प्रकार के स्राव होते हैं। जिसे शिलाजतु कहा जाता है। महर्षि चरक ने मात्र स्वर्ण-रजत-ताम्र एवं लोहज पर्वतों द्वारा प्रतप्त होकर चार प्रकार की शिलाजतु स्राव का उल्लेख किया है। किन्तु संग्रहकाल में दो प्रकार के ही शिलाजतु का उल्लेख हुआ है।

१. गोमूत्रगन्धी शिलाजतु (पर्वतज) २. कर्पूरगन्धी शिलाजतु (क्षारमृत्तिकोद्भव)

यथाह—
हेमाद्याः सूर्यसन्तप्ताः स्रवन्ति गिरिधातवः।
जत्वाभं मृदुमृत्स्नाच्छं यन्मलं तच्छिलाजतु ॥ २० ॥
हेम्नश्च रजतात्ताम्राद्वरं कृष्णायसादपि। (च०चि० १।३।१७)

अपि च—
मासे शुक्रे शुचौ चैव शैलाः सूर्यांशुतापिताः।
जतुप्रकाशं स्वरसं शिलाभ्यः प्रस्रवन्ति हि॥ ४॥
शिलाजत्विति विख्यातं सर्वव्याधिविनाशनम्।
त्रप्वादीनां तु लोहानां षण्णामन्यतमान्वयम् ॥ ५ ॥
गोमूत्रगन्धि यच्चापि तत्प्रधानं प्रचक्षते॥ ९ ॥
(सुश्रुत चि० १३)
गोमूत्रगन्धयः सर्वे सर्वकर्मसु यौगिका ॥
(चरक चि० १।३।२४)

अपि च—
ग्रीष्मे तीव्रार्कतप्तेभ्यः पादेभ्यो हिमभूभृतः।
स्वर्णरूप्यार्कगर्भेभ्यः शिलाधातुर्विनिःसरेत् ॥ ९६ ॥
शिलाधातुर्द्विधा प्रोक्तो गोमूत्राद्यो रसायनः।
कर्पूरपूर्वकश्चान्यस्तत्राद्यो द्विविधः पुनः ॥ ९५ ॥
ससत्त्वश्चैव निःसत्त्वस्तयोः पूर्वो गुणाधिकः ॥
(रसेन्द्रचूडामणिः १०)

शुद्ध शिलाजतु की परीक्षा के लिए आचार्यों ने कहा भी है कि—
वह्नौ क्षिप्तं भवेद्यत्तल्लिङ्गाकारमधूमकम्।
सलिलेऽप्यविलीनं च तच्छुद्धं हि शिलाजतु ॥ (रसेन्द्रचूडामणिः)

अपि च—
तृणाग्रेणाम्भसि क्षिप्तमधो गलति तन्तुवत्।
गोमूत्रगन्धिमलिनं शुद्धं ज्ञेयं शिलाजतु ॥ (रसरत्नमाला)

अपि च—
अग्नौ यज्जायते क्षिप्तं लिङ्गाकारमधूमकम्।
उदके च विलीयेत तच्छुद्धं च विशिष्यते ॥ (रसप्रकाशसुधा०)

शिलाजतु का शोधन

दुग्धेन त्रिफलाजलेन सुरभिमूत्रेण तप्तेन त—
द्धौतं शुध्यति वाऽऽयसे पुरजलैर्द्वित्रिक्षणैः पाचितम् ॥ ७४ ॥

गर्म गोदुग्ध से एवं त्रिफलाक्वाथ से और गर्म गोमूत्र से प्रक्षालन करने से शिलाजतु शुद्ध हो जाता है। अथवा लोह पात्र में शिलाजतु और गुग्गुल मिलाकर जल के साथ २–३ घण्टे तक पकाने के बाद छानकर सुखा लेने से शिलाजतु शुद्ध हो जाता है।

विमर्श—आजकल बाजार में शिलाजतु बहुत ही कृत्रिम एवं बनावटी मिलता है। शिलाजतु पत्थर भी कृत्रिम आता है। उसी से शुद्ध शिलाजतु प्राप्त किया जाता है। विधि इस प्रकार है।

उदाहरणार्थ—शिलाजतु पत्थर ५ किलो, त्रिफला यवकुट ५ किलो, क्वाथार्थ जल ५० किलो लें। इस त्रिफला को लोहे की बड़ी कड़ाही में पानी डालकर रातभर छोड़ देते हैं और दूसरे दिन क्वाथ करते हैं। जब ३० सेर जल शेष रहे तो क्वाथ छान लेते हैं। पुनः कड़ाही में ५ किलो शिलाजतु पत्थर को चूर्ण कर डाल देते हैं और गर्म क्वाथ देकर खूब चलाते हैं। थोड़ी देर आग जलाकर और गर्म करते हैं। जब पूरा शिलाजतु पानी में घुल जाता है तब दो-तीन दिनों तक जल को स्थिर होने के लिये छोड़ देते हैं। तीसरे दिन शिलाजतु और त्रिफला का मिश्रित जल को दूसरे पात्र में ढालकर ले लेते हैं। पूर्वपात्र में पुनः गर्म पानी डालकर पूरी तरह चलाकर छोड़ देते हैं, फिर ऐसे ही ऊपर का साफ जल अन्यपात्र में एकत्र कर लेते हैं। ऐसे दो-तीन बार करने से शिलाजतु का पूरा अंश अलग हो जाता है। अब अवशिष्ट शिलाजतु के कीचड़ जैसी मिट्टी आदि को फेक दें। कड़ाही साफ कर (पुनः उसी कड़ाही में) पृथक् किये हुये त्रिफला एवं शिलाजतु मिश्रित जल को वस्त्र से छान कर मन्दाग्नि पर पकाकर घन करें। यही अग्नितापी शिलाजतु है। इसे गोमूत्र में या गोदुग्ध में भी पकाया जा सकता है।

सूर्यतापी शिलाजतु

त्रिफला क्वाथ में या गोमूत्र में या गोदुग्ध में पूर्ववत् घुला हुआ शिलाजतु को प्रचण्ड सूर्य की धूप में रखने से ऊपर साढ़ी पड़ती है। रोज उसे एकत्र कर धूप में ही

सुखा लेते हैं तो उस शिलाजतु को सूर्यतापी शिलाजतु कहते हैं। यह विधि चरक–सुश्रुत–वाग्भटादि आचार्यों से सम्मत है।

शुद्ध शिलाजतु के गुण

मेदश्छेदकरं दृषद्विदलनं मूत्रामयोत्सादनं
मेहोन्माथि तदाहुरस्य भसितं स्याद्भस्म साधारणम्।

शुद्ध गोमूत्र गन्धी शिलाजतु के सेवन से मेद (मोटापा) दूर होता है, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात-नाशक है। सभी प्रकार के प्रमेहों को नाश करता है। मूत्र एवं शुक्र सम्बन्धी सभी विकार इसके सेवन से दूर हो जाते हैं। इसका भस्म साधारण भस्मों जैसा ही प्रतीत होता है।

विमर्श—अन्य आचार्यों ने शिलाजतु के गुण इस प्रकार कहे हैं। यथाह महर्षि चरकः—

न सोऽस्ति रोगो भुवि साध्यरूपः शिलाह्वयं यन्न जयेत् प्रसह्य।
तत्कालयोगैर्विविधैः प्रयुक्तः स्वस्थस्य चोर्जां विपुलां ददाति॥
(च० चि० १।३।६४)

अपि च—

न सोऽस्ति रोगो यं चापि निहन्यान्न शिलाजतु।
(सु० चि० १३।१६)

अपि च—

रसोपरससूतेन्द्ररत्नलोहेषु ये गुणाः।
वसन्ति ते शिलाधातौ जरामृत्युजिगीषया॥
(रसेन्द्रचूडामणिः १०।१०२)

अपि च—

जराव्याधिप्रशमनं देहदार्ढ्यकरं परम्।
मेधास्मृतिकरं बल्यं क्षीराशी तत्प्रयोजयेत्॥
(चरक चि० १।३।१९)

अपि च—

नूनं सज्वरपाण्डुशोफशमनं मेहाग्निमान्द्यापहं
मेदश्छेदकरं च यक्ष्मशमनं मूत्रामयोन्मूलनम्।
गुल्मप्लीहविनाशनं जठरहृच्छूलघ्नमामापहं
सर्वत्वग्गदनाशनं किमपरं देहे च लोहे हितम्॥
(रसेन्द्रचूडामणिः १०।१०१)

कर्पूरगन्धी (क्षारीय शिलाजतु)

Potassium Nitrate

वह्लघुत्तेजनमुज्ज्वलं यदपरं मूत्रामयिभ्यो हितं

यह जो दूसरे प्रकार का (जो उषोद्भव=क्षारमृत्तिकोद्भव) कर्पूरगन्धी शिलाजतु है वह उज्ज्वल (शुभ्र) है साथ ही यह शिलाजतु मूत्राघात-मूत्रकृच्छ्र-मूत्राश्मरी-मूत्रशर्करा और सभी प्रकार के प्रमेहादि मूत्ररोगों के लिये हितकर है।

विमर्श—अन्य आचार्यों ने भी कर्पूरगन्धी शिलाजतु के विषय में ऐसा ही कुछ कहा है। यथाह—आचार्य सोमदेवः—

पाण्डुरं सिकताकारं कर्पूराद्यं शिलाजतु।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेहकामलापाण्डुनाशनम्॥ १०८॥
शोधन— एलातोयेन संस्विन्नं शुष्कं शुद्धिमुपैति तत्।
नैतस्य मारणं सत्त्वपातनं विहितं बुधैः॥ १०९॥
(रसेन्द्रचूडामणिः १०)

"गन्धशब्दोऽत्र मनोहर वाचकः" इति श्री हजारीलाल सुकुलः।

चपल के भेद एवं शोधन

सम्भवतः (Bismuth)

चत्वारश्चपलाः सितासितहरिच्छोणप्रभेदैः पुनः॥ ७५॥
मोघौ शोणितशोणकज्जलनिभौ लाक्षावदाशुद्रवा-
च्छेषौ तु द्रवतश्चिरेण सुभगौ तौ शुध्यतः सप्तधा।
कर्कोटचार्द्रकजम्भकस्य सलिले संस्वेदतो वा प्लुतौ
प्राथम्याद्रसबन्धनौ तदुपरि स्यातां तु योगानुगौ॥ ७६॥

श्वेत-कृष्ण-हरित और रक्त भेद से चपल चार प्रकार का होता है। ये दोनों लाल और काला चपल लाक्षा के जैसा शीघ्र पिघलने के कारण निष्फल हैं। मोघौ=असफलौ। अर्थात् औषधोपयोगी नहीं हैं। शेष जो दो श्वेत और हरितवर्ण के चपल हैं वे देर से अग्नि में पिघलने के कारण औषधोपयोगी हैं। अतः इन दोनों की कर्कोटक (खेकसा) स्वरस, आर्द्रकस्वरस एवं जम्बीरीस्वरस में सात बार भावना देने से या इन स्वरसों से पूरित दोलायन्त्र में ७–७ घण्टे तक या सात बार स्वेदन करने से शुद्धि हो जाता है। प्लुतौ=भावितौ। इन दोनों चपलों का पहला गुण पारद बन्धन कारक है तथा तत्पश्चात् योगवाही है।

आचार्य श्री वाग्भट ने भी चपल के चार भेद बताये हैं किन्तु इनके वर्णक्रम में थोड़ा अन्तर है।

यथा— गौरः श्वेतोऽरुणः कृष्णश्चपलस्तु चतुर्विधः ।
हेमाभश्चैव ताराभो विशेषाद्रसबन्धनः ॥ १४२ ॥
शेषौ तु मध्यौ लाक्षावच्छीघ्रद्रावौ तु निष्फलौ ।
वङ्गवद्द्रवते वह्नौ चपलस्तेन कीर्तितः ॥ १४३ ॥

गुण—
चपलो लेखनः स्निग्धो देहलोहकरो मतः ।
रसराजसहायः स्यात्तिक्तोष्णमधुरो मतः ॥ १४४ ॥

लक्षण—
चपलः स्फटिकच्छायः षडस्रः स्निग्धको गुरुः ।
त्रिदोषघ्नोऽतिवृष्यश्च रसबन्धविधायकः ॥ १४५ ॥
(रसरत्नसमु० २)

अपि च—
चतुर्धा चपलः प्रोक्तः श्वेतः कृष्णोऽरुणो हरित् ।
(आयु० प्रकाश ४।१३८)

सत्त्वपातन—
विषोपविषधान्याम्लैर्मर्दितश्चपलस्ततः ।
अन्धमूषागतो ध्मातः सत्त्वं मुञ्चति कार्यकृत् ॥
(आयु० प्रकाश ४।१४०)

विमल के भेद-लक्षण एवं शोधन-मारण

(Iron Pyrite)

तापीजं द्विरुदाहरन्ति विमलामाक्षीकभेदादिह
त्रेधाऽऽद्या तु सुवर्णकांस्यरजतच्छायानुकारादमूः ।
तिस्रोऽप्यस्त्रयुताश्चतुस्त्रिफलका वृत्ताः स्वनामश्रियो
मध्योक्ता विमला तु शुद्धयति दिनं वासाजश्रृङ्गीरसे ॥ ७७ ॥
स्विन्ना जम्भरसेऽपि तालबलिना वस्वंशकेनाम्भसा
जम्भस्यैव परिप्लुता दशपुटैर्जीवेन्न योगानुगा ।

माक्षिक दो प्रकार के होते हैं, १. विमल २. माक्षिक । इनमें पहला जो विमल है वह (छाया) वर्णानुसार तीन प्रकार का होता है । १. सुवर्णविमल, २. कांस्यविमल, ३. रजतविमल । ये तीन धार ३ या ४ पहल के होते हैं, गोल भी होते हैं । अपने-अपने नाम के धातुओं की प्रभा से युक्त होते हैं । अर्थात् स्वर्णविमल पीला होता है, रजतविमल चाँदी जैसा शुभ्र होता है और कांस्यविमल काँसा के जैसा (मलिन शुभ्र) होता है । औषधि के लिये मध्य का कांस्यविमल ही उपयोगी है अतः इसे ही शोधन करना चाहिये ।

विमल का शोधन—कांस्य विमल को दोलायन्त्र या स्थालीयन्त्र में वासापत्र स्वरस, अजश्रृङ्गीस्वरस और जम्बीरीनिम्बुस्वरस में १-१ दिन तक स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है ।

विमल का मारण—शुद्ध विमल को चूर्णकर वस्त्रपूत करें, पुनः उसमें अष्टमांश शुद्ध हरताल और शुद्ध गन्धक मिलाकर जम्बीरी स्वरस की भावना देकर टिकिया बनावें, सुखाकर शराबसम्पुट करें और गजपुट में पाक करें । ऐसा पुनः पुनः १० बार गजपुट में पाक करने से विमल का लाल वर्ण की भस्म बनती है । इस भस्म को योगानुसार माक्षिक भस्म जैसा प्रयोग करें ।

विमर्श—आचार्य वाग्भट ने भी इसी प्रकार विमल के तीन भेद बताये हैं । रसार्णवकार ने भी तीन भेद कहे हैं किन्तु इनके वर्ण में अन्तर है ।

यथा—"विमलस्त्रिविधो देवि ! शुक्लः पीतश्च लोहितः ।" (रसार्णवम्)

आचार्य वाग्भट—
"विमलस्त्रिविधः प्रोक्तो हेमाद्यस्तारपूर्वकः ।
तृतीयः कांस्यविमलस्तत्तत्कान्त्या स लक्ष्यते ॥" (रसरत्नसमु०)

लक्षण भी आचार्य विन्दु जैसा ही है ।
वर्त्तुलः कोणसंयुक्तः स्निग्धश्च फलकान्वितः । (रसरत्नसमु० २)

आचार्य वाग्भट ने शोधन एवं मारण क्रम भी इसी प्रकार रखा है ।

यथा— आटरूषजले स्विन्नो विमलो विमलो भवेत् ।
जम्बीरस्वरसे स्विन्नो मेषश्रृङ्गीरसेऽथवा ॥
आयाति शुद्धिं विमलो धातवश्च यथाऽपरे ।
मारण— गन्धाश्मलकुचाम्लैश्च म्रियते दशभिः पुटैः ॥

गुण के लिए भी रसरत्नसमुच्चयकार कहते हैं ।
मरुत्पित्तहरो वृष्यो विमलोऽतिरसायनः । (रसरत्नसमु० २)

अपि च—
विमलाया गुणाः किञ्चिन्न्यूनाः कनकमाक्षिकात् ।
(आयु० प्रकाश ४।२४)

माक्षिक के भेद-लक्षण-शोधन-मारण एवं गुण

(Copper & Iron Pyrite)

माक्षीको द्विरिहादिमः कनकरुग्दुवर्णवर्णोऽपरः ।
कांस्यश्रीकमुशन्ति केचन परं सर्वेऽपि पूर्वत्विषः ॥ ७८ ॥

निष्कोणा गुरवः किरन्ति निभृतं घृष्टाः करे कालिकां
स्विन्नास्ते रुबुतैललुङ्गसलिलैर्यामेन शुध्यन्ति च ।
पक्वा वा घटिकाद्वयेन कदलीकर्कोटिकाकन्दयोः
पक्वाः कूर्मपुटैस्त्रिभिः पटुतरं लुङ्गाम्बुगन्धप्लुताः ॥ ७९ ॥
स्युर्भस्मानि जघन्यमध्यसुभगास्ते व्युत्क्रमेणोदिता ।
वृष्याः पाण्डुपटीयसो बलकरा योगोपयोगात्पुनः ॥

माक्षिक दो प्रकार का होता है। १. स्वर्णमाक्षिक, २. रौप्यमाक्षिक, (दुवर्ण=रजत) कुछ विद्वान् काँसा की आभा से युक्त माक्षिक को ३. कांस्य माक्षिक भी कहते हैं। ये तीनों अपनी-अपनी मूल धातुओं की आभा से युक्त होते हैं।

लक्षण—कोण और धार से रहित, भारी, हाथ पर घिसने से हाथों को काला कर देता है। अपने-अपने मूल धातुओं से कुछ हीनवर्ण के ये तीनों होते हैं।

शोधन—एरण्डतैल और मातुलुङ्गस्वरस के मिश्रित द्रव में दो घण्टे तक स्वेदन करने से माक्षिक शुद्ध हो जाता है। अथवा-कदलीकन्द स्वरस और कर्कोटी-कन्द स्वरस से पूरित दोला या स्वेदनीयन्त्र में दो घण्टे तक स्वेदन करने से माक्षिक शुद्ध हो जाता है।

मारण—शुद्ध माक्षिक को कूटकर वस्त्रपूत चूर्ण कर लें और उसके चतुर्थांश शुद्ध गन्धक मिलाकर मातुलुङ्गनिम्बुस्वरस की भावना देकर टिकिया बनावें, सुखाकर शराबसम्पुट कर कूर्मपुट में कम से कम तीन बार पाक करें। माक्षिक को गजपुट या वाराहपुट में पाक करना अधिक उचित है। ये माक्षिक भस्म क्रमशः कांस्य-रौप्य-सुवर्णमाक्षिक-जघन्य-मध्यम और उत्तम कहे गये हैं। अर्थात् इनमें स्वर्णमाक्षिक भस्म सर्वोत्तम है। इन तीनों की भस्में लाल या कत्थई रङ्ग की होती हैं।

गुण—वृष्य है, पाण्डुरोग नाशक है, बल्य है तथा योगों के लिये उपयोगी है।

विमर्श-अधिकतर रसाचार्यों ने माक्षिक के दो ही भेद कहे हैं, वह है १. स्वर्ण-माक्षिक एवं २. रौप्यमाक्षिक। यथाह श्री सोमदेवः—

माक्षिको द्विविधो हेममाक्षिकस्तारमाक्षिकः ।
तत्राद्यं माक्षिकं कान्यकुब्जोत्थं स्वर्णसन्निभम् ॥ १२९ ॥
तपतीतीरसम्भूतं पञ्चवर्णसुवर्णवत् ।
पाषाणबहुलः प्रोक्तस्ताराख्योऽसौ गुणाल्पकः ॥
(रसेन्द्रचूडा. १०।१३०)

पहले यह कन्नौज तथा पंजाब में पाया जाता था, किन्तु आजकल यह बिहार के सिंहभूम आदि जिलों, राजस्थान, दार्जिलिंग, मद्रास, मध्यप्रदेश एवं सिक्किम आदि क्षेत्रों में मिलता है। इसके अतिरिक्त अमेरिका-रूस-बर्मा-नेपाल चीन आदि क्षेत्रों में भी बहुतायत में मिलता है।

माक्षिक के लक्षण बताते हुए आचार्य श्री माधव ने कहा है कि—

स्वर्णाभं स्वर्णमाक्षीकं निष्कोणं गुरुतायुतम् ।
कालिमां विकरेत्तत्तु करे घृष्टं न संशयः ॥ ७ ॥
स्वर्णवर्णं गुरुस्निग्धमीषन्नीलच्छवि स्फुटम् ।
कषे कनकवद्घृष्टं तद्वरं हेममाक्षिकम् ॥ (आयु०प्रकाश ४।८)

अपि च —

माक्षिकं द्विविधं ज्ञेयं रुक्मताप्यप्रभेदतः ।
प्रथमं माक्षिकं स्वर्णं कान्यकुब्जसमुद्भवम् ॥ १२१ ॥
सुवर्णवर्णसदृशं नववर्णसमन्वितम् ।
तटे ताप्यास्तु सञ्जातं ताप्याख्यं माक्षिकं वदेत् ॥ १२२ ॥
पाषाणदलसम्मिश्रं पाण्डुरं पञ्चवर्णवत् ।
गुणेनाल्पं भवत्येतत् स्वल्पं सत्त्वं विमुञ्चति ॥ १२३ ॥
(रसप्रकाशसुधा० ५)

अशुद्धमाक्षिक को भस्म बनाकर प्रयोग करने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं ऐसा आचार्य लोगों का अभिमत है। यथा—

मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान् सकुष्ठान् ।
मालां विधत्तेऽपि च गण्डपूर्वां शुद्धयादिहीनं खलु माक्षिकं तु ॥
(आयु० प्रकाश ४।११)

अपि च—

अशोधितं चामृतमप्यशुद्धं निषेवितं माक्षिकमक्षिवाधाम् ।
मन्दानलं कुष्ठहलीमकादीन् कोष्ठानिलं वै जनयेन्नितान्तम् ॥
(रसतरं० २१।६)

शोधनार्थ एक अच्छी विधि का उल्लेख आचार्य माधव ने अपने ग्रन्थ में किया है जिसे हम लोग अपने व्यावहारिक रूप से भी उत्तम मानते हैं। यथा—

माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकं सैन्धवस्य च ।
मातुलुङ्गद्रवैर्वाथ जम्बीरस्य द्रवैःपचेत् ॥ १२ ॥
चालयेल्लोहजे पात्रे यावत्पात्रं सुलोहितं ।
भवेत्ततस्तु संशुद्धं स्वर्णमाक्षिकमत्र तु ॥ (आयु०प्रकाश ४।१३)

आचार्य वाग्भट ने स्वर्णमाक्षिक को वाराहपुट में भस्म करने के लिये बताया है। यथा—

मातुलुङ्गाम्बुगन्धाभ्यां पिष्टं मूषोदरे स्थितम्।
पञ्चक्रोडपुटैर्दग्धं म्रियते माक्षिकं खलु॥
(रसरत्नसमु० २।८४)

इसके गुणों के विषय में सभी रसाचार्यों ने बड़ी प्रशंसा की है—
यथाह श्री सोमदेवः—

माक्षीकधातुः सकलामयघ्नः प्राणो रसेन्द्रस्य परं हि वृष्यः।
दुर्मेललोहद्वयमेलकश्च गुणोत्तरः सर्वरसायनाग्र्यः॥
(रसेन्द्रचूडा० १०।१३१)

अपि च—

दुःसाध्यरोगानपि सप्तवासरैर्नैतेन तुल्योऽस्ति सुधारसोऽपि।
(रसरत्नसमु० २।९३)

अपि च—

सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम्।
चक्षुष्यं बस्तिहृत्कण्ठपाण्डुमेहविषोदरम्॥
अर्शः शोफं विषं कण्डूं त्रिदोषमपि नाशयेत्। (आयु०प्र० ४।१०)

अपि च—

जीर्णज्वरमपस्मारं मन्दानलमरोचकम्।
अनिद्रां नाशयत्याशु योगवाहि परं मतम्॥ (रसतरं० २१।२८)

अपि च—

माक्षिकं तिक्तमधुरं मेहार्शः क्षयकुष्ठनुत्।
कफपित्तहरं बल्यं योगवाहि रसायनम्॥ १४॥
ज्वरसन्निपातदारिद्र्याण्यपि यन्नामकथनमात्रेण।
नश्यन्ति योजनशते कस्तस्माल्लोहवेधकरः॥ (रसार्णवम् ७)

तुत्थ (तुतिया)
(Copper Sulphate)

तुत्थभेद-लक्षण-शोधन-सत्त्वपातन एवं भूनागसत्त्वयुक्तमुद्रिका

द्विस्तुत्थं तु मयूरखर्परभिदा तत्राद्यमाहुः शिखि-
ग्रीवाकान्ति तदम्लवर्गलुलितं स्नेहेन सिक्तं पुनः॥ ८०॥
दोलायां परिपक्वमश्वसुरभीमूत्रे दिनं शुध्यति
वण्यं वान्तिकरं विषापहरणं चक्षुष्यमेतन्मतम्।

घस्रं पूतिकरञ्जतैलनिहितं पादांशसौभाग्यकं
ध्मातं तुत्थरजोऽन्धपात्रपिहितं दीप्तं च काष्ठत्रयैः॥ ८१॥
यद्वा मानुषनीलकेशनिहितं सत्त्वं विमुञ्चेत्क्षणा-
त्ताम्रं शोणितविन्दुबन्धुरमथो भूनागसत्त्वं तथा।
एताभ्यां रविवासरे रचितया संप्लावितं मुद्रया
पीतं वारिविषद्वयं ग्रहहरं सद्यः प्रसूतिप्रदम्॥ ८२॥
तद्वत्तत्परिमृष्टतप्ततिलजस्नेहोऽमुना मन्त्रितो
मन्त्रेणाशु निहन्ति शूलमतुलं दृग्दोषभूतग्रहान्।
सद्यः स्त्रीप्रसवप्रदो निगदितः सद्यो व्रणारोपणो
लिप्तो लोचनयोर्हितो विनिहितः प्राग्भालुकिप्रोदितः॥ ८३॥

मन्त्रः—

रामवत्सोमसेनानीमुद्रिकेति तथाक्षरम्।
हिमालयोत्तरे पार्श्वे अश्वकर्णो महाद्रुमः॥
तत्र शूलं समुत्पन्नं तत्रैव विलयं गतम्॥

तुत्थ दो प्रकार के होते हैं। १. मयूरतुत्थ २. खर्परतुत्थ। इनमें से पहला मयूरतुत्थ का वर्णन मैं यहाँ पर करता हूँ। मयूरतुत्थ—मोर पक्षी की गर्दन (कण्ठ) जैसा गहरा नीला होता है।

इसका शोधन—पहले एक पत्थर के साफ खरल में मयूरतुत्थ को चूर्ण कर अम्ल वर्ग या निम्बू के स्वरस में एक दिन तक भावना और मर्दन के बाद स्नेह वर्ग या केवल तिलतैल सिञ्चन करें। पुनः अश्वमूत्र और गोमूत्र दोनों से परिपूर्ण दोलायन्त्र में एक दिन तक पाक करने से तुत्थ शुद्ध हो जाता है।

शुद्ध तुत्थ के गुण—यह शुद्ध तुत्थ व्रण नाशक है, वमन कारक है, वामकत्वात् विषनाशक है, नेत्र के लिए हितकर है।

तुत्थ का सत्त्वपातन—शुद्ध तुत्थ को एक दिन पर्यन्त करञ्ज तैल में डुबोकर रखिये पुनः तैल से पृथक् कर उस तुत्थ से चतुर्थांश टंकण डालकर अन्धमूषा मूषा में रखें और खदिरादि (खदिर-बैर) की लकड़ियों की प्रज्वलित अग्नि में सत्त्वपातन करें। अथवा मनुष्य के काले बाल तुत्थ से चतुर्थांश डालकर अन्धमूषा में धमन करने से शीघ्र ही तुत्थ अपना सत्त्व त्याग देता है।

तुत्थसत्त्व का वर्ण या लक्षण—इसका सत्त्व ताम्र होता है जो लाल टुकड़े-टुकड़े जैसा होगा। ऐसे ही भूनाग का भी सत्त्वपातन करें।

मुद्रिका-निर्माण—रविवार या सूर्यग्रहण के दिन तुत्थसत्त्व और भूनागसत्त्व दोनों को सम मात्रा में लेकर सोनार से मुद्रिका बनवावें।

भूनाग मुद्रिका के गुण—उबलते जल में इस भूनागमुद्रिका को डालकर जल पीने से स्थावर-जंगम विष नष्ट हो जाते हैं, बालकों के ग्रहबाधा नष्ट हो जाते हैं, तथा प्रसव पीड़ा से पीड़ित स्त्रियों को सद्यःप्रसव कराता है। उसी तरह उक्त भूनाग मुद्रिका को प्रतप्त तिल तैलादि में डालकर नीचे लिखे मन्त्रों को पढ़कर शरीर में मालिश करने से भी सद्यः शूल नाशक है अनेक प्रकार के दृष्टि दोष (नेत्ररोग) नाशक है, अनेक प्रकार के भूतबाधा, बालग्रह नाशक है। इसको लगाने से भी सद्यःप्रसव कारक है। सभी प्रकार के व्रणों को रोपण-शोधन करता है। आँखों पर लेप (लगाने) मात्र से नेत्र रोग नाशक है। ऐसा भालुकी नामक आचार्य ने पहले ही कहा है।

मन्त्रार्थ—"रामवत्सोमसेनानी" इस मन्त्र को मुद्रिका पर लिखवा देनी चाहिये। हिमालय के उत्तरी भाग में अश्वकर्ण नामक का बहुत बड़ा वृक्ष है। शूल (शूल-नामक रोग) वहीं पर उत्पन्न हुआ और वहीं पर समाप्त हो गया।

विमर्श—आचार्य ने तुत्थ के भेद खर्पर लिखकर बड़ा ही भ्रामक बना दिया है। यद्यपि खर्पर शब्द के अतिरिक्त इसमें भ्रमोत्पादक और कोई भी शब्द नहीं है तथापि इनके पुत्र और इस ग्रन्थ के टीकाकार श्री महादेव ने इस पर बहुत कुछ खर्पर के लिए लिखा है। अस्तु ! तुत्थ ताम्र और गन्धक का खनिज या यौगिक है तथा खर्पर Zinc Corbonate अर्थात् जस्ता और कार्बन का यौगिक खनिज है। इन दोनों के रंग-रूप-संगठन-कार्य-गुण-धर्मादि कुछ में साम्यता नहीं है तथापि एक दूसरे का भेद कहा गया है। परवर्ती अनेक अचार्यों ने ऐसा ही भ्रमात्मक भेद से रसक को तुत्थ का भेद कहा है।

रसशास्त्र के श्रेष्ठ ग्रन्थों में तुत्थ का भेद सस्यक को बताया है। चरकसंहिता में तुत्थ शब्द का अनेक बार प्रयोग आया है, तथा उसके दूसरे पर्याय में अमृतासङ्ग का वहीं पर उल्लेख हुआ है। रसार्णव, रसेन्द्रचूडामणिः, रसरत्नसमुच्चय, रसप्रकाशसुधाकर, रसहृदयतन्त्र, रसोपनिषद् आदि रसशास्त्रीय ग्रंथों के सस्यक शब्द इसी द्रव्य के लिये प्रयुक्त हुआ है। देखिये रसार्णव के अनुसार सस्यकोत्पत्ति—

कालकूटविषं पीत्वा गरुडः सोढुमक्षमः।
सुधामपि तथाऽऽवामत् भुक्त आशीविषामृते॥
स्वयं विनिर्गमे चञ्च्वोः सस्यकोऽभूत् स कालिकः॥ ३९॥
(रसार्णवम् ७)

ऐसा ही आचार्य सोमदेव भी कहते हैं। यथा—

पीत्वा हालाहलं वान्तं पीतामृतगरुत्मता॥ ७१॥
विषेणामृतयुक्तेन गिरौ च मरुताह्वये (मरकताह्वये)।
तद्वान्तं हि घनीभूतं सञ्जातं सस्यकं खलु॥ ७२॥
(रसेन्द्रचूडामणिः १०)

आचार्य श्री सोमदेव ने इसका लक्षण इस प्रकार बताया है।

यथा— "मयूरकण्ठसंच्छायं भाराढ्यमतिशस्यते"॥ (रसेन्द्रचूडामणिः १०)

सस्यक Copper Sulphate (तुत्थ) से सम्भवतः भिन्न है। ताम्र का एक प्रकार का और खनिज है जो कम मिलता है, उसका नाम Peacock ore पीकॉक ओर है संभवतः यही सस्यक है। यह मयूरकण्ठ जैसा नीला भी है। तुत्थ तो बिलकुल मयूरकण्ठ जैसा नहीं होता है। कुछ परवर्ती आचार्यों ने तो सस्यक को स्वाभाविक और तुत्थ को कृत्रिम बताया है। एक के अभाव में दूसरे का प्रयोग करने को कहा है—यथाह— श्री भूदेव मुकर्जी—

सस्यकं हि स्वभावजं तुत्थकं कृत्रिमं मतम्।
एकाऽभावे परं ग्राह्यं नात्र कार्या विचारणा॥ (रसजलनिधिः)

अन्य आचार्यों ने तुत्थ या सस्यक का मारण भी बताया है। यथा—

लकुचद्रावगन्धाश्मटङ्कणेन समन्वितम्।
निरुध्य मूषिकामध्ये म्रियते कौक्कुटैः पुटैः॥ ७६॥
(रसेन्द्रचूडामणिः १०)

आचार्य श्री सोमदेवादि विद्वानों ने गुण के कारण बताते हुए कहते हैं कि—

विषं द्रव्ययुतं तद्वद् द्रव्याधिकगुणं भवेत्।
हलाहलं सुधायुक्तं सुधाधिकगुणं भवेत्॥ ७३॥
(रसेन्द्रचूडामणिः १०)

निर्माण—आजकल तुत्थ को प्रयोगशाला में ही अधिकतर बनाया जाता है। ताम्र के छीजन पर गन्धकाम्ल डालकर आग पर पकाकर वाष्पित करते हैं तथा उसके मणिभ को प्राप्त करते हैं। इसके गुण को बताते हुये आचार्य सोमदेव ने कहा है कि—

निःशेषदोषविषहृद्गुदशूलशूलदुष्टाम्लपित्तकविबन्धहरं हितञ्च।
रासायनं वमनरेककरं गरघ्नं श्वित्रापहं गदित्रमत्र मयूरतुत्थम्॥
(रसेन्द्रचूडामणिः १०।७४)

हमारे पूज्यपाद गुरुजी स्व० पं० हजारीलाल सुकुल जी पहले भूनागमुद्रिका अपने गुरु पू० पं० वृजबिहारी चतुर्वेदी जी (पटना) के यहाँ बनाया करते थे तथा उसकी बिक्री भी होती थी, आज से ६० वर्ष पहले। अतः इस भूनागमुद्रिका का गुण एवं उपयोग सत्य है ऐसा हमारे गुरुजी कहते थे।

उपरसाः

गन्धस्तालमनःशिले उपरसा,…………।

गन्धक, हरिताल और मनःशिला ये तीन द्रव्य आचार्य विन्दु के अनुसार उपरस वर्ग में हैं।

अनेक आचार्यों ने आठ प्रकार के द्रव्यों को उपरस वर्ग की श्रेणी में रखा है। किन्तु आचार्य श्री ने तीन ही पढ़ा है। यथाह—रसार्णवकारः—

गन्धकस्तालकःशिला सौराष्ट्री खग गैरिकम्।
राजावर्तश्च कङ्कुष्ठं अष्टौ उपरसाः स्मृता ॥
(रसार्णवम् ७।५६)

अपि च—

गन्धकगैरिकशिलालक्षितिखेचरमञ्जनं च कङ्कुष्ठम्।
उपरससंज्ञकमिदं …. … …. … … …. … … …॥
(रसहृदयतंत्रम्)

अपि च—

कासीसमञ्जनं काक्षी हरितालं मनःशिला।
गैरिकं गन्धपाषाणं सप्तैवोपरसाः स्मृताः॥
(रसोपनिषत् ४।५)

अपि च—

गन्धाश्म-ताल-तुवरी-कुनटी-सुवीर-कङ्कुष्ठ-खेचर-गैरिक-नामधेयाः।
उक्ता बुधैरुपरसाश्च रसायनास्ते तैर्बद्धपारदवरो न रसायनः स्यात्॥
(रसेन्द्रचूडामणिः ११।१)

अपि च—

गन्धाश्मगैरिकासीसकांक्षीतालशिलाञ्जनम्।
कङ्कुष्ठं चेत्युपरसा अष्टौ पारदकर्मणि॥ (रसरत्नसमु० ३।१)

गन्धक भेद एवं लक्षण
Sulphur

… … … … … …, गन्धस्तु तत्र त्रिधा
पीतारक्तसितप्रभाभिरधमस्तत्रान्तिमो, मध्यमः।

आद्यो, मध्यभवो वरः सितनिभं केचित्खटीमूचिरे
पीतो ह्यामलकच्छविर्लवणको नाम्ना दृषद्गन्धकः॥ ८४॥
एवं त्रिस्त्विह पूजितः प्रथमकः,…. …. …. … ….

यहाँ पर गन्धक तीन प्रकार का कहा गया है। १. पीत २. रक्त एवं ३. श्वेत। इन तीनों में अन्तिम अर्थात् श्वेत गन्धक निकृष्ट है। खड़िया मिट्टी को कुछ लोग श्वेत गन्धक कहते हैं। प्रारम्भ का पीत गन्धक मध्यम है तथा बीच का रक्तगन्धक श्रेष्ठ है। किन्तु दुर्लभ है। पीला गन्धक आमला के प्रभा जैसा होता है। अतः इसे आमलासार गन्धक कहा जाता है। पीत गन्धक का एक और प्रकार है उसे पाषाण गन्धक कहते हैं जो लवणक के नाम से भी जाना जाता है। इस तरह तीनों गन्धकों में पहला पीला गन्धक औषधि प्रयोगार्थ रसवाद में पूजित (श्रेष्ठ) है।

विमर्श—आचार्य सोमदेव ने गन्धक के चार भेद बताये हैं। जिसमें पीत रसवादार्थ, रक्त धातुवादार्थ, कृष्ण देहवादार्थ श्रेष्ठ है। श्वेत गन्धक प्रायः लोहमारण एवं घर लिपने या रंगने के लिये उपयोगी है।

१. श्वेत	२. पीत	३. रक्त	४. कृष्ण
खड़ियामिट्टी अधम है। यह घर लेपनार्थ, लोहमारणार्थ उपयोगी है।	आमलासार मध्यम रसवादार्थ उपयोगी है।	शुकचञ्चुनिभः श्रेष्ठ धातुवादार्थ उपयोगी है।	श्रेष्ठतम दुर्लभ जरामृत्युहर रसायनार्थ उपयोगी है।

चतुर्धा गन्धको ज्ञेयो वर्णैः श्वेतादिभिः खलु।
श्वेतोऽत्र खटिका प्रोक्तो लेपने लोहमारणे॥ २॥
तथा चामलसारस्यादयो भवेत्पीतवर्णवान्।
शुकपिच्छः स एव स्याच्छ्रेष्ठो रसरसायने॥ ३॥
रक्तश्च शुकतुण्डाख्यो धातुवादविधौ वरः।
दुर्लभः कृष्णवर्णश्च स जरामृत्युनाशनः॥ ४॥
(रसेन्द्रचूडामणिः ११)

अपि च—

स चापि त्रिविधो देवि ! शुकचञ्चुनिभो वरः।
मध्यमः पीतवर्णस्याच्छुक्लवर्णोऽधमः प्रिये॥ (रसार्णवम् ७।६७)

अपि च—

गन्धकस्तु चतुर्भेदः कथितः पूर्वसूरिभिः॥ २९॥

श्वेतः पीतस्तथा रक्तः कृष्णश्चेति चतुर्विधः ।
श्वेतस्तु खटिकाकारो लेपनाल्लोहमारणम् ॥ ३० ॥
...... जायते ... नात्र सन्देहश्चानुभूतं मया खलु ।
पीतवर्णो भवेद्यस्तु स चोक्तोऽमलसारकः ॥ ३१ ॥
रसे रसायने श्रेष्ठः शुकपिच्छः स कथ्यते ।
धातूनां रञ्जनं कुर्याद्रसबन्धं करोत्ययम् ॥ ३२ ॥
यः कृष्णवर्णः स तु दुर्लभः स्यान्नाशं करोतीह जरापमृत्य्वोः ।
संसेवनाद्व्रत्रसमं शरीरं भवेत्सुकान्तं हि निरामयं च ॥ ३३ ॥

अपि च— (रसप्रकाशसुधाकरः ६)

चतुर्धा गन्धको प्रोक्तो रक्तपीतसितोऽसितः ।
रक्तो हेमक्रियासूक्तः शुकतुण्डनिभोवरः ॥ १२ ॥
पीतश्चामलसाराख्यः श्रेष्ठो रसरसायने ।
श्वेतोऽत्र खटिका प्रोक्ता लेपने लोहमारणे ॥
दुलर्भः कृष्णवर्णश्च स जरामृत्युनाशनः ।

(आयु० प्रकाश २।१३)

गन्धक शोधन

... ... सर्वोऽपि शुद्धस्त्वसौ
जीर्णोर्णावृतदुग्धभाण्डवदने न्यस्तः सुपिष्टो बलिः ।
कूर्माभाऽव्रणखर्परेण सुमृदा सन्धौ निरुद्धः शनै-
रूर्ध्वं प्रज्वलितानलः कुनिहितः प्राग्भाण्डदुग्धे धृतः ॥ ८५ ॥

एक चौड़े मुख के धातु-पात्र (हाँडी जैसा, बाल्टी जैसा, भगौना जैसा) लें, उस पात्र में ३ भाग ठण्डा गो दूध भरें, उस पात्र के मुख पर पुराना ऊन का मोटा वस्त्र या कपास के वस्त्र से बाँध दें। अब उस वस्त्र पर आमलासार गन्धक का महीन चूर्ण फैला दें तथा एक घट खर्पर या बिना कड़े की कड़ाही (लोहे-पीतल या अल्यूमिनियम या मिट्टी की कड़ाही) जैसे पात्र से ढक दें, जिसमें छिद्र नहीं हों। इसके बाद उस घटखर्पर या कड़ाही जैसे पात्र पर करीब १०-१२ वन्योपल या कण्डों को स्थिर कर उसमें अग्नि प्रज्वलित करें। प्रज्वलित अग्नि से गन्धक पिघलकर दुग्ध में जा मिलेगा। अग्नि शीतल होने पर राख आदि को सावधानी से हटाकर दुग्ध पात्र से शुद्ध गन्धक को निकाल लें। पुनः उस गन्धक को गर्म पानी से ठीक से धोकर सुखा लें तथा बाद में सूक्ष्म चूर्णकर शीशी में रख लें। इस विधि को ३ या ७ बार करनी चाहिये।

विमर्श— आचार्य श्री ने गन्धक शोधन की जो विधि कही है, क्रियात्मक रूप से थोड़ा सा परिवर्तन उसमें करना होगा, तभी इस विधि में सफलता मिल पायेगी।

इसी तरह का शोधन आचार्य सोमदेव ने भी बताया है।

यथा— स्थाल्यां दुग्धं विनिक्षिप्य मुखेवस्त्रं निबध्य च ॥ १२ ॥
गन्धकं तत्र निक्षिप्य चूर्णितं सिकताकृतिम् ।
छादयेत् पृथुदीर्घेण खर्परेणैवगन्धकम् ॥ १३ ॥
ज्वालयेत् खर्परस्योर्ध्वं वनच्छाणैस्तथोपलैः ।
दुग्धे निपतितो गन्धो गलित्वा परिशुध्यति ॥ १४ ॥

(रसेन्द्रचूडामणिः ११)

अशुद्ध गन्धक में प्रायः दो प्रकार के दोष रहते हैं।

१—कङ्कड़पत्थर के चूर्ण, २—अमूर्तस्वरूप विष

युक्ति पूर्वक शोधन करने से दोनों दोष नष्ट हो जाते हैं। कुछ इसमें ऐसे पार्थिव विष रहते हैं जो घृत में पिघलकर नष्ट हो जाते हैं और कुछ ऐसे विष रहते हैं जो दूध में निर्वापित होकर नष्ट हो जाते हैं या दूध में मिल जाते हैं।

यथा— गन्धे मलद्वयं दृष्टं शिलाचूर्णं विषं तथा ।
शोधितो व्यस्ततो यत्नादभिज्ञेन यथा विधि ॥ (र. ज. नि.)

देखिये गन्धक का दूसरा शोधन प्रकार—

पयः स्विन्नो घटीमात्रं वारिधातो हि गन्धकः ।

अपि च—

गव्याज्यैर्विद्रुतो वस्त्रगालितः शुद्धिमृच्छति ।
एवं संशोधितः सोऽयं पाषाणानम्बरे त्यजेत् ॥ ९ ॥
घृते विषं तुषाकारं स्वयं पिण्डत्वमेति च ।
इति शुद्धो हि गन्धाश्मा नागजां विकृतिं त्यजेत् ॥ १० ॥

(रसेन्द्रचूडामणिः ११)

आचार्य ने कहा है कि इस तरह शोधन करने से कंकड़-पत्थर कपड़े पर ही रहकर गन्धक से पृथक् हो जाते हैं और घृत में विष भी मिलकर नष्ट हो जाता है।

अशुद्ध गन्धक सेवन करने से अनेक प्रकार की भयंकर बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं अतः शोधनोपरान्त ही हमेशा उपयोग करें। यथाह श्री माधवः—

अशुद्धगन्धः कुरुते च कुष्ठं तापं भ्रमं पित्तरुजं तथैव ।
रूपं सुखं वीर्यबलं निहन्ति तस्माद्विशुद्धो विनियोजनीयः ॥

(आयु० प्रकाश २।१८)

प्रकारान्तर से गन्धक शोधन

प्राग्भाण्डे निहितोऽथवा शुचिरयोदर्व्या शनैर्द्रावितः

एक भगौना में २ लीटर गोदूध (ठण्ढा) रखिये, उसके मुख पर पतला नया वस्त्र बाधें। अब एक लोहे की बड़ी कलछुल या छोटी कड़ाही में १०० ग्राम गाय का घी या देशी घी डालकर गर्म करिये, गर्म होने पर ५०० ग्राम आमलासार गन्धक का चूर्ण डालकर छोटी चम्मच से चलाते हुए द्रवित करिये, जब गन्धक पिघल जाय तो दुग्धपात्र के कपड़ा पर डालकर चम्मच से चलाइये। सभी द्रवित गन्धक दूध में जाकर बुन्दिया मिठाई जैसा गोल टुकड़ा-टुकड़ा हो जायगा, जिसे निकालकर गर्म पानी में डालकर मसलकर धो लीजिये और सुखाकर चूर्णकर शीशी में रख दीजिये।

दूध के स्थान पर भृङ्गराज स्वरस में भी इसी विधि से गन्धक का शोधन किया जाता है। यथाह–रसवाग्भटः—

गन्धको द्रावितो भृङ्गरसे क्षिप्तो विशुध्यति।
तद्रसः सप्तधा स्विन्नो गन्धकः परिशुध्यति ॥ २३ ॥
(रसरत्नसमु० ३)

अपि च—

क्षिप्तं भृङ्गस्य निर्यासे क्षालितो गन्धको हितः ॥
(रसार्णवम् ७)

रसशास्त्रकारों ने गन्धक को पार्वती का रज माना है। उनके रज से गन्धक की उत्पत्ति बतायी गयी है। यथोक्तं रसवाग्भटेन—"देव्या रजो भवेद्गन्धः"

गन्धक में विष इसलिए मिल गया कि अत्यन्त बलशाली होने के लिये सर्वप्रथम राजा बली ने गन्धक खाया था और बाद में समुद्रमन्थनार्थ राक्षसों के साथ मिलकर वासुकी नाग के मुख को पकड़कर मन्दराचल पर्वत को खींचा था, वासुकी के विषाक्त श्वासोच्छ्वास से बली के शरीरस्थ वसा के साथ मिला गन्धक पसीना के रूप में समुद्र में तैरने लगा और अपने तीव्र गन्धों से देवताओं और दानवों को हर्षित किया। अतः तीव्र गन्धत्वेन गन्धक नाम इसका पड़ा जो वासुकी नाग के विषों से युक्त होकर विषाक्त हो गया। अतः शोधन के बिना इसका आभ्यन्तर प्रयोग वर्ज्य है।

शुद्ध गन्धक के गुण

कण्डूकुष्ठविसर्पणप्रदरुग्रक्तातिसाराञ्जयेत्।

यह शुद्ध गन्धक खाने से कण्डू-कुष्ठादि चर्मरोग, विसर्प, प्रदररोग और रक्तातिसारादि रोगों को नाश करता है। ऐसे अनेक आचार्यों ने शुद्ध गन्धक के अत्यधिक गुणों का वर्णन किया है। यथाह श्री सोमदेवः—

गन्धाश्मातिरसायनः सुमधुरः पाके कटूष्णान्वितः।
कण्डूकुष्ठविसर्पदद्रुदमनो दीप्तानलः पाचनः ॥
आमोन्मोचनशोषणो विषहरः सूतेन्द्रवीर्यप्रदो।
गौरीपुष्पभवस्तथा क्रिमिहरः सत्त्वात्मकः सूतजित् ॥
(रसेन्द्रचूडामणिः ११)

अपि च—

शुद्धगन्धो हरेद्रोगान् कुष्ठमृत्युजरादिकान्।
अग्निकारी महानुष्णो वीर्यवृद्धिं करोति च ॥ (रसरत्नसमु० ३)

अपि च—

विपाके मधुरो गन्धपाषाणस्तु रसायनः।
विसर्पकण्डुकुष्ठानां शमनो दीपनस्तथा ॥ ३७ ॥
आमाजीर्णप्रशमनो विषहा रसशोषणः।
सूतस्य वीर्यदः साक्षात्पार्वतीपुष्पसम्भवः ॥ ३८ ॥
क्रिमिरोगहरः सम्यक् सूतं मूर्च्छयति ध्रुवम्।
(रसप्रकाशसुधाकरः ६)

अपि च—

गन्धकस्य गुणान् वक्तुं शक्तः कः शम्भुना विना।
(रसप्रकाशसुधा० ६।४६)

अपि च—

गन्धकात्परतो नास्ति रसेषूपरसेषु च। (रसार्णवम् ११।८२)

द्रुति रूप में भी गन्धक-सेवन का विधान है और गन्धकतैल रूप में भी गन्धक-तैल का केवल बाह्य प्रयोग कण्डूकुष्ठादि चर्मरोगों में है तथा द्रुति का प्रयोग आभ्यन्तर होता है। द्रुति विधान निम्न प्रकार से है। यथाह श्री सोमदेवः—

कलांशव्योषसंयुक्तं गन्धकं श्लक्ष्णचूर्णितम्।
अरत्निमात्रे वस्त्रे तद्विप्रकीर्य विवेष्टच तत् ॥ १६ ॥
सूत्रेण वेष्टयित्वाऽथ यामं तैले निमज्जयेत्।
धृत्वा संदंशतो वर्तिं सर्वां प्रज्वालयेत्ततः ॥ १७ ॥
ततो विनिपतेद्गन्धो विन्दुशः काचभाजने।
(रसेन्द्रचूडामणिः ११)

शुद्ध गन्धक सेवन करने पर भी यदि विकार उत्पन्न हो जाय तो गाय के दूध में घी और चीनी देकर ४–६ दिन तक सुबह शाम पीना चाहिये।

विकारो यदि जायेत गन्धकाच्चेत्तदा पिबेत्।
गोघृतेनान्वितं क्षीरं सुखी स्यात् स च मानवः ॥

(बृहद्रसराजसुन्दरः)

शुद्ध गन्धक की मात्रा १ रत्ती से १ माशा तक गोघृत से।

हरताल के भेद, शोधन एवं गुण

(Orpiment or Yellow Arsenic As_2S_3)

पत्री पिण्ड इति द्विधा निगदितस्तालः, स कूष्माण्डक-
क्षारे भस्मपलाशमूलसलिले वा शाल्मलीवारिणि ॥ ८६ ॥
स्विन्नः षड्गुणिते द्वियाममथवा यामं शुचिर्योजितो
योगेष्वेव गुणप्रदस्त्वपरथा प्राणापहः प्राणिनाम् ।

हरताल के दो भेद हैं। १ पत्रताल, २. पिण्डताल। इसका शोधन इस प्रकार करें। कूष्माण्डस्वरस या क्षारोदक या पलाशमूल स्वरस या शाल्मली स्वरस पूरित दोलायन्त्र में हरताल को पोटली बद्धकर ३–६ घण्टे तक स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार शुद्ध हरताल को योगानुसार प्रयोग करने से गुणप्रद होता है। अन्यथा अशुद्ध हरताल प्रयोग करने से प्राणियों के प्राण समाप्त हो जाते हैं। अर्थात् निश्चित रूप से मृत्युप्रद होता है। अपरथा=अन्यथा इति।

विमर्श—प्रायः आचार्यों ने हरताल के दो भेद ही किये हैं।

यथाह—रसार्णवकारः—

तालकः पटलः पिण्डो द्विधा तत्राऽऽद्य उत्तमः। (रसार्णवम् ७।७४)

अपि च—

हरितालं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं पिण्डसंज्ञितम्। (रसेन्द्रचूडामणिः)

अपि च—

तालकं द्विविधं प्रोक्तं दलाख्यं चाश्मसञ्ज्ञकम्। (रसप्रकाशसुधा०)

पत्रताल के लक्षण—

स्वर्णवर्णं गुरुस्निग्धं तनु पत्रं च भासुरम्।
तत्पत्रतालकं प्रोक्तं बहुपत्रं रसायनम् ॥

(रसेन्द्रचूडामणिः ११।३२)

अपि च—

सूक्ष्मपत्रं हेमवर्णं गुरु स्निग्धं च भासुरम्।
दलाख्यं तालकं तच्च बहुसत्त्वं रसायनम् ॥ (रसप्रकाशसुधा० ६)

पिण्डताल के लक्षण—

निष्पत्रं पिण्डसदृशं स्वल्पसत्त्वं तथा गुरु।
स्त्रीपुष्पहरणं तत्तु गुणाल्पं पिण्डतालकम् ॥

(रसेन्द्रचूडा० ११।३३)

अपि च—

निष्पत्रं चाश्मसदृशं स्वल्पसत्त्वं तथाऽगुरु ॥ ३ ॥

(रसप्रकाशसुधा० ६)

अन्य आचार्यों ने हरिताल का शोधन इस प्रकार बताया है। यथाह सोमदेवः—

स्विन्नं कूष्माण्डतोये वा तिलक्षारजलेऽपि वा।
तोये वा चूर्णसंयुक्ते दोलायन्त्रेण शुध्यति ॥

(रसेन्द्रचूडा० ११।३५)

अपि च—

कूष्माण्डतोयसंस्विन्नं स्विन्नं क्षारजलेन वा।
चूर्णतोयेन वा स्विन्नं दोलायन्त्रेण शुध्यति ॥ (रसप्रकाश० ६।४)

अपि च—

तालकं कणशः कृत्वा बद्ध्वा पोटलिकां ततः।
दोलायन्त्रेण यामैकं सचूर्णे काञ्जिके पचेत् ॥ १८२ ॥
यामैकं दोलया तद्वत्कूष्माण्डस्वरसे ततः।
तिलतैले पचेद्यामं यामं च त्रैफले जले।
दोलायन्त्रे चतुर्यामं पक्वं शुध्यति तालकम् ॥ १८३ ॥

(आयु० प्रकाश २)

अन्य आचार्यों ने भी हरताल की भस्म करने की विधि कही है जो बहुत ही उपयोगी है। यथाह रसवाग्भटः—

मधुतुल्ये घनीभूते कषाये ब्रह्ममूलजे।
त्रिवारं तालकं भाव्यं पिष्ट्वा मूत्रेऽथ माहिषे ॥ ७४ ॥
उपलैर्दशभिर्देयं पुटं रुध्वाऽथ पाचयेत्।
एवं द्वादशधा पाच्यं शुद्धं योगेषु योजयेत् ॥ ७५ ॥

(रसरत्नसमु० ३)

इसी प्रकार अनेक आचार्यों ने हरताल का सत्त्वपातन करने का उल्लेख अपने-अपने ग्रन्थों में किया है।

कुलत्थक्वाथसौभाग्यमहिषाज्यदधिप्लुतम्।
स्थाल्यां क्षिप्त्वा पिदध्याच्च मल्लेन छिद्रयोगिना ॥ ३६ ॥

सम्यङ्निरुध्य शिखिनं ज्वालयेत् क्रमवर्धितम् ।
एकप्रहरमात्रं हि रन्ध्रमाच्छाद्य गोमयैः ॥ ३७ ॥
यामान्ते छिद्रमुद्घाट्य दृष्टे धूमे च पाण्डुरे ।
शीतां स्थाली समुत्तार्य सत्त्वमुत्कृष्य चाहरेत् ॥ ३८ ॥
सर्वपाषाणसत्त्वानां प्रकाराः सन्ति कोटिशः ।
ग्रन्थविस्तारभीत्या ते लिखिता न मया खलु ॥ ३९ ॥
(रसेन्द्रचूडामणिः ११)

शुद्ध एवं भस्म रूपी हरिताल के गुणों का आचार्यों ने बहुत वर्णन किया है । यथा

श्लेष्मवातविषरक्तभूतनुत्केवलं च खलु पुष्पहृत्स्त्रियः ।
स्निग्धमुष्णकटुकं च दीपनं कुष्ठहारि हरितालमुच्यते ॥ ३४ ॥
(रसेन्द्रचूडामणिः ११)

अपि च—

स्यात्तालकः कटुगुरूष्णकषायतिक्तः स्निग्धोऽङ्गदीप्तिबलपुष्टिवृषाग्निकारी ।
श्लेष्मास्रपित्तपवनामयकुष्ठकण्डूसश्वासकासविषरोगकटिग्रहघ्नः ॥
(रसकामधेनुः २।४।७८)

अपि च—

हरितालं कटु स्निग्धं कषायं च विसर्पनुत् ।
तालकं हरते रोगान् कुष्ठमृत्युज्वरादिकान् ॥ (र. सा. सं. १।१८७)

अपि च—

मृतं तालं हरेद् घोरं फिरङ्गं सुचिरोत्थितम् ।
वातरक्तं विसर्पं च विपादीश्च विर्चचिकाम ॥ ५२ ॥
विविधानि च कुष्ठानि ह्यर्शांसि विषमज्वरम् ।
रोगं फिरङ्गजं हन्यादपस्मारं भगन्दरम् ॥ (रसतरं० ११।५३)

अशुद्ध या असम्यङ् मारित हरिताल से क्या दोष होता है इसके लिए आचार्यों ने बड़ी ही चेतावनी दी है । यथाह रसवाग्भटः

अशुद्धं तालमायुर्घ्नं कफमारुतमेहकृत् ।
तापस्फोटाङ्गसंकोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ (रसरत्नसमु० ३।६९)

अपि च—

हरति च हरितालं चारुतां देहजातां सृजति च बहुतापानङ्गसंकोचपीडाः ।
वितरति कफवातौ कुष्ठरोगं विदध्यादिदमशितमशुद्धं मारितं वाप्यसम्यक् ॥
(आयु० प्रकाश २।१७७)

हरताल दोष शान्ति के लिये आचार्य सदानन्द शर्मा ने उपाय बताया है ।

ससितं जीरकं क्षौद्रं कूष्माण्डं स्वरसं तु वा ।
अश्नियात्तालविकृतौ त्रिवारं त्वेकवासरे ॥ (रसतरं० ११।१०३)

अपि च—अजाजीं शर्करायुक्तां सेवते यो दिनत्रयम् ।
विकृतिं तालजां हन्याद् यथा दारिद्रयमुद्यमः ॥ (रसजलनिधिः २)

ऐसे अशुद्ध हरिताल विषवत् है । अतः समझकर प्रयोग करें तथा सम्यक् शोधित एवं मारित हरिताल अमृत जैसा है, रसायन है सभी रोगों को नाश करता है ।

मनःशिला

Realgar, As_2S_2

मनःशिला के भेद एवं शोधन

श्यामाङ्गी कणवीरिकेति च शिला द्विस्तत्र मुख्याऽन्तिमा ।
भृङ्गागस्तिजयन्तिकार्द्रकरसस्विन्ना शुचिः पूर्ववत् ॥ ८७ ॥

मनःशिला दो प्रकार की होती है । १. श्यामाङ्गी २. कणवीरिका । इन दोनों मनःशिला में कणवीरिका मनःशिला अच्छी होती है । इसका शोधन—भृङ्गराज स्वरस, अगस्तपत्रस्वरस, जयन्तीपत्र स्वरस एवं आर्द्रक स्वरस में ३-३ घण्टे प्रत्येक स्वरस में (दोलायन्त्र विधि से) स्वेदन करने से मनःशिला शुद्ध हो जाती है ।

विमर्श—अन्य आचार्यों ने मनःशिला के तीन भेद भी बताये हैं ।

१. श्यामाङ्गी २. कणवीरिका ३. खण्डाख्या

यथाह–सोमदेवः

मनःशिला त्रिधा प्रोक्ता श्यामाङ्गी कणवीरिका ।
खण्डाख्या चेति तद्रूपं विविच्य परिकथ्यते ॥ ५४ ॥
(रसेन्द्रचूडामणिः ११)

प्रत्येक के लक्षण कहते हुये आचार्यश्री ने कहा है—

श्यामा रक्ता सगौरा च भाराढ्या श्यामिका मता ।
तेजस्विनी च निर्गौरा ताम्राभा कणवीरिका ॥ ५५ ॥
चूर्णीभूतातिरक्ताङ्गी सभारा खण्डपूर्विका ।
उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठा भूरिसत्त्वा प्रकीर्तिता ॥ ५६ ॥
(रसेन्द्रचूडामणिः ११)

इनके कथनानुसार खण्डाख्या श्रेष्ठ है। आचार्य माधव के अनुसार श्यामा (श्यामाङ्गी) हिंगुल जैसा लाल है । "श्यामा हिङ्गुलवद्रक्ता किञ्चित् पीताऽतिदीप्तिका" । मनःशिला में आर्सेनिक अधिक है अतः बिना शुद्ध किये इसका प्रयोग

नहीं करना चाहिये। अशुद्ध मैनसिल के प्रयोग से मन्दाग्नि, विबन्ध, मूत्ररोध, मूत्रशर्करा आदि रोग उत्पन्न होते हैं। यथाह माधवः।

मनःशिला मन्दबलं करोति जन्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण।
मलस्य बन्धं किल मूत्ररोधं सशर्करं कृच्छ्रगदं च कुर्यात्॥

(आयु० प्र० २।२१९)

अपि च—

अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च अशुद्धा कुरुते शिला।
मन्दाग्निं मलबन्धं च शुद्धा सर्वरुजापहा॥

(रसरत्नसमु० ३।९२)

आचार्यों ने मनःशिला का शोधन में संक्षेपण किया है। यथाह—

सोमदेवः—

अगस्त्यपत्रतोयेन भाविता सप्तवारकम्।
शृङ्गवेररसैर्वाऽपि विशुद्धयति मनःशिला॥ ५८॥

(रसेन्द्रचूडामणिः ११)

आचार्यों ने मनःशिला का मारण का कोई उल्लेख नहीं किया है। सत्त्वपातन का उल्लेख सर्वत्र है किन्तु औषधोपयोगी नहीं है, आज कल सत्त्व बनाया नहीं जाता है। तथापि उसे यहां पर मैं दे रहा हूं। यथाह श्री सोमदेवः—

अष्टमांशेन किट्टेन गुडगुग्गुलसर्पिषा।
कोष्ठ्यां रुद्ध्वा दृढं ध्माता सत्त्वं मुञ्चेन्मनःशिला॥ ५९॥

(रसेन्द्रचूडामणिः)

आचार्यों ने इसके गुण इस प्रकार बताये हैं। शुद्ध मैनसिल के गुण-यथाह

सोमदेवः—

मनःशिला सर्वरसायनाग्र्या तिक्ता कटूष्णा कफवातहन्त्री।
सत्त्वात्मिका भूतविषाग्निमान्द्यकण्डूतिकोठक्षयहारिणी च॥

(रसेन्द्रचूडामणिः ११।५७) (रसरत्नसमु० ३।९१)

अपि च—

रसायनवरा सर्वा वातश्लेष्मविनाशिनी।
सत्त्वाधिका विषघ्नी च भूतकण्डूक्षयान् हरेत्॥ २०॥
अग्निमान्द्यं प्रशमयेत्कोष्ठरोगनिर्बर्हिणी।

(रसप्रकाशसुधा० ६।२१)

अपि च—

मनःशिला कटुस्तिक्ता स्निग्धोष्णा लेखनी गुरुः।
कासश्वासहरा कामं भूतोपद्रवनाशिनी॥ ११५॥

अग्निमान्द्यक्षयानाहहन्त्री कण्डूतिनाशिनी।
रसायनी ज्वरहरा वर्ण्या कामं विषापहा॥ ११६॥

(रसतरं. ११)

अशुद्ध मनःशिला सेवन जन्य उपद्रवशान्त्युपाय के लिये आचार्य दत्तराम चौबे एवं श्री भू० मुखर्जी ने कहा है कि गोदुग्ध के साथ मधु मिलाकर तीन दिनों तक ३-३ बार पीने से मनःशिला जन्य दोष शान्त हो जाते हैं।

यथाह—

गोक्षीरं माक्षिकयुतं पिबेद्यस्तु दिनत्रयम्।
कुनटी तस्य देहे तु विकारं न करोति हि॥

(रसराजसुन्दर। र० ज० नि० २)

रत्नप्रकरण

Preceous Stone

रत्नों का वर्गीकरण

वज्रं विद्रुममौक्तिके मरकतं वैदूर्यगोमेदके
माणिक्यं हरिनीलपुष्पदृषदौ रत्नानि नाम्ना नव।
यान्यन्यान्यपि सन्ति कानिचिदिह त्रैलोक्यसीम्नि स्फुटं
नाम्ना तान्युपरत्नतामुपगतान्याहुः परीक्षाकृतः॥ ८८॥

हीरा, मूँगा, मोती, पन्ना, लहसुनियाँ, गोमेद, माणिक्य, इन्द्रनील और पोखराज ये नौ पत्थर समूहों को रत्नवर्ग के नाम से जाना जाता है। संसार में अन्य और भी जितने खनिज (सीमा शब्द से सप्तमी विभक्ति में सीम्नि शब्द सिद्ध हुआ है, सीमा-खनिज वाचक है।) पत्थर (स्फटिक-सूर्यकान्त-चन्द्रकान्त-वैक्रान्त-राजावर्त-पैरोजक-अकीक-पाषाणबदर-कौशेयाश्म-व्योमाश्म-नागपाषाणादि) हैं, उन सबों को रत्नों के परीक्षक रत्नविद् विद्वानों ने उपरत्न की श्रेणी में रख कर उपरत्न नाम से लोक में प्रसिद्ध किया है।

विमर्श—

सोमदेवादि आचार्यों ने ग्रहानुसार रत्नों का वर्गीकरण किया है। यथा—

माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि तार्क्ष्यं च पुष्पं भिदुरं च नीलम्।
गोमेदकं चाथ विदूरकं च क्रमेण रत्नानि नवग्रहाणाम्॥

(रसेन्द्रचूडामणिः १२।१) रसरत्नसमु० ४।५)

अपि च—

ग्रहानुमैत्र्या कुरुविन्दपुष्पप्रवालमुक्ताफलतार्क्ष्यवज्रम्।
नीलाख्यगोमेदविदूरकं च क्रमेण मूढाधृतमिष्टसिद्धयै॥ (रसरत्नसमु० ४।६)

अपि च—

माणिक्यं मौक्तिकञ्चैव विद्रुमं तार्क्ष्यपुष्पके।
वज्रं नीलं च गोमेदं वैडूर्यं च क्रमेण हि॥
सुजातिगुणसम्पन्नं रत्नं सर्वार्थसिद्धिदम्॥ (रसप्रकाशसुधा० ७।१)

अपि च—

मुक्ताफलं च वैडूर्यं हीरकं पद्मरागकम्।
पुष्परागं च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा॥
प्रवालं च तथैतानि महारत्नानि वै नव॥ (विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

मुद्रिका में नवरत्नों का स्थान

दिक्प्राची कुलिशस्य मौक्तिकमणेराग्नेयिका दक्षिणा
दिग्वल्लीप्रभवस्य नैर्ऋतककुप् गोमेदसो वारुणी।
नीलांशोरथ दिग्विदूरजमणेर्वायोः कुबेरस्य दिक्
पुष्पस्याथ हरिन्मणेर्हरहरिच्छेषस्य शेषा हरित्॥ ८९॥

ग्रहों की शान्ति के लिये अंगूठी अथवा अन्य आभूषणों में रत्नों को इस प्रकार स्थापित करें।

हीरा—पूर्व दिशा में, मोती—आग्नेय कोण में,
प्रवाल—दक्षिण दिशा में, गोमेद—नैर्ऋत कोण में,
नीलम—पश्चिम दिशा में, वैडूर्य—वायु कोण में,
पुष्पराग—उत्तर दिशा में, मरकत—ईशान कोण में,
माणिक्य— को बीच में स्थापित करें।

विमर्श—

कुलिश का अर्थ हीरा है। वल्लीप्रभव=प्रवाल को कहते हैं। नीलांशोः=का अर्थ नीलम है। हरिन्मणेः=का अर्थ मरकत है। शेषस्य=का अर्थ श्री महोदेव ने बड़ा ही युक्तिसंगत किया है। इन्होंने कहा है कि नौ रत्नों की गणना के क्रम में इस श्लोक के ३ चरणों में आठ ही रत्न गिनाये हैं जो शेष अर्थात् जो अवशिष्ट एक रत्न बचा है वह है माणिक्य, उसके लिये स्थान भी शेष बचे हुये स्थान में अर्थात् बीच (मध्य) में स्थापित करना चाहिये। आचार्य बिन्दु की श्लोक शैली भी बहुत ही गाम्भीर्य पूर्ण एवं उलझाव पूर्ण है।

उसी तरह दिशाओं या कोणों के अर्थ भी इस प्रकार जाने। प्राची=पूर्व दिशा, नैर्ऋतककुप्=नैर्ऋत दिशा, वरुण=पश्चिम, वायु=वायुकोण अर्थात् पश्चिमोत्तर कोण, कुबेर=उत्तर, हरहरित्=ईशान अर्थात् पूर्वोत्तरकोण। शेषा=मध्या ऐसा ही अर्थ उचित है।

ग्रहानुसार रत्नों का धारण

माणिक्यं द्युमणेर्बुधस्य गरुडोद्गारो गुरोः पुष्पकं
गोमेदं तमसः प्रवालमवनीसूनोर्विधोर्मौक्तिकम्।
नीलं मन्दगतेः कवेस्तु कुलिशं केतोर्बिडालाक्षकं
रत्नं रत्नविदो वदन्ति विहितं दाने तथा धारणे॥ ९०॥

रत्नों के विशेषज्ञों अथवा पण्डितों ने दान, पूजा, यज्ञादि पवित्र एवं श्रेष्ठ कर्मों के समय ग्रहानुसार रत्नों का धारण क्रमशः इस प्रकार कहा है।

१. सूर्यग्रह के लिये—"माणिक्य" (लाल) रत्न धारण करना चाहिये।
२. चन्द्रग्रह के लिये—"मुक्ता" (मोती) रत्न धारण करना चाहिये।
३. मङ्गलग्रह के लिये—"प्रवाल" (मूँगा) रत्न धारण करना चाहिये।
४. बुधग्रह के लिये—"मरकत" (पन्ना) रत्न धारण करना चाहिये।
५. गुरुग्रह के लिये—"पुष्पराग" (पोखराज) रत्न धारण करना चाहिये।
६. शुक्रग्रह के लिये—"हीरक" (हीरा) रत्न धारण करना चाहिये।
७. शनिग्रह के लिये—"नीलम" रत्न धारण करना चाहिये।
८. राहुग्रह के लिये—"गोमेद" रत्न धारण करना चाहिये।
९. केतुग्रह के लिये—"वैडूर्य" (लहसुनियाँ) रत्न धारण करना चाहिये।

विमर्श—

द्युमणिः=सूर्यः, गरुडोद्गारः=मरकतः (तार्क्ष्यः), तमसः=राहुः, अवनीसूनुः=पृथ्वीपुत्र-मङ्गलः, विधुः=चन्द्रमा, मन्दगतिः=शनिः, कवेः=शुक्रस्य, कुलिशं=वज्रं (हीरकं), बिडालाक्ष=वैडूर्य।

आचार्य सोमदेव एवं वाग्भटादि आचार्यों ने भी इसी प्रकार का एक श्लोक क्रमशः ग्रहानुसार सभी रत्नों के धारणार्थ कहा है।

"माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि तार्क्ष्यं च पुष्पं भिदुरं च नीलम्।
गोमेदकं चाथ विदूरकं च क्रमेण रत्नानि नवग्रहाणाम्॥
(रसेन्द्रचूडामणिः) रसरत्नसमु०

हीरा की उत्पत्ति

जातः प्राग्बलनामको दितिसुतोऽवध्यस्त्रिलोक्यां पुन-
र्देवैर्देहमयं मखे मणितनुः सर्वात्मना याचितः।
दत्त्वाऽथ स्वशरीरमव्यथमयं धीरः सुराणां पुर-
स्तस्थौ तैः स तु सप्ततन्तुभुजिभिः स्वर्गेश्वरायार्पितः॥ ९१॥
चिच्छेदाथ शिरोऽस्य वज्रशिरसो वज्रेण वज्री पुन-
र्भूतो रत्नसमुच्चयो बल इति स्माहुः पुराणर्षयः।

अत्यन्त प्राचीन काल में अर्थात् सतयुग के प्रारम्भ में दिति का पुत्र "बल" नामक दैत्य उत्पन्न हुआ; जो तीनों लोकों में अवध्य एवं अजेय था। उसने तीनों लोकों पर अधिकार कर लिया था। अजेय होने के कारण उसके द्वारा किये गये यज्ञ में सम्मिलित होकर देवताओं ने सामुहिक रूप से उसकी आराधना एवं याचना की, जिससे प्रसन्न होकर बल नामक दैत्य ने देवता से वर मांगने के लिये कहा। देवताओं ने लोक कल्याणार्थ सम्पूर्ण रूप से उसके मणिरूपी शरीर की याचना की। बल दैत्य ने धैर्य्य पूर्वक देवताओं की प्रार्थना सुनकर अपने व्यथारहित शरीर को देने की प्रतिज्ञा कर देवताओं के सम्मुख उपस्थित हुआ। यज्ञ भागी देवताओं ने उसके शरीर को स्वर्गाधीश्वर इन्द्र को भेंट किया। इन्द्र ने अपने वज्र से "वज्र-शिर" बल का शिरश्छेदन किया। यही बल नामक दैत्य रत्नों का समुच्चय है ऐसा प्राचीन महर्षिओं ने बताया था।

विमर्श—रसशास्त्र के अन्य आचार्यों ने भी हीरा की उत्पत्ति के ऐसे अन्य कई रोचक कथाओं की प्रस्तुति की है। यथाह—

दधीच्यस्थनः समुत्पन्नः पविस्तस्य कणाः क्षितौ।
विकीर्णास्ते तु वज्राख्यं भजन्ते तच्चतुर्विधम् ॥ १४ ॥
श्वेतं द्विजाभिधं रक्तं क्षत्रियाख्यं तदीरितम्।
पीतं वैश्याख्यमुद्दिष्टं कृष्णं स्याच्छूद्रसंज्ञकम् ॥ १५ ॥
विप्रो रसायने प्रोक्तः सर्वसिद्धिप्रदायकः।
क्षत्रियो व्याधिविध्वंसी जरामृत्युहरः परः ॥ १६ ॥
वैश्यो धनप्रदः प्रोक्तस्तथा देहस्य दार्ढ्यकृत्।
शूद्रो नाशयति व्याधीन् वयस्तम्भं करोति च ॥
स्त्रीपुंनपुंसकाश्चैते लक्षणीयाश्च लक्षणैः ॥ १७ ॥

(आयु० प्रकाश ५)

ज्योतिष के महान् आचार्य वराहमिहिर के अनुसार भी हीरा की उत्पत्ति के तीन कारण हैं। १. बल नामक दैत्य के शरीर से, २. दधीचि ऋषि की अस्थि से, ३. पृथ्वी गर्भ से स्वाभाविक रूप से हीरा प्राप्त होते हैं। यथा—

"रत्नानि बलाद्दैत्याद्दधीचितोऽन्ये वदन्ति जातानि।
केचिद् भुवः स्वभावाद् वैचित्र्यं प्राहुरुपलानाम् ॥

(बृहत्संहिता ७९।३)

हीरक के विप्रादि चतुर्वर्ण का कारण

मूर्ध्नो वा वदनादमुष्यपवयो ये जज्ञिरे ते द्विजा
बाहुभ्यामुरसोऽस्य ये समभवंस्ते संस्मृताः क्षत्रियाः ॥ ९२ ॥

नाभीतः कटितश्च ये निपतितास्ते नाम भूमिस्पृशो[1]
जानुद्वन्द्वपदद्वयप्रपतितास्ते नाम शूद्रा मताः।

बल नामक दैत्य के शिर और मुख से जो हीरा निकला, उसे ब्राह्मण हीरा कहा गया। बल दैत्य के हाथों और छाति से निकला हीरा क्षत्रिय हीरा कहा गया, उसके नाभि एवं कटि प्रदेश के बीच से जो हीरा निकला उसे वैश्य हीरा कहा गया और दोनों पैरों से जो हीरा निकला उसे शूद्र जाति का हीरा कहा गया है। अर्थात् बल नामक दैत्य का सम्पूर्ण शरीर वज्रमय था और स्थान विशेष के कारण चार प्रकार के हीरे अपनी विशेष प्रभा एवं आकृति के कारण उत्पन्न हुये।

विमर्श—विश्व का प्रथम ग्रन्थ वेद (शुक्ल यजुर्वेद) में शरीर के अङ्गों का विप्रादि चतुष्प्रकार की व्यवस्था से विभूषित किया गया है, जो कर्मानुसार है। यथा—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यकृतः।
ऊरूतदस्य तद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रोऽजायत ॥

हीरकोत्पत्ति का अन्य प्रकार

पूर्वं मन्दरमथ्यमानजलधिप्रोदुत्थिता याः सुधा-
स्ताः प्रायः पिबतः सुरासुरगणस्यास्यादिमे बिन्दवः ॥ ९३ ॥
ये भूमौ पतिता विकर्तनकरव्रातैः पुनः शोषिता-
स्ते वज्राण्यभवञ्जनुर्ननु पवेरित्यूचिरे केचन।

पहले सतयुग में देवताओं और दैत्यों ने मिलकर मन्दराचल पर्वत से जो समुद्रमन्थन किया था उससे (समुद्र से) अनेक दिव्य रत्नों के साथ अमृत भी निकला था। उस अमृत का प्रायः देव-दानवों द्वारा मिलकर पान करते समय उनके मुख से अमृत की कुछ बून्दें पृथ्वी पर गिर गयी थी, जो कालान्तर में सूर्य की प्रचण्ड किरणों द्वारा सूख कर वज्र हीरा हो गया। इस कथा से यह दृढ़निश्चय होता है कि अमृतोत्पन्न होने के कारण ही हीरा अजरामरत्व गुणों से युक्त है, तथा पृथ्वी से उत्पन्न होने के कारण ही यह सर्वाधिक कठिन भी है।

रत्नों की आठ प्रकार की परीक्षा विज्ञान

उत्पत्तिर्गुणदोषजातिखनयो हस्ताङ्गुलीचालनं
मूल्यं मण्डलिकेति रत्नदृषदां ज्ञानं वदन्त्यष्टधा ॥ ९४ ॥

---

१. भूमिस्पृशः=वैश्यः। पूर्व काल में भूमि एवं कृषि का अधिकारी वैश्य था। अतः भूमिस्पृश=वैश्य के लिये युक्ति संगत है।

अत्रैकप्रसरेण नोक्तमपि तज्ज्ञानं परीक्षास्थल-
श्लोकैः श्लोकितमेकशः खलु विदांकुर्वन्तु वैज्ञानिकाः ।

रत्नों की उत्पत्ति, रत्नों के गुण, दोष, जाति, खान, हस्ताङ्गुलीचालन, मूल्य और विशेषज्ञों (जौहरी) की सभा से प्रमाणित इन आठ प्रकार से रत्न पत्थरों का विशेषज्ञान कहा गया है । हस्ताङ्गुली चालन का अर्थ यह है कि रत्न विद् प्रकाश में अपने बांयें हाथ की हथेली पर रत्न को रखकर दाहिने हाथ की अङ्गुलियों से (रत्न को) चलाते हैं अर्थात् घुमाते हैं । ऐसा करने से रत्नों से विशेष प्रकार की प्रकाश किरणें निकलती हैं, जिसे जौहरी लोग या रत्न विशेषज्ञ लोग अपने अनुभव के द्वारा परखते हैं । यद्यपि यहां पर एक ही प्रस्ताव में ये सारी (आठों) बातें हों यह नहीं कहा गया है तथापि इस श्लोक में एक स्थान पर रत्न वैज्ञानिकों द्वारा कहे गये उनके सिद्धान्तों को जानने वाले परीक्षक (विशेषज्ञ) अपने अनुभवों से रत्नों की उत्पत्ति आदि आठों प्रकार के विशेष ज्ञान को जानें ।

हीरा के चार एवं तीन भेद

ब्रह्मक्षत्रियवैश्यशूद्रविभिदा ज्ञेयश्चतुर्धा पविः ।
पुंस्त्रीक्लीबविभागतः पुनरसौ प्रत्येकमुक्तस्त्रिधा ॥ ९५ ॥

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य एवं शूद्र भेद से हीरा चार प्रकार का होता है । तथापि यह पुरुष-स्त्री और नपुंसक भेद से चारो के तीन-तीन भेद होते हैं ।

विमर्श—सभी रसाचार्यों ने हीरे का भेद ऐसे ही बताया है । यथाह आचार्य सोमदेवः—

वज्रं च त्रिविधं प्रोक्तं नरो नारी नपुंसकम् ।
पूर्वं पूर्वं महाश्रेष्ठं रसवीर्यविपाकतः ॥ २० ॥
श्वेतादिवर्णभेदेन तदेकैकं चतुर्विधम् ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रं स्वस्ववर्णफलप्रदम् ॥ २४ ॥

(रसेन्द्रचूडामणि १२)

अपि च—आचार्य यशोधरः—

सर्वेषु रत्नेषु सदा वरिष्ठं मूल्यैर्गरिष्ठं त्रिविधं हि वज्रम् ।
नरश्च नारी च तथा तृतीयं तेषां गुणान् वच्मि समासतो हि ॥ १९ ॥
स्युर्ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रास्ते जातितो वै क्रमशश्च वर्णाः ।
श्वेतादिकं वर्णचतुष्टयं हि सर्वेषु रत्नेषु च कथ्यते वै ॥ २० ॥

(रसप्रकाशसुधाकरः ७)

हीरा के भेद दर्शक तालिका

	नर	नारी	नपुसक	
	उत्तम	मध्यम	अधम	
	सभी के लिये	स्त्रियों के लिये	नपुंसकों के लिये	
जाति	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
वर्ण	श्वेत	रक्त	पीत	कृष्ण
पुरुषों के लिये	ब्राह्मण पुरुष के लिये	क्षत्रिय पुरुष के लिये	वैश्य पुरुष के लिये	शूद्र पुरुष के लिये
स्त्रियों के लिये	ब्राह्मण स्त्री के लिये	क्षत्रिय स्त्री के लिये	वैश्य स्त्री के लिये	शूद्र स्त्री के लिये
नपुंसकों के लिये	ब्राह्मण नपुंसक के लिये	क्षत्रिय नपुंसक के लिये	वैश्य नपुंसक के लिये	शूद्र नपुंसक के लिये
उपयोग	रसायन एवं सर्व-सिद्धि दायक है ।	जरा-व्याधि एवं मृत्युनाशक है ।	धनदायक एवं देह दाढ्यंकर है ।	व्याधिनाशक एवं वयःस्थापक है ।

नोट—अर्थात् इस गणना के अनुसार हीरा के कुल १२ भेद होते हैं ।

वर्ण एवं द्विजाति भेद से हीरा के लक्षण

तत्र श्वेतरुचिर्द्विजः स्फटिकवद्रक्तस्तु किञ्चिन् नृपो
वैश्यः पीतरुगंघ्रिजस्त्वसितभास्तत्राप्ययं पूरुषः ।
रेखाबिन्दुविवर्जितोऽष्टफलकः स्वच्छछविर्यो भवे-
त्सा स्त्री या तु षडस्रबिन्दु सहिता रेखान्वितोदाहृता ॥९६॥
निष्कोणाश्चिपिटास्त्रिकोणवपुषो दीर्घा विपुंस्त्वाः पुन-
र्धार्याः स्त्रीनृनपुंसकैर्युवतिपुंषण्ढाभिधानाः क्रमात् ।
यद्वेदाध्ययनात्[1] क्रतोरपि कृतेर्दानस्य वा यत्फलं
तत्प्राप्नोति पुमानतो वरतनोर्वज्रस्य संधारणात् ॥९७॥
चातुर्वर्ण्य परिग्रहादपि चतुर्वर्णाश्रयश्रेयसा
संयुक्तामुररीकरोति न कथंकारं स भूतिं पराम् ।

स्फटिक जैसा श्वेत-स्वच्छ-निर्मल दिखाई देने वाला हीरा ब्राह्मण वर्ण का है, जो हीरा कुछ लाल वर्ण का दिखाई देता है वह क्षत्रिय जाति का है, तथा जिस हीरा का वर्ण पीला हो वह वैश्य जाति का है और जो हीरा असित अर्थात् कृष्ण वर्ण का है वह अंघ्रिज अर्थात् शूद्र जाति का है ।

इसके बाद आचार्य चतुर्विध हीरा के लक्षण कहते हैं ।

पुरुष हीरा—रेखा-बिन्दु आदि रत्नों के पाँच दोषों से रहित, आठ पहल या आठ धार से युक्त और स्वच्छ वर्ण का हीरा पुरुष हीरा है ।

---

१. "निःसन्देहमिह" इति पाठ भेदः ।

स्त्री हीरा—छः धार (छः पहल) वाला एवं बिन्दु और रेखा दोषों से युक्त हीरा स्त्री हीरा है।

नपुंसक हीरा—निष्कोण (कोण-धार-पहल से रहित) चिपटा, त्रिकोण से युक्त एवं बड़ा हीरा को नपुंसक हीरा कहते हैं। विपुंस्त्व=नपुंसक को कहते हैं।

ये तीनों प्रकार के हीरे क्रमशः पुरुषों को पुरुष हीरा, स्त्रियों को स्त्री हीरा और नपुंसकों को नपुंसक हीरा धारण करना चाहिये। वेदाध्ययन, यज्ञ और दान करने का जो फल मिलता है वही फल विप्र हीरा को शरीर में धारण करने से मनुष्य प्राप्त करना है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णों के परिग्रहद्वारा चतुर्वर्णाश्रय धर्म के आश्रय लेने से अवश्य ही परमविभूतिप्रद अर्थात् मोक्ष प्रदाता होता है।

विमर्श—आचार्य सोमदेव ने पुरुष हीरे का लक्षण इस प्रकार कहा है। यथा—

अष्टास्रं चाष्टफलकं षट्कोणमतिभासुरम्।
अम्बुदेन्द्रधनुर्वारितरं पुंवज्रमुच्यते॥ २१॥

(रसेन्द्रचूडा० १२)

गुण से युक्त शूद्रवर्ण का हीरा भी ब्राह्मणवर्ण के हीरा से अधिक गुण वाला होता है।

शूद्रादप्यधमो द्विजो यदि गुणैर्हीनः पविर्ब्राह्मणा-
दप्युच्चैरयमर्घमर्हति पुनः शूद्रो गुणैर्गौरवात्॥ ९८॥
आधिव्याधिसरीसृपानलरिपुव्याघ्रापमृत्युग्रहा-
स्तं नैवाभिभवन्ति यस्य सदने तिष्ठेत्पवित्रःपविः।

पहले, हीरे का जैसा गुण कहे हैं यदि वैसे गुणों से युक्त शूद्रवर्ण का हीरा हो तो और ब्राह्मण वर्ण का हीरा उससे हीन गुण का हो तो शूद्रवर्णी हीरा अपने गुण गौरव से अधिक मूल्यवान् होता है ऐसा जानना चाहिये। पवित्र एवं उत्तम हीरा जिसके घर में रहता है वह मनुष्य कदापि मानसिक चिन्ता, रोग, सर्पभय, अग्निभय, शत्रुभय, व्याघ्रभय, अकालमृत्यु और सूर्यादिनवग्रहबाधा से पीड़ित नहीं होता है।

हीरे के पाँच दोष

बिन्दुः काकपदं यवः किल मलो रेखेति नाम्नोदिता
दोषाः पञ्च पवेरथात्र कथितो ·· ··· ··· ··· ···· ॥

१. बिन्दु, २. काकपद, ३. यव, ४. मल, ५. रेखा नाम से आचार्यों ने हीरा में पाँच दोष कहा है।

आचार्य सोमदेव ने सभी रत्नों के दोष इस प्रकार कहा है।

यथा— ग्रासस्त्रासश्च बिन्दुश्च रेखा च जलगर्भता।
सर्वरत्नेष्वमी पञ्च दोषाः साधारणा मताः॥ २७॥
क्षेत्रतोयभवा दोषा रत्नेषु न लगन्ति च।

(रसेन्द्रचूडामणिः १२)

··· ···· ··· ··· ···· ····बिन्दुः समो बिन्दुना॥ ९९॥
कृष्णो रक्त इति क्रमेण स पुनर्द्वेधा मतो वर्तुला
वृत्ताकारभिदा ग्रहीतुरफलः शस्तो न सर्वोऽपि सः।

बिन्दु दोष उसे कहते हैं जो हीरा के टुकड़े पर बूंद के जैसा दिखायी देता हो। यह बिन्दु भी वर्ण के अनुसार काला और लाल दो प्रकार का होता है। इसके भी गोल और चिपटे दो भेद होते हैं। अतः उपर्युक्त बिन्दु दोष युक्त हीरा खरीदने वालों के लिये निष्फल और अलाभ कारक होता है।

२. काकपद दोषयुक्त हीरा के लक्षण

ज्ञेयं काकपदं तु काकचरणाकारं परीक्षाकृता
वज्रे श्रीमति संस्थितं पुनरिदं धर्तुर्भवेन्मृत्युदम्॥ १००॥

जिस हीरा में कौवे के पैर के जैसे निशान बने हुये हों, रत्न परीक्षकों (रत्नविदों) ने उसे काकपद दोष से युक्त हीरा माना है। उस हीरा को धारण करने वाला व्यक्ति मर जाता है।

३. यव दोष युक्त हीरा के लक्षण

रक्तापीतसितासितच्छविभिदा ज्ञेयश्चतुर्धा यवा-
कारस्तत्र यवः सितः खलु पवेः पूज्योऽपरे निन्दिता।

रक्त, पीत, श्वेत और कृष्ण इस प्रकार चार तरह के यव दोष हीरा में पाये जाते हैं। इन चारों प्रकार के यवों में श्वेत यव श्रेष्ठ अर्थात् शुभप्रद होता है और शेष तीन (रक्त-पीत-कृष्ण) यव निषिद्ध एवं अग्राह्य है। अर्थात् इनका धारण अशुभ-अमंगलप्रद है।

४. मलदोषयुक्त हीरा के लक्षण

[1]धाराकोणकमध्यसंस्थिततया त्रेधा मलो रत्नविद्-
व्याख्यातः स पुनर्ग्रहीतुरनलव्याघ्रादिभीतिप्रदः॥ १०१॥

१. धारायामथ कोणयोर्निगदितो मध्ये च लौहो मल-
स्त्रेधा सोऽप्यनलादिभीतिजननो धर्तुर्भवेन्निश्चितम्॥ इति पाठ भेदः।

जिस हीरे की धार में कोण में मध्य में, मैल जैसा प्रतीत होता हो उस हीरे को मल दोष से युक्त हीरा कहते हैं। इस तरह तीन प्रकार के (धार-कोण-मध्य) मल दोषों की गणना विद्वान् रत्न विशेषज्ञों ने की है। इस तरह के हीरों को धारण करने से अग्नि एवं व्याघ्रादि का भय रहता है। अर्थात् इन दोषों से युक्त हीरों का धारण नहीं करना चाहिये।

५. रेखा दोष से युक्त हीरा के लक्षण

सव्यासव्यनिवासिनी तदपरा तत्र स्थिता छेदिनी
छिन्ना चोर्ध्वगतिर्मतेति विबुधै रेखाश्चतस्रः पवेः।
सव्या तत्र शुभाऽपराः पुनरमूर्दौर्भाग्यदा वर्तुले-
ऽप्यन्तर्भेदिनि लग्नकोणिनि पवौ दोषास्त्वकिञ्चित्कराः ॥१०२॥

जिस हीरा में परस्पर काटती हुई चार प्रकार की रेखायें हों, रत्न के विद्वान् विशेषज्ञों ने उस हीरा को रेखा दोष से युक्त माना है। ये रेखायें चार प्रकार की होती हैं। यथा–बायी ओर से जाने वाली, दाहिनी ओर से जाने वाली, तीसरी रेखा ऊपर से नीचे की ओर अन्य रेखा को काटती हुयी और चौथी रेखा नीचे से ऊपर की ओर जाने वाली होती है। तीसरी एवं चौथी रेखा को छेदनी रेखा कहा गया है। अर्थात् पहली रेखा सव्या, दूसरी दक्षिणा, तीसरी छेदिनी और चौथी छिन्ना रेखा कही गयी है।

इन चारों प्रकार की रेखाओं में सव्या रेखा शुभप्रद अर्थात् मंगलमय है अन्य तीन रेखायें अमंगल एवं दुर्भाग्यप्रद है। अतः इन तीन रेखाओं से युक्त हीरों का धारण नहीं करना चाहिये। किन्तु यदि हीरा वर्तुल (गोल) हो, अन्तर्भेदिनी हो, लग्नकोणी हो तो ये सभी रेखा दोष निष्फल हो जाते हैं।

श्रेष्ठ हीरा का लक्षण

अच्छत्वं लघुता तथाऽष्टफलता[१] षट्कोणता तीक्ष्णता-
ऽप्येतान् पञ्च गुणान् गृणन्ति गुणिनो देवोपभोग्ये पवौ ॥ १०३ ॥

रत्न के विद्वान् विशेषज्ञों ने हीरा में पाँच विशेष लक्षण या पाँच विशेष गुण बतायें हैं।

१. स्वच्छ–(श्वेत काँच जैसा स्वच्छ), २. हल्का, ३. आठपहल, ४. षट्कोण ५. तीक्ष्णता अपनी तीक्ष्णता के कारण अन्य मणियों को काटने वाला।

इन पाँच लक्षणों से युक्त हीरा को देवताओं के लिये विशेष उपयोगी बताया है।

---

१. "तथाऽष्टदलता" इति पाठ भेदः।

विमर्श—कुछ अन्य आचार्य श्रेष्ठ हीरा का लक्षण इस प्रकार बताते हैं। यथाह आचार्य सदानन्द :—

स्निग्धं विद्युद्विभं स्वच्छमलेख्यं च विलेखनम्।
तीक्ष्णं षट्कोणमष्टास्रं जात्यं हीरकमादिशेत् ॥
(रसतरं० २३।६)

श्रेष्ठ हीरे का लक्षण अन्य आचार्य इस प्रकार कहते हैं।

यत्पाषाणतले निकाषनिकरे नोद्घृष्यते निष्ठुरै-
र्यच्चान्योपललोहमुद्गरमुखैर्लेखं न यात्याहतम्।
यच्चान्यान्निजलीलयैव दलयेद्वज्रेण वा भिद्यते
तज्जात्यं कुलिशं वदन्ति कुशलाः स्थाप्यं महार्घं च तत् ॥ ६९ ॥
(आयु० प्रकाश ५)

युगानुसार हीरा के आठ खानों के नाम

जातिः प्राक्तु निरूपिता जनिरपि प्रोक्ता खनिस्त्वष्टधा
द्वे द्वे तत्र युगे युगे प्रभवतस्तत्रादिमे कोशलः।
कालिङ्गस्तदनन्तरे निगदितो वङ्गस्तथा मालवः
सौराष्ट्रो मणिपुण्ड्रकः कलियुगे सोपारवज्राकरौ ॥ १०४ ॥

बहुत पहले ही ऋषियों ने युगानुसार हीरा के आठ खानों का ज्ञान प्राप्त किया था। सतयुग-त्रेता-द्वापर-कलियुग के क्रम से प्रत्येक युग में दो-दो खानों का ज्ञान ऋषियों को हुआ था। १. सतयुग में कोशलदेश और कलिङ्गदेश। २. त्रेता युग में—वङ्गदेश और मालव देश। ३. द्वापर में—सौराष्ट्रदेश और मणिपुण्ड्रक (मणिपुर)। ४. कलियुग में—सोपारक और वज्राकर=वैरागर देश के खानों से हीरा प्राप्त होता था।

हीरक का मान (तौल) के अनुरूप मूल्य निर्धारण

चत्वारः सितसर्षपा [१]पनसिका ते द्वे पुनस्तण्डुल-
स्ताभ्यामेव यवो यवः पुनरयं पिण्डो (ण्डे) ऽस्ति किञ्चित्पृथुः।
पिण्डो गात्रमिति द्विधा पविवपुः संज्ञाऽस्य संज्ञामिमां
ज्ञात्वा [२]मानकदण्डतो बतमहन्मध्याल्पमौल्यं वदेत् ॥१०५॥

चार सफेद सरसो की १ पनसिका होती है, दो पनसिका एक चावल के बराबर होती है, दो चावल का १ यव कहलाता है, और यही यव कुछ मोटा और बड़ा (वंशयव जैसा) होने पर पिण्ड संज्ञा कहलाता है। पिण्ड और गात्र ये दो प्रकार के

---

१. मनसिका इति पाठ भेदः।
२. "मानमिदं च तोलनिकया संतोल्य मौल्यं वदेत्" इति पाठः भेदः।

हीरे के शरीर की संज्ञा है। इस संज्ञा को और उसके वजन को जानकर तराजू से तौलकर मूल्य कहे। यथा—यव के आकार का अथवा उससे कुछ बड़ा हीरा हो और उसका वजन एक पनसिका के बराबर हो तो वह अधिक मूल्य का हीरा होगा। यव के बराबर हीरे का मूल्य कम होता है। यदि हीरा में कोई दोष विशेष हो तो उसका मूल्य अलग जानना चाहिये।

हीरे का मूल्य विचार

मौल्यं न प्रतिदेशमस्ति सदृशं येनेदमित्थं मया
वाच्यं तत्र तथापि गद्यत इह त्रैराशिकं क्रान्तये।

हीरे का मूल्य हर जगह एक जैसा नही होता है जिससे मै यह बता दूँ कि इस हीरे का मूल्य इतना होगा। तथापि ज्योतिषशास्त्रानुसार हीरे का मूल्य तीन कारणों को सामने रखकर बताने का प्रयास करता हूँ।

हीरे का तर-तमादि भेद से मूल्य प्रकार

पिण्डस्तु त्रिविधो लघुः समगुरुस्तत्रोत्तमं लाघवे
साम्ये मध्यममल्पमेव गदितं मौल्यं गुरुत्वे बुधैः ॥१०६॥
त्रेधा लाघवतस्त्रिधा गुरुतया षोढ़ा च सामान्यतो
मूल्यं द्वादशधेदृशं खलु मतं तत्तारतम्यं क्रमात्।

हीरे के स्वरूप के तीन भेद हैं। १. हलकाहीरा, २. सामान्य (सम) हीरा, ३. भारी हीरा। हलका हीरा उत्तम कोटि का होता है तथा अत्यधिक मूल्य का होता है, सम (सामान्य) हीरा मध्यमकोटि का है तथा उसका मूल्य भी सामान्य अर्थात् मध्यम होता है, तथा भारी हीरा अधम कोटि का होता है तथा यह अल्प मूल्य का होता है। हलके हीरे तीन प्रकार के होते हैं, भारी हीरे भी तीन प्रकार के होते हैं तथा सामान्य हीरा छः प्रकार के होते हैं। कुल मिलाकर लघु-सम-गुरु आदि तर-तमादि भेद से १२ प्रकार के हीरे कहे गये हैं। इसी तरह इनके मूल्य प्रकार भी समझे।

हीरे का मूल्य निर्धारण कैसे करें

पिण्डस्तण्डुलसम्मितो यवपृथुः सम्भाव्य चित्ते पुन-
र्वज्रं तेन समं विचार्य चतुरो मौल्यं ततो निर्दिशेत् ॥१०७॥
तच्चेत्तत्क्रमतन्निवृत्तिकगुणैर्युक्तश्चतुर्भिः पवि-
निष्कं तण्डुलसम्मितो यवपृथुः प्राप्नोति मौल्यं यदि।
पिण्डो यस्य यवद्वयेन सदृशो माने पुनस्तण्डुलो
मौल्यं तस्य पवेश्चतुर्गुणमुदाहर्तव्यमेवं पुनः ॥१०८॥

पिण्डश्चेत्त्रिचतुःशरर्तुयवभः स्यादष्टदिक्छोडश-
द्विर्द्विर्वर्धितमस्य तण्डुलमितेर्वज्रस्य मौल्यं तथा।
वृद्धत्वे तु यवोपमः प्रकृतितस्तत्पादतो मानवा-
नष्टाविंशतिवर्धितं प्रथमतः प्राप्नोति मौल्यं मणिः ॥१०९॥
पिण्डे सप्तयवोपमः परिमितौ स्यात्तण्डुलैकक्रमो
वज्रो वारितरो लभेत परमं मौल्यं सहस्रद्वयम्।
स्याच्चेत्सांघ्रियवोपमः पविरथो माने गुरुस्तण्डुलः
क्षीयेतास्य मणेरथ द्विगुणितं मौल्यं क्षयेऽयं क्रमः ॥११०॥
इत्थं युक्तिबलाद्विचार्य चतुरो मौल्यं मणेरादिशे-
दर्घस्यासति वज्रवर्ष्मणि यथादोषं क्षयं कल्पयेत्।
यावत्स्याद्गुणिनस्ततस्त्वगुणिनो वृद्धेश्चतस्रः कला-
श्छेत्तव्या कुशलेन देशसमयद्रव्यात्मविज्ञानिना ॥१११॥

जब हीरा पिण्ड यव के समान मोटा और चावल के वजन के बराबर हो तब इस बात को विचार कर चतुर रत्नविद् हीरा का मूल्य कहे।

इस क्रम से पूर्वोक्त "अच्छत्वं लघुता तथाऽष्टफलता षट्कोणता तीक्ष्णता श्लोक सं. १०३" अच्छत्वादि गुणों से युक्त, चावल के बरावर तौल वाला तथा यव के जैसा मोटा हीरे का मूल्य एक निष्क होगा, उसके अनुपात में अच्छत्वादि गुणों से युक्त तथा दो यव के बराबर आकृति वाला और एक चावल के बराबर वजन वाला हीरा का मूल्य पूर्वापेक्षा चौगुना जानना चाहिये। (१०८)

यदि हीरा का पिण्ड ३–४–५–६–८–१०–१६ यव के बरावर हो और उन सबों का वजन (प्रत्येक का वजन) १–१ तण्डुल के बराबर ही हो तो उन हीरक पिण्डों का मूल्य प्रत्येक में दुगुना–दुगुना अर्थात् ६–८–१०–१२–१६–२०–३२ निष्क समझना चाहिये। जो हीरा पिण्ड (शरीर) में एक जौ के जैसा तथा वजन में ¼ चौथाई जौ के बरावर हो तो उसका मूल्य पूर्वोक्त से २८ गुना अधिक समझना चाहिये। (१०९)

जिस हीरक पिण्ड की आकृति सात यव के बराबर हो अर्थात् सात जौ जितना बड़ा-लम्बा-मोटा हो और तौल में १ एक चावल के वजन का ही हो साथ ही वह हीरक खण्ड वारितर भी हो निर्दोष भी तो ऐसा आश्चर्य युक्त हीरा का मूल्य दो हजार निष्क समझना चाहिये। (अब इसके बाद आचार्य मूल्य क्षयका कारण कहते हैं। इसी क्रम में १ सवा यव की आकृति के हीरे का वजन १ चावल के बराबर का हो, भारी हो तो उस हीरे का मूल्य घट कर पूर्वापेक्षा दुगुना कम हो जाता है।

इसी क्रम से आकृति में बड़ा और तौल में भारी हीरा का मूल्य इसी दुगुना क्रम से घटता जाता है। (११०)

इस तरह कुशल रत्न विद्वान् युक्ति पूर्वक रत्नों की आकृति (पिण्ड) तथा वजन और अच्छत्व एवं वारितरादि गुणों को सम्यक्तया विचार विमर्श के बाद हीरे का मूल्य निर्धारण करे। यदि हीरा अच्छत्व-वारितर तीक्ष्णादि गुणों से युक्त होगा, कोई दोष नहीं होगा तो मूल्य में वृद्धि होगी अधिक गुणों से युक्त हीरा अत्यधिक मूल्यवान् होगा और गुणों में अल्पता तथा दोषों में अधिकता से युक्त एवं भारी हीरा का मूल्य कम होगा। निर्दोष हीरा का जितना मूल्य हो सदोष हीरा का मूल्य उससे चार कला कम होगा। अर्थात् चौथाई समझें। देश-काल-द्रव्य के अनुसार यदि हीरा ठीक है तो गुण समझें अथवा दोष को दोष जानना चाहिये।

विमर्श—आचार्यश्री ने हीरा का मूल्य निर्धारण के लिये इतना विस्तार पूर्वक लिखकर रत्नविदों को अधिक उपकृत किया है तथा समादरणीय है। किन्तु रसशास्त्र में इसका उतना महत्त्व नहीं है। आचार्य श्री ने हीरे का मूल्य १–२–४–६–८–१०–१६–३२ इत्यादि निष्कों में कहा है, अतः हमें निष्क के बारे में विचार करना चाहिये। सर्वप्रथम आयुर्वेद एवं भैषज्य कल्पना में निष्क २४ रत्ती को कहा है। किन्तु यहां पर यह तौल से सम्बन्धित नहीं अपितु मूल्य से सम्बन्धित दर्शाया गया है।

निष्कः=साष्टे शते सुवर्णानां हेम्न्युरोभूषणे पले।
दीनारेऽपि च निष्कोऽस्त्री............॥ (अमरकोष ३।३।१४)
निष्कमस्त्री साष्टहेमशते दीनारकर्षयोः। इति मेदिनी।

१०८ अशर्फी सोने का बना हुआ आभूषण जिसे गले में पहना जाय जो छाति पर स्थित रहे। ४ तोला शुद्ध (पक्का) सोना, उसे दीनार भी कहते हैं अर्थात् १ निष्क १ दीनार एवं १ कर्ष के बराबर होता है। दीनार फारसी या अरबी शब्द है।

जौहरी भी कहा करते हैं और रत्नों के आधुनिक विशेषज्ञ भी कहा करते हैं कि हीरा का आपेक्षिक घनत्व ३.५ है। अर्थात् जल से ३ साढ़े तीन गुना भारी है। ऐसी स्थिति में हीरा वारितर हो ऐसा मानने के लिए रत्नविद तैयार नहीं है। किन्तु आचार्य विन्दु ने जो तौल पिण्ड का विभेद तथा विशेष वर्णन किया है उससे इस पर अत्यधिक प्रकाश पड़ता है और मानने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि हीरा वारितर होता है।

हीरे की कीमत कहने वालों के गुण एवं दोष

कर्मज्ञो लघुपाणिरर्थविमुखः शास्त्रप्रवीणो गुणी
निःसन्दिग्धमतिर्विदेशविधिविन्मौल्यप्रयोक्ता भवेत्।

अज्ञानादविचार्य मौल्यमधमः कुर्यान्मणेः कुत्सितं
कुष्ठी सोऽत्र भवेदमुत्र स पुनर्गच्छेन्महारौरवम् ॥११२॥

१. कर्मज्ञः=जो व्यक्ति हीरे की कीमत जानता हो, २. लघुपाणिः=जिसके द्वारा हीरा बेचा गया हो अर्थात् ग्राहक के हाथ में दिया गया हीरा गुणकारी हो, ३. अर्थविमुखः=बीच में कपटभाव न रखते हुये अर्थात् कमीशन आदि न लेकर कार्य करने वाला. ४. शास्त्रप्रवीणः=हीरे के सम्बन्ध में तथा सभी रत्नों से सम्बन्धित शास्त्र (ग्रन्थों) का अध्ययन करने वाला, ५. गुणी=ऊहा-पोह तर्क-वितर्क करने में कुशल अर्थात् हीरा के सम्बन्ध में उसके सभी गुण-दोष-खान-देश, जाति, मूल्य आदि का ज्ञान रखने वाला, ६. निःसंदिग्धमति=अनेक रत्नों के खरीद-विक्री में प्रत्युत्पन्नमति वाला, ७. विदेश-विधिविद्=देश-विदेश की भाषा और विदेशों में हीरा का क्या मूल्य है, देश के अन्य भाग में हीरा का क्या मूल्य है आदि बातों का ज्ञाता। इस तरह सात गुणों से युक्त मनुष्य को ही हीरे का मूल्य कहना चाहिये।

इसके अतिरिक्त बिना विचारे अथवा उपर्युक्त सात गुणों को जाने बिना हीरा आदि मणियों का मूल्य-अधम या कुत्सित करने या कहने वाला व्यक्ति इस लोक में कुष्ठ रोग से पीड़ित हो जाता है पर लोक में रौरव नरक को प्राप्त करता है।

अंगूठी आदि आभूषणों में हीरा लगाने का प्रकार

यत्स्यादङ्गममुष्य निम्नमुदितं सद्भिः शिरस्तत्पवे-
विस्तीर्णं तु तलं ततः स शिरसा योज्योऽङ्गुलीयादिषु।

जिस हीरे का नीचे का भाग जो शरीर को स्पर्श करने हेतु आभूषण में जड़ाया जाता है वह उस रत्न का शिर भाग कहा जाता है, जो भाग चौड़ा हो उसे तल भाग कहा जाता है। अंगूठी आदि में हीरा शिर की ओर से लगाया जाता है तल की ओर से नहीं।

हीरक परीक्षा विधिः

वामं वामविलोचनः करतलं विस्तार्य तस्मिन् पविं
तर्जन्या परिचालयेदवहितः प्रायस्तलेन स्थितः ॥११३॥

हीरे का गुणी, (रत्नविद्–जौहरी) अपने बायें हाथ की हथेली फैलाकर उस पर हीरे के टुकड़े (अच्छी तरह से पालिश्ड हीरे) को रखे और दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली से उस हीरे को घुमावे तथा तल एवं निम्न भाग से स्थित कर (वामविलोचनः=बक्रदृष्टिः सन्नेव) अपनी बक्रदृष्टि से गुण दोषों को देखे।

हीरे की परीक्षामण्डली मे प्रवेश की योग्यता

जातिर्दोषगुणौ खनिर्गिरिकथे रङ्गोपरङ्गौ छवि-
मौल्यं चेति दशप्रकारमशनेर्जानाति यो लक्षणम् ।
बाह्याभ्यन्तरतः प्रविष्ट इव स स्याच्छास्त्रतो मण्डली
तेषां संसदमाह चार्यविबुधः श्रीमण्डलीं मण्डली ॥ ११४ ॥

१. हीरे की जाति, २. हीरे का दोष, ३. हीरे का गुण, ४. हीरे की खान, ५. हीरे का पर्वत (खोद कर जिन पर्वतों से हीरा प्राप्त होता है) ६. हीरे का इतिहास, ७. हीरे का श्वेतादिरङ्ग, ८. हीरे का उपरंग (नील वर्णादि) ९. हीरे की कान्ति, १०. देश-विदेशों में हीरे का मूल्य, इस तरह दश प्रकार के हीरे के लक्षणों को जो व्यक्ति जानता है वही हीरक परीक्षा मण्डली में प्रवेश के योग्य हो सकता है। अर्थात् हीरक परीक्षा मण्डली का सदस्य बन सकता है। जिसने शास्त्र के अनुसार बाह्य और आभ्यन्तर रूप से हीरे का विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिया हो वैसे अनेक हीरे के परीक्षक जहाँ इकट्ठे हों उस सभा का नाम आचार्यों ने श्री मण्डली अर्थात् रत्न परीक्षकों की सभा कहा है।

हीरे की परीक्षा मण्डली में प्रवेश की अयोग्यता

हीनाङ्गः प्रविशेन्न तां न पतितो नो वाऽन्त्यजो नाबला
भाण्डाद्यैरिह मौल्यमल्पमधिकं प्रोक्तं न दोषाय तत् ।
व्युत्क्रम्योत्तममध्यमाधमविपर्यासेन यद्यत्तथा
स्नेहाल्लुब्धतया तु संसदि पुनः कुष्ठी भवेन्मण्डली ॥ ११५ ॥

हीरे (रत्नों) की परीक्षक मण्डली में हीन अङ्ग (अपङ्ग-हाथ-पैर-आँख-नाक-कान-अंगुली आदि कोई भी अङ्ग से हीन व्यक्ति) वाले व्यक्ति, पतित (जाति भ्रष्ट या जाति से बहिष्कृत-अपराधी-पापी) व्यक्ति, अन्त्यज (चाण्डाल) और स्त्रियों को सम्मिलित नहीं करे। क्योंकि वहाँ पर भाण्ड आदि से निर्धारित किया हुआ न्यूनाधिक मूल्य दोषकारी नहीं होता है। इसके विपरीत रत्न परीक्षक सभा में बैठा हुआ हीरे का सच्चा परीक्षक (जौहरी) यदि किसी के स्नेह या लोभ में आकर उत्तम-मध्यम-अधम हीरे का मूल्य विपरीत कर डाले तो वह परीक्षक कुष्ठ रोग से पीड़ित हो जाता है।

अकेले एक आदमी हीरा की परीक्षा नहीं करे

नैको मौल्यविचारणां विरचयेन्नैकः परीक्षेत वा
भ्रान्तेः पौरुषधर्मतस्तु कृतके मुह्यन्ति सुज्ञा मणौ ।

शाणक्षारविलेखनेन विलिखेत्सन्देहमन्ये पुन-
र्लिख्यन्ते कुलिशेन हन्त कुलिशं केनापि नो लिख्यते ॥११६॥

अन्य विशेषज्ञों की सहायता के बिना किसी एक विशेषज्ञ व्यक्ति को अकेले ही हीरा की परीक्षा एवं उसकी कीमत नहीं कहनी चाहिये। इस कार्य में अकेले होने से गलती या भ्रम होना सामान्य बात है क्योंकि भ्रम-प्रमादादि पुरुष के धर्म हैं। यह मणि का विषय है। हीरे की परीक्षा करते समय बुद्धिमान् मनुष्य का कर्तव्य है कि वह शाण पर घिस कर तथा क्षार से विलेखन करके अपना सन्देह दूर कर ले। अन्य रत्नों की परीक्षा हीरा द्वारा उन रत्नों को लेखन कर की जाती है। अर्थात् हीरा को अन्य रत्नों पर घिसने से अन्य रत्न विकृत हो जाते हैं, काटे भी जाते है। किन्तु संसार के किसी भी ज्ञात द्रव्यों से हीरा पर नहीं लिखा (घिसा) जा सकता है।

विमर्श—यहाँ पर आचार्य श्री बिन्दु ने हीरा का शोधन मारणादि की विधि तथा हीरक भस्म के गुणों का कोई उल्लेख नहीं किया है जब कि रस-शास्त्रीय कार्यों में इसका ही उपयोग था, अस्तु ! जितना कुछ इन्होंने लिखा है उतना ही बहुत है।

अन्य आचार्य श्री सोमदेव ने हीरक भस्म के गुण इस प्रकार बताया है। यथाह—

आयुष्प्रदं झटिति सद्गुणदं च वृष्यं
दोषत्रयप्रशमनं सकलामयघ्नम् ।
सूतेन्द्रबन्धवधसद्गुणकृत् प्रदीपि
मृत्युञ्जयेदमृतोपमयेव वज्रम् ॥
(रसेन्द्रचूड़ामणिः १२।२६)

श्रेष्ठ मोती के लक्षण एवं मूल्य

स्वच्छं ह्लादि लघूदकद्युतियुतं मुक्ताफलं किञ्चन
स्थूलं स्निग्धमतीवनिर्मलमिलासूनु प्रकाशं सदा ।
आम्नायोदितमस्य मौल्यमवनौ [1]तोलद्वयीजघ्नको
राशिर्हेमकृतः कृतस्तदधमं वा मध्यमं जायते ॥ ११७ ॥

मोती स्वच्छ हो, आह्लाद (प्रसन्नता) उत्पन्न करने वाला हो, हलका हो, जल की कान्ति से युक्त हो अर्थात् पानीदार हो, कुछ बड़ा हो, स्निग्ध हो, अत्यन्तनिर्मल हो, गोल हो, तथा इरावान्, समुद्रः=तस्य सूनुः चन्द्र इति। अर्थात् चन्द्रमा जैसा प्रकाशित होने वाला। शास्त्रीय प्रमाण के अनुसार दो तोले वजन

१. मूल में "तालद्वयीजघ्नकः" ऐसा पाठ है, जिसका अर्थ नहीं ज्ञात होता है।

का एक उत्तम बड़ा मोती का मूल्य १ हेमराशि के बराबर होगा। इसके अतिरिक्त जो मोती प्राप्त होते हैं वे अधम या मध्यम कोटि के कहलाते हैं।

विमर्श—श्रेष्ठ मोतियों के लिये सोमदेवादि आचार्यों ने भी इसी प्रकार के वर्णन किये है। यथाह—सोमदेवः—

ह्लादि श्वेतं लघु स्निग्धं रश्मिवन्निर्मलं महत्।
ख्यातं तोयप्रभं वृत्तं मौक्तिकं नवधा शुभम्॥ (र० चू० म० १२)

अपि चाह यशोधरः—

ह्लादि श्वेतं रश्मिवन्निर्मलं च वृत्तं ख्यातं मौक्तिकं तोयभासम्।
स्निग्धं तौल्ये भारवद्यन्महच्च लिङ्गैरेतैर्लक्षितं तच्च शुद्धम्॥ ८॥
(रसप्रकाशसुधाकर ७)

अपि चाह आचार्य माधवः—

नक्षत्राभं वृत्तमत्यन्तमुक्तं स्निग्धं स्थूलं निर्मलं निर्व्रणं च।
न्यस्तं धत्ते गौरवं यत्तुलायां तन्निर्मौल्यं मौक्तिकं सौख्यदायि॥
(आयु० प्रकाश ५।९५)

आचार्य वराह मिहिर के अनुसार मोती के मूल्य का निर्धारण इस प्रकार है।

यथा—माषकचतुष्टयधृतस्यैकस्य शताहता त्रिपञ्चाशत्।
कार्षापणा निगदिता मूल्यं तेजोगुणयुतस्य॥ ९॥
माषकदलहान्यातो द्वात्रिंशद्विंशतिस्त्रयोदश च।
अष्टौ च शतानि शतत्रयं त्रिपञ्चाशता सहितम्॥ १०॥
पञ्चत्रिंशं शतमिति चत्वारः कृष्णला नवतिमूल्याः।
सार्धास्तिस्रो गुञ्जाः सप्ततिमूल्यं धृतं रूपम्॥ ११॥
गुञ्जात्रयस्य मूल्यं पञ्चाशद्रूपका गुणयुतस्य।
रूपकपञ्चत्रिंशत्त्रयस्य गुञ्जार्धहीनस्य॥ १२॥
(बृहत्संहिता ८०)

मोती के दोष

दोषान् पञ्च लघून् गुरूंश्च चतुरः षट् चैव दोषेतरान्
छायास्त्रित्वमिता गृणन्ति सुधियो मुक्तामणौ ते पुनः।
दीर्घं पार्श्वकृशं [1]त्रिवृत्तमपि च त्र्यस्रं [2]ततश्चाविलं
पञ्चैते खलु मौक्तिकेषु गदिता दोषास्तु साधारणाः॥ ११८॥

मोतियों में पांच हल्के दोष, चार बड़े दोष छः अन्य दोष होते हैं और तीन प्रकार की छाया होती है। ऐसी व्यवस्था उनके विद्वान् विशेषज्ञों ने परीक्षा के लिये

१. "त्रिवृद्धमपि" पाठ भेदः। २. "ततः कापिलं" इति पाठ भेदः।

की है। इनके अतिरिक्त मोतियों में पांच साधारण दोष और भी कहे गये हैं। यथा—१. लम्बा, २. पार्श्वमें पतला, ३. तीन तरफ से गोल अथवा त्रिवृद्धम् के पक्ष में तीन तरफ से बड़ा, ४. तीन धार वाला, और ५. आविल का अर्थ गदला—हलके काले रंग का निष्प्रभ आदि अर्थ होता है। कापिलं के अर्थ में कपिवर्णं लाति इति कपिलं अर्थात् बन्दर के रंग वाला, लाल धूसर मिश्रित वर्ण का होता है।

विमर्श—आचार्य सोमदेव ने अग्राह्य एवं दुष्ट मोती के लक्षण इस प्रकार से बताया है। यथा—

रूक्षाङ्गं निर्जलं श्यामं ताम्राभं लवणोपमम्।
अर्धशुभ्रं च विकटं ग्रन्थिलं मौक्तिकं त्यजेत्॥ ९॥
(रसेन्द्रचूडामणिः १२)

आचार्य श्री यशोधर ने भी प्रायः इसी प्रकार कहा है। यथा—

रूक्षाङ्गं चेन्निर्जलं श्यावताम्रं चार्धं शुभ्रं ग्रन्थिलं मौक्तिकं च।
क्षाराभासं वैकटं युग्मकं च दोषैर्युक्तं सर्वथा त्याज्यमेभिः॥ ९॥
(रसप्रकाशसुधा० ७)

आचार्य माधव ने भी इसी तरह के लक्षण अग्राह्य मोतियों के लिये कहा है। यथा—

यद्विच्छायं मौक्तिकं व्यङ्गकायं शुक्तिस्पर्शि रक्ततां चाति धत्ते।
मत्स्याक्षीकं रूक्षमुत्तानिम्नं नैतद्धार्यं धीमताऽसौख्यदायि॥
(आयुर्वेद प्रकाश ५।९६)

मोती के बृहद्दोष

नाम्नैवोदितलक्षणाः पुनरमी विच्छिन्नरुग्योगिता-
दौर्भाग्यप्रभुताविनाशलघुताकौलीनताकारिणः।
शुक्तिस्पर्शनमत्स्यनेत्रजठराकारातिरक्ताङ्कताः
श्वित्रक्रोशदरिद्रतामृतिकरा दोषा बृहन्तस्त्वमी॥ ११९॥

कुछ ऐसे भी मोती हैं जो कि नाम लेने से ही उनके लक्षण पहचाने जाते हैं और धारण से भिन्नता, रोग, दुर्भाग्य, प्रभुता का विनाश, अर्थात् स्वामित्व भाव का विनाश, हल्कापन और कौलीनता कारक अर्थात् युद्ध या झगड़ा कराने वाला है। तथा शुक्ति में चिपक कर रहने वाले, मछली के नेत्र और पेट के समान दिखाई देने और अत्यन्त लाल वर्ण के मोती को धारण करने से श्वेत कुष्ठ, चिल्लाना=चीत्कार करना, अत्यधिक दरिद्रता और मृत्यु को उत्पन्न करता है। ये मोती के बहुत बड़े दोष हैं। अर्थात् ऐसे मोती को धारण नहीं करना चाहिये।

चार दूषित मोतियों में शस्ताशस्त्र ज्ञान

तेष्वन्त्यौ विशदौ स्वशुक्तिसदृशत्वाद्यो द्वितीयस्ततो
मत्स्याक्षच्छविलाञ्छनः पुनरमी शस्ता न मुक्ताफले ।

इन चार प्रकार के मोतियों में से अन्तिम के दो मोती मछली के पेट के आकार के तथा चौथा अत्यन्त लाल वर्ण के ठीक होते हैं, किन्तु पहला अपनी शुक्ति के समान तथा दूसरा मछली की आँख जैसे मोती अच्छे नहीं होते हैं ।

मोती के छः गुण तथा उनके धारण से पुण्य

दीप्तिगौरववृत्तताविमलतासुस्निग्धताकान्तताः
स्युः षट् शुक्तिमणौ गुणा इति गुणैर्युक्तं पुनर्मौक्तिकम् ॥१२०॥
यः कण्ठे बिभृयात्स सप्तजनुषामंहः समाप्तिं नये-
च्छायास्तु त्रिविधाः स्मृता मधुसिताश्रीखण्डखण्डश्रियः ।
वृत्तस्थूलगुरूरुरुक्छुचि शुभं नीवीं तु यत्प्राग्नुया-
त्सत्यं त्वत्र तुलामुशन्ति कवयो जातिस्पृशं मौक्तिकम् ॥१२१॥

शुक्ति से प्राप्त मोती में दीप्ति (प्रकाश), गुरुता, वृत्तता = (गोल) स्वच्छता, स्निग्धता और कान्ति ये छः गुण होते हैं । इन गुणों से युक्त मोतियों को जो मनुष्य अपने कण्ठ में धारण करता है उसके सात जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं । "समस्त" के अर्थ में सभी जन्मों के या सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । इन मोतियों की छाया तीन प्रकार की होती है, मधु, मिश्री और चन्दन के टुकड़ों जैसी शोभा से युक्त ।

इनमें जो मोती गोल, बड़ा, भारी हो वह शुभ कहा गया है । इसी को धनिक मनुष्य नीवी = मूलधन, पूंजी की तरह मूल सम्पत्ति करके रखते हैं । जो मोती जातिवन्त (श्रेष्ठ) होते हैं उसी को रत्नविद् तराजू पर तौलते हैं अन्यों को नहीं ।

मोतियों की तुलामान

गुञ्जाद्वित्रियवाङ्कुवेदिह पुनर्माषश्चतुर्भिश्च तैः
शाणः शाणयुगात्कलञ्ज उदगान्निष्कस्तदेकादशात् ।

२-३-यव की १ गुञ्जा, ६ गुञ्जा की १ माशा, ४ माशे की १ शाण, २-शाण १ कलञ्ज और ११ कलञ्ज का १ निष्क होता है ।

मोतियाँ की आठ योनियाँ

अष्टौ मौक्तिकभूमयः करिकिरित्वक्सारमत्स्याम्बुमु-
क्कम्बूरोगतिशुक्तयोऽत्र चरमोत्पन्नं पुनर्विश्रुतम् ॥ १२२ ॥

मोतियों की आठ प्रकार की योनियाँ है । भूमयः=योनयः, १. करिः = हस्ति, २. किरिः = वराहः, ३. त्वक्सारः = वंशः, ४. मत्स्यः = मीनः, ५. अम्बुमुच् = मेघः, ६. कम्बुः = शंख, ७. उरोगति = सर्पः, ८. शुक्ति = मुक्तागृहं । अर्थात्-हाथी, सूयर, बाँस, मछली, मेघ, शंख, साँप और सीप इस प्रकार इनसे यदा-कदा मोती प्राप्त होते हैं । बांस से प्राप्त वंशलोचन को भी मोती की संज्ञा तथा मेघ से ओले पात को भी मोती की संज्ञा आचार्यों ने दी है । आजकल शुक्ति से उत्पन्न मोती ही प्रसिद्ध है ।

विमर्श— अन्य आचार्यों ने मुक्तायोनि के सम्बन्ध में लिखा है । यथाह वराह मिहिरः स्वग्रन्थे ।

द्विपभुजगशुक्तिशंखाभ्रवेणुतिमिसूकरप्रसूतानि ।
मुक्ताफलानि तेषां बहुसाधु च शुक्तिजं भवति ॥

(बृहत्संहिता ८०।१)

अपि च—

शुक्तिः शंखो गजः क्रोडः फणी मत्स्यश्च दर्दुरः ।
वेणुश्चाष्टौ समाख्याताः सुज्ञैर्मौक्तिकयोनयः ॥

(आयु० प्रकाश ५।१)

१—हाथी से प्राप्त मोती के लक्षण

यद्दन्तावलकुम्भसम्भवमदः पीतारुणं मन्दरुक्-
धात्रीदभ्रमथान्यरत्नमधमं काम्बोजकुम्भीन्द्रजम् ।

जो मोती मदजनित हाथियों के गण्डस्थल से उत्पन्न होता है वह पीतरक्त वर्ण का एवं मन्द तेज से युक्त होता है । कम्बोजदेश के हाथियों के मस्तक से उत्पन्न तथा आमला से भी अत्यन्त छोटा और अधम होता है ।

दन्तावलकुम्भसम्भवमदः मदजनितहस्तिगण्डस्थलोत्पन्नं, मन्दरुक् मन्दतेजः, धात्रीदभ्रतया आमलक्यात्सूक्ष्मतया ।

विमर्श—आचार्य श्री वराहमिहिर ने गजमुक्ता के लिये ऐसा कहा है ।

ऐरावतकुलजानां पुष्यश्रवणेन्दुसूर्यदिवसेषु ।
ये चोत्तरायणभवा ग्रहणेऽर्केन्द्वोश्च भद्रेभाः ॥ २० ॥
तेषां किल जायन्ते मुक्ताः कुम्भेषु सरदकोशेषु ।
बहवो बृहत्प्रमाणा बहुसंस्थानाः प्रभायुक्ताः ॥ २१ ॥
नैषामर्घः कार्यो न च वेधोऽतीव ते प्रभायुक्ताः ।
सुतविजयारोग्यकरा महापवित्रा धृता राज्ञाम् ॥ २२ ॥

(बृहत्संहिता ८०)

२—सूअर से प्राप्त मोती के लक्षण

एकाकी शिशुरेव निःस्पृहतया यः काननं गाहते
तस्यानादिवराहवंशजनुषः कोलस्य मूर्ध्नि स्थितम् ॥ १२३ ॥
कङ्कोलाकृतिमिन्दुकुन्दधवलं दैवादवाप्नोति चे-
न्मुक्तां यः समुपास्यते स निधिभिर्मर्त्यो धनाधीशवत् ।

भगवान् आदि वराह (शूकरावतार) के वंश में उत्पन्न जो जंगली सूअर का बालक वन में स्वच्छन्द रूप से घूमता हुआ अपने शरीर को बढ़ाते हुए यौवन (युवावस्था) को पार करता है। तो उस सूयर के मस्तक पर कंकोलफल (शीतलचीनी) के बराबर गोल तथा चन्द्रमा और कुन्द पुष्प जैसा शुभ्र कान्तिवाला मुक्ता रत्न यदि मनुष्य को प्राप्त हो जाय तो वह कुबेर के समान नवनिधियों से युक्त हो जाता है। कोलस्य = सूकरस्य।

विमर्श—आचार्य वराहमिहिर ने वराहज मुक्ता का वर्णन किया है। यथा—

दंष्ट्रामूले शशिकान्तिसप्रभं बहुगुणं च वाराहजम्।

(बृ. संहिता ८०।२३)

विमर्श—सूअर के मस्तक से प्राप्त होने वाला मोती जवानी के अतिक्रमण अर्थात् प्रौढावस्था में ही उत्पन्न होता होगा। हाथी भी प्रौढावस्था में ही मदोत्पन्न होता है और उसी समय उनके मस्तक में मोती उत्पन्न होते होंगे। वही अवस्था सभी प्राणियों में भी होती होगी। कङ्कोल शीतलचीनी को कहते हैं जो मरिच के जितना बड़ा होता है।

३—बाँस से प्राप्त मोती (वंशलोचन) के लक्षण

मुक्ताः सन्ति कुलाचलेषु करकाकान्तिद्रुहो वंशजाः
कर्कन्धूफलबन्धवो निदधते कण्ठेषु सिद्धाङ्गनाः ॥ १२४ ॥

कुलाचल नाम के पहाड़ों में उत्पन्न बाँसों से ओले की कान्ति से द्रोह करने वाला अर्थात् आकाश से भूमि पर गिरने वाले ओले (बर्फ विशेष) के जैसा श्वेत-गोल. तथा बेर फल जितना बड़ा मोती प्राप्त होते हैं जिन्हें सिद्धाङ्गनायें अपने कण्ठों में धारण करती हैं।

विमर्श—बंशज मुक्ता प्रायः वंशलोचन ही है। इसे ही यक्ष-किन्नर-सिद्धादि गन्धर्वाङ्गनाएँ घिस कर तथा उसमें छिद्र कर अपने कण्ठ में धारण करती होंगी। यह शुभ्रवर्ण का होता है। करका=वर्षोपला—ओला इति हिन्द्याम्।

विमर्श—आचार्य वराह मिहिर ने अपने ग्रन्थ में बांस से प्राप्त मुक्ता का वर्णन किया है। यथा—

"कर्पूरस्फटिकनिभं चिपिटं विषमं च वेणुजं ज्ञेयम्" ॥ (बृ. संहिता ८०।२८)

४—मछली से प्राप्त मोती के लक्षण

प्रोष्ठीगर्भभवः सुमौक्तिकमणिर्गुञ्जासमः पाटली-
पुष्पाभः स न लभ्यते भुवि जनैरस्मिन्कलौ पापिनि ।

प्रोष्ठी=मत्स्यः, मछली के पेट से उत्पन्न होने वाला मोती गुञ्जा के बराबर गोल तथा पाटलीपुष्प—अर्थात् गुलाब के फूल जैसा गुलाबी या लाल आभा (रङ्ग) से युक्त होता है। वह मछली वाला रक्तवर्ण का मोती इस पापी कलियुग में मनुष्यों को प्राप्त नहीं होता है।

मछली के पेट से उत्पन्न मोती का स्वरूप एवं वर्ण रक्त गुञ्जा जैसा भी कहा जा सकता है।

विमर्श—आचार्य वराह मिहिर ने भी मत्स्यज मोती का वर्णन किया है।

यथा—तिमिजं मत्स्याक्षिनिभं बृहत्पवित्रं बहुगुणं च। (बृ. संहिता ८०।२३)

५—मेघ से प्राप्त मोती के लक्षण

यन्मेघोदरसम्भवं तदवनीमप्राप्तमेवामरै-
र्व्योमस्थैरपनीयते विनिपतद्वर्षासु मुक्ताफलम् ॥ १२५ ॥
तिग्मांशोरपि दुर्निरीक्ष्यमकृशं सौदामिनी सन्निभं
देवानामपि दुर्लभं न मनुजाः स्युस्तस्य पात्रं पुनः ।

मेघ से उत्पन्न हुये मोती वर्षा के द्वारा आकाश से गिरकर जमीन पर गिरने से पहले ही गगनस्थ देव गणों द्वारा जल्दी से ही अपहरण कर लिये जाते हैं। वे मोती सूर्य से भी अधिक तेजस्वी होते हैं क्योंकि सूर्य को तो आदमी देखता ही है किन्तु इन मोतियों को मनुष्य नहीं देख सकता है ये मोती स्थूल एवं बिजली के जैसा चमकने वाले होते हैं। ये मोती देवताओं के लिये भी दुर्लभ होते हैं। अतः मनुष्य तो उन्हें प्राप्त करने में कदापि समर्थ ही नहीं होता है।

तिग्मांशु=सूर्यः, सौदामिनी=आकाश में चमकने वाली बिजली।

विमर्श—आचार्य वराहमिहिर ने भी अपने ग्रन्थ में मेघज मुक्ता का वर्णन किया है। यथा—

वर्षोपलवज्जातं वायुस्कन्धाच्च सप्तमाद् भ्रष्टम्।
ह्रियते किल खाद् दिव्यैस्तडित्प्रभ मेघसम्भूतम् ॥

(बृहत्संहिता ८०।२४)

६—शंख से प्राप्त मोती के लक्षण

शङ्खस्य श्रुतिहारिणो जलनिधौ ये वंशजाः कम्बव-
स्तेष्वन्तः किल मौक्तिकं भवति यत्तच्छुक्रतारानिभम् ॥ १२६ ॥

कापोताण्डसमं सुवृत्तमकृशश्रीकं सुरूपं लघु
स्निग्धं स्पर्शपवित्रमत्र न पुनर्मर्त्यैस्तदासाद्यते।

कानों में अपने शब्द माधुर्य से आनन्द उत्पन्न करने वाले समुद्र में बड़े शंखों के जो वंशज होते हैं उनमें शुक्रतारा के समान चमकदार मोती होता है। ये मोती कबूतर के अण्डे के समान श्वेत, गोल, बड़े, अत्यन्त तेजस्वी, सुन्दर, हल्का, स्निग्ध और स्पर्श करने मात्र से पवित्र करने वाला होता है। यह मोती भी मनुष्यों को नहीं प्राप्त हो सकता है। अर्थात् अलभ्य है।

विमर्श—आचार्य वराहमिहिर ने भी शंखज मुक्ता का वर्णन किया है। यथा—

"शंखोद्भवं शशिनिभं वृत्तं भ्राजिष्णु रुचिरं च" (बृ० संहिता ८०।२९)

७—साँप से प्राप्त मोती के लक्षण

शेषस्यान्वयिनां फणासु फणिनां यन्मौक्तिकं जायते
वृत्तं निर्मलमुज्ज्वलं शशिरुचि श्यामच्छवि श्रीकरम्॥ १२७॥
कङ्कोलाकृति कोटिकोटिसुकृतैः प्राप्नोति चेन्मानवः
स स्याद्वाजिगजाधिपो नृपसमो जातोऽपि नीचे कुले।
आस्ते सद्मनि चेत्स पन्नगमणिस्तं यातुधानामरा
हर्तुं रन्ध्रमवेक्षते तदितरः कुर्यान्महाशान्तिकम्॥ १२८॥

शेषनाग के वंश में होने वाले सर्पों के फणों में जो मोती होता है वह गोल, निर्मल, उज्ज्वल, चन्द्रमा जैसा शोभावाला, श्यामछवि (श्याम वर्ण का दिखाई देने वाला) और लक्ष्मीप्रद होता है।

इनके फल—कंकोल जैसी आकृति वाला अर्थात् शीतलचीनी के बीज जितना बड़ा तथा उपर्युक्त लक्षणों वाला सर्पज मोती करोड़ों सुकर्म करने से कदाचिद् मनुष्य को प्राप्त हो जावे, तो वह मनुष्य नीच कुल में उत्पन्न होने पर भी राजा के समान घोड़े और हाथियों का स्वामी हो जाता है। वह सर्पमणि (मोती) यदि किसी के घर में हो तो राक्षस एवं देवतागण उसे अपहरण (ले लेने की इच्छा) की इच्छा से अहर्निश निरन्तर अवसर समय छिद्र देखते रहते हैं। अतः इसके लिये विधि सम्मत शान्ति करावे और ऐसी लापरवाही न करे जिससे यह रत्न छिन जाय। सतत इसकी रक्षा करें।

विमर्श—आचार्य वराहमिहिर ने भी सर्पज मुक्ता का वर्णन किया है।

"तक्षकवासुकिकुलजाः कामगमा ये च पन्नगास्तेषाम्।
स्निग्धा नीलद्युतयो भवन्ति मुक्ताः फणस्यान्ते॥"
(बृ० संहिता ८०।२५)

सर्पज मुक्ता की परीक्षा—

शस्तेऽवनिप्रदेशे रजतमये भाजने स्थिते च यदि।
वर्षति देवोऽकस्मात् तज्ज्ञेयं नागसम्भूतम्॥ २६॥

सर्पज मुक्ता के गुण—

अपहरति विषमलक्ष्मीं क्षपयति शत्रून् यशो विकाशयति।
भौजङ्गं नृपतीनां धृतमकृतार्घं विजयदं च॥ २७॥
(बृ. संहिता ८०)

८—शुक्ति से प्राप्त मोती के लक्षण

वज्राघातविघट्टिताद्बलमुखाद् भ्रष्टाः पुनर्ये द्विजाः
क्षारोदन्वति यत्र तत्र पतितास्ते ते भवन्नाकराः।
आदायः पृथुबर्बरो जलनिधौ स्यादारलाटस्ततो
नाम्ना सिंहलकोर्मिजौ तदुपरि स्यात्पारसीकोऽपरः॥ १२९॥
अत्रोदन्वति शुक्तिजीवजठरक्रोडैककोणस्थिताः
स्वातीशम्बरबिन्दवः परिणमन्त्यक्लिन्नमुक्तातया।
सुस्निग्धं मधुवर्णमुत्तमरुचि स्यात्सिंहले मौक्तिकं
स्निग्धं पीतरुगिन्दुबिम्बरुचिरं स्यादारलाटोद्भवम्॥ १३०॥
[1]स्वच्छं स्निग्धमतीव बन्धुरतरं स्यात्पारसीकोद्भवं
रूक्षं किञ्चन वर्णसंकरयुतं स्याद्बार्बरं मौक्तिकम्।
शोणं तूर्मिजसम्भवं विद्रुतिस्निग्धं तथाऽऽदायजं
चातुर्वर्ण्यहितं[2] सुलक्षणमतिश्लक्ष्णं कविश्रीधरम्॥ १३१॥
षट्स्वेतेष्वपि रुक्मिणीव जगति ख्यातिं गता रुक्मिणी-
नाम्ना शुक्तिरनीदृगुत्तमगुणा सिन्धौ समुज्जृम्भते।
तस्या गर्भभवं तु कुङ्कुमनिभं सर्वासु जातिष्वपि
श्रेष्ठं भूरिगुणं वदन्ति कृतिनः श्रेयस्करं तद्भवेत्॥ १३२॥

शुक्ति से उत्पन्न मोतियों के लक्षण एवं उत्पत्ति स्थान—जिस समय देवेश्वर इन्द्रदेव ने अपने वज्र से "बल" नामक राक्षस को मारा था। उस समय वज्र के प्रहार से बल के दांत टूट कर समुद्र में जिन स्थानों पर गिरे, उन्हीं स्थानों पर मोतियों की खान हो गई। अर्थात् वही से मोती प्राप्त होने लगे। जैसे कि—आदायः, पृथुबर्बर, आरलाट तथा सिंहल (श्रीलंका) के समुद्रों में इसके बाद पारसीक (ईरान) के समुद्रों में मोतियों की प्राप्ति होती थी।

१. "श्वेतं" इति पाठ भेदः। २. "युतं" इति पाठ भेदः।

यहाँ पर उपर्युक्त समुद्रों की शुक्ति के उदर के बीच एक कोण में स्वाती नक्षत्र में वर्षा के जितने जल बिन्दु गिरते हैं वे सभी जल बिन्दुयें अत्यन्त निर्मल मोतियों के रूप में परिणत हो जाते हैं। सिंघल (श्रीलंका) देशीय समुद्री शुक्ति से प्राप्त मोती स्निग्ध, मधु के वर्ण जैसा तथा उत्तम कान्ति के होते हैं। आरलाट देशीय समुद्री सीप से प्राप्त मोती स्निग्ध, पीले रंग के और चन्द्रमा की कान्ति जैसे सुन्दर होते हैं।

पारसीक (ईरान) देशीय समुद्री शुक्ति से प्राप्त मोती स्वच्छ या श्वेत, अत्यन्त स्निग्ध रमणीय एवं गोल होते हैं। बर्बर देशीय समुद्री शुक्ति से प्राप्त मोती कुछ रूक्ष और कई रंगों से मिश्रित वर्ण के होते हैं। उर्मिज शुक्ति से प्राप्त मोती लाल और चिकने होते हैं। आदायः देशीय समुद्री शुक्ति से प्राप्त मोती श्वेत, पीत, रक्त एवं कृष्ण वर्ण के (चार्तुवण्ययुतं) और (चातुर्वर्ण्यहितं के पक्ष में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों के लिये धारण से हितकर होता है।) सुन्दर लक्षणों से युक्त, मृदु, अत्यन्त स्निग्ध और शुक्रतारे की जैसी कान्ति से युक्त कान्तिवाले ये मोती होते हैं।

कविश्रीधरम् = कविः = शुक्रः, तस्य श्रियं शोभांधारयति।

ये छः प्रकार के (आदायः, बर्बर आरलाट, सिंघल, उर्मिज और पारसीक देशीय) तद्देशीय समुद्रों की शुक्तियों में रुक्मिणी नाम की शुक्ति रुक्मिणी (कृष्ण-प्रिया) की भाँति जग प्रसिद्ध है। अन्य शुक्तियाँ इसके बराबर उत्तम गुण वाली नहीं होती हैं। इसके गर्भ में होने वाले मोती केशर के रंग जैसे होते है और सम्पूर्ण जाति के मोतियों में श्रेष्ठ एवं अत्यन्त गुणवाले होते हैं। ऐसा रत्नविदों का मत है।

विमर्श—आचार्य श्री बिन्दु ने पाँच ही स्थानों का वर्णन १२९ श्लोक में किया है। किन्तु आचार्य श्री वराहमिहिर ने मोती के आठ स्थानों का वर्णन किया है।

यथा— सिंहलकपारलौकिकसौराष्ट्रिकताम्रपर्णिपारशवाः।
कौबेरपाण्डचवाटकहैमा इत्याकरास्त्वष्टौ ॥ २ ॥
(बृहत्संहिता ८०)

इन आठों के लक्षण इस प्रकार कहें हैं। यथा—

बहुसंस्थानाः स्निग्धा हंसाभाः सिंहलाकराः स्थूलाः।
ईषत्ताम्राः श्वेतास्तमोवियुक्ताश्च ताम्राख्याः ॥ ३ ॥
कृष्णाः श्वेताः पीताः सशर्कराः पारलौकिका विषमाः।
न स्थूला नात्यल्पा नवनीतनिभाश्च सौराष्ट्राः ॥ ४ ॥
ज्योतिष्मत्यः शुभ्रा गुरवोऽतिमहागुणाश्च पारशवाः।
लघु जर्जरं दधिनिभं बृहद् द्विसंस्थानमपि हैमम् ॥ ५ ॥

विषमं कृष्णश्वेतं लघु कौबेरं प्रमाणतेजोवत्।
निम्बफलत्रिपुटधान्यकचूर्णाः स्युः पाण्डचवाटभवाः ॥ ६ ॥
(बृहत्संहिता ८०)

आचार्य वराह मिहिर ने छः वर्णों की मोतियों के लिये कहा है कि ये मोती विशेषकर छः देवताओं के निमित्त बने हैं। ये छः देवता हैं १. विष्णु, २. इन्द्र, ३. वरुण, ४. यम, ५. वायु और ६. अग्नि। यथाह—वराहमिहिरः

अतसीकुसुमश्यामं वैष्णवमैन्द्रं शशाङ्कसङ्काशम्।
हरितालनिभं वारुणमसितं यमदैवतं भवति ॥ ७ ॥
परिणतदाडिमगुलिकागुञ्जाताम्रं च वायुदैवत्यम्।
निर्धूमानलकमलप्रभं च विज्ञेयमाग्नेयम् ॥ ८ ॥
(बृ० संहिता ८०)

आचार्य श्री बिन्दु ने ९ रत्नों में से केवल हीरा और मोती दो ही रत्नों का परिज्ञान हमें कराया है किन्तु इनमें से किसी भी रत्न का शोधन-मारण एवं गुण दोषों का वर्णन नहीं किया है। अतः रत्नों के शोधन-मारण-गुण दोष के लिये आयुर्वेदीय रसशास्त्र नामक मेरी अन्य पुस्तक देखने का कष्ट करें।

रक्तपित्त निदान सम्प्राप्तिभेद

तीक्ष्णैरम्लविदाहिकोष्णलवणैः क्रोधैश्च संदूषितं
पित्तं रक्तमुदीरयेदिह बुधैस्तद्रक्तपित्तं स्मृतम्।
ऊर्ध्वाधो वदनाद्गुदाच्च मिलितं निर्याति यच्छ्लेष्मणा
संसृष्टं मरुताऽपि चन्द्रकयुतं कृष्णं न साध्यं वदेत् ॥ १३३ ॥

तीक्ष्ण, अम्ल, विदाहि, उष्ण एवं लवणाधिक पदार्थों का भोजन करने से और क्रोधाधिक होने से पित्त दूषित होकर अपने प्रमाण से अधिक बढ़ जाता है और रक्त में मिलकर रक्त को उद्रिक्त करता है। पण्डित लोग इसे रक्तपित्त रोग कहते हैं। इसके दो प्रकार हैं।

१. ऊर्ध्वग—२. अधोग। [ऊर्ध्वग् रक्तपित्त मुखनासामार्ग से परिलक्षित होता और उधोग रक्तपित्त गुदा-लिङ्ग-योनि मार्ग से। ऊर्ध्वग् रक्तपित्त में कफ से युक्त रक्त मुखमार्ग से निकलता है जो चन्द्रिका युक्त चमकदार मालुम पड़ता है। अधोग रक्तपित्त से गुदा-लिङ्ग-योनि मार्ग से वायु मिश्रित कृष्ण वर्ण का रक्त निकलता है। ऊर्ध्वग रक्तपित्त साध्य है और अधोग रक्तपित्त साध्य नहीं है।

रक्तपित्त की साध्यासाध्यता

ऊर्ध्वं यद्बलिनो नवं न कलुषं दोषैकसंश्लेषितं
निर्वेगं खलु रक्तपित्तमणुशो नोपद्रुतं साधयेत्।
काले चोर्ध्वगतं विरेकशमनैस्तिक्तैः कषायैः पुन-
र्याप्यं दोषयुगेन मिश्रितमधोभागेन यत्संवहेत् ॥ १३४ ॥

ऊर्ध्वग् रक्तपित्त से पीडित व्यक्ति बलवान् हो, रोग नया हो, अधिक क्लान्त न हो, एक दोष से युक्त हो, वेग रहित हो, अल्पमात्रा में रक्तपित्त निकलता हो और उपद्रव से रहित हो तव हो रक्तपित्त साध्य कहा जाता है।

बाद में ऊर्ध्वग् रक्तपित्त विरेचन से और तिक्त एवं कषाय रसयुक्त द्रव्यों के सेवन से शान्त होता है। अधोमार्ग से रक्त निर्गमन होने वाला रक्तपित्त दो दोषों से युक्त और याप्य है।

रक्तपित्त की चिकित्सा

तस्मिन्वान्तिशमौ तु मृष्टमधुरं सर्वं हितं तर्पणं
पेयाद्यं शुभलाजमिक्षुजरसं सर्वत्र संसर्जनम्।
ज्ञात्वा कालबलाबलं त्वनुबलं दोषस्य दूष्यस्य च
क्षैण्यं सर्वविकारशातनविधौ ज्ञेयं सुधीभिः पुनः ॥ १३५ ॥
दद्यादत्र वसन्तराजयुगलं पञ्चामृतां पर्पटीं
गन्धस्यापि रसायनं मधुसितायुक्तं वसन्ताभिधम्।
वासाकल्ककषायपाकगुटिकासर्पिः कणामोदकं
लावैणादिरसांश्च शीतमधुरान्मन्थान्भिषक पाययेत् ॥ १३६ ॥

अधोग रक्तपित्त के रोगी को वमन से शान्ति मिलती है। रुचिकर, मधुर, तर्पक, लाजमण्ड, इक्षुरस आदि सभी प्रकार के पेय हितकर है, इसी प्रकार तर्पण करते हुये संसर्जनक्रम करे। बुद्धिमान् एवं कर्मकुशल विद्वान् वैद्य देश, काल, रोगी के बलाबल, अनुबल, दोष और दूष्य का ज्ञान एवं उसकी क्षीणता आदि की विधिवत् परीक्षा कर सभी विकारों की शान्ति के लिये विधिवत् चिकित्सा करे।

पुनः इस रोग में १. 'वसन्तकुसुमाकररस' २. 'वसन्तराजरस' नामक दोनों प्रकार की रसौषधियों का प्रयोग करे। 'पञ्चामृत पर्पटी' और गन्धकरसायन' का भी प्रयोग यहाँ पर मधु और चीनी के साथ करें। वासावलेह, वासापानक, वासाशर्बत, वासाक्वाथ, वासाघृत एवं वासापिप्पली मोदक का प्रयोग यहाँपर अत्यन्त हितकर है।

पथ्य—लावक पक्षी एवं मृग के मांस रस का प्रयोग यहाँपर हितकर है, शीत एवं मधुर रस युक्त, मन्थादि का पान यहाँपर लाभप्रद है।

रक्तपित्त में अपथ्य

यत्किञ्चिच्च विरोधि तक्रमतसीतैलप्रपक्वं सुरां
शाकं जागरणं व्यवायकटुकं तीक्ष्णं भृशं वर्जयेत्।

जो कुछ भी रक्तपित्त विरोधी आहार विहार (उष्ण-तीक्ष्ण-अम्ल-कटु-विदाहि-मद्यादि) तक्र, अतसी (तीसी) तैल, मे पक्व आहार, सुरा, शाक (पत्रशाक) रात्रि जागरण, मैथुन, कटुरस युक्त भोजन, तीक्ष्ण (मिर्चा) आदि का भोजन तुरन्त त्याग देना चाहिये।

कास के भेद

कासान् पञ्च समीरपित्तकफजान् द्वौ तु क्षयोरःक्षता-
त्तेषां स्वस्वनिदानतश्च निखिलां साध्यामसाध्याकृतिम् ॥ १३७ ॥

कास पाँच प्रकार के होते हैं।

१. वातज, २. पित्तज, ३. कफज, ४. क्षयज और ५. क्षतज (उरःक्षतजन्य)। उनमें अपने अपने कारणों से सभी कास साध्य और असाध्य भी होते हैं।

कास-श्वास-हिक्का की चिकित्सा

कुर्यात्कर्म तु शोधनादि बलिनः स्मृत्वा च पूर्वक्रमं
धूमं नावनमञ्जनक्रमयुतं गण्डूषसंस्वेदनम्।
भार्ङ्गीकण्टकिवासकोषणकणाशुण्ठ्यादिलेहांस्तथा
श्वासे, हिक्किषु तैलमात्रमधिकं कासघ्नमन्यत्पुनः ॥ १३८ ॥
क्षौद्रं सर्पिरिहेष्यते मृदुतरं संशोधनं पूर्ववत्
साध्यासाध्यविभाजनं तु चरकाज्ज्ञात्वा निदानादपि।
ताम्रं ताम्रजपर्पटीं मधुकणाश्रेष्ठायुतां सर्वदा
ज्ञात्वा दोषबलाबलं विमलदृक्पथ्यं ददीतोचितम् ॥ १३९ ॥

कास-श्वास एवं हिक्का रोग में पूर्व कर्म स्नेहन-स्वेदन को करते हुये बलवान् रोगियों में शोधन चिकित्सा अर्थात् वमन-विरेचन-बस्ति-नस्यादि कर्म करे। किन्तु श्वास रोग में धूम्रपान, नावन = नस्य, अञ्जन, गण्डूष और सम्यक् शोधन करें। भार्ङ्गी, कण्टकारी, वासा, मरिच, पीपर, सोंठ आदि से युक्त लेहों का प्रयोग करें। हिक्का रोग में तैल का अधिक प्रयोग करें। कास रोग में कासघ्न अन्य चिकित्सा करे। मधु एवं घृत यहाँ पर अधिक उपयोगी है। कास में मृदु संशोधन अवश्य करना चाहिये। इन रोगों में चरकमतानुसार—(रोग के) साध्यासाध्य का विभाजन करें। ताम्रभस्म या ताम्रपर्पटी, शहद, पिप्पली, त्रिफला के साथ मिला कर हमेशा दें। स्वच्छ बुद्धि या दृष्टि वाला वैद्य—रोगी के दोष-बलाबल को अच्छी तरह से जानकर उचित पथ्य की व्यवस्था करे।

राजयक्ष्मा के लक्षण

वान्तिः शोणितपूयतुल्यकफजा शैत्यं ज्वरः सर्वदा
कासः पीनसवह्निमान्द्यकृशता ध्वंसः स्वरस्यापि च।
ज्ञेयं यक्ष्मगदस्य चिन्हमखिलं, सत्त्वं बलं धातुजं
ज्ञात्वा संविदधीत भेषजविधिं साध्येत्वसाध्ये न तु ॥ १४० ॥

१. रक्त का वमन होना, २. पूय के जैसा कफ निकलना, ४. हमेशा ज्वर रहना, ५. कास होना, ६. पीनस होना, ७. अग्निमान्द्य होना, ८. शरीर कृश होना, ९. स्वर का नाश होना, ध्वंसः = विनाशः, (स्वरहानि स्वरभेदश्च)। ये ९ लक्षण सम्पूर्ण राजयक्ष्मा रोग के हैं। रोगी के सत्त्व बल, धातु का नाश आदि समझ कर साध्य रोगी के लिये भेषज-पथ्यापथ्य द्वारा चिकित्सा करे और असाध्य रोग समझकर उसकी चिकित्सा नहीं करे।

राजयक्ष्मा की चिकित्सा

दोषाढ्यस्य बलान्वितस्य वमनं शक्तस्य युक्तं पुनः
स्नेहस्वेदविधिं विधाय मधुरैः स्निग्धैर्यवाग्वादिभिः।
दद्याद्वान्तमनन्तरं सुसितया शम्याकवर्गेण वा
क्वाथेन त्रिवृतायुतेन मधुना सर्पिर्युतेनापि च ॥ १४१ ॥
ज्ञात्वा कोष्ठविशुद्धितामनु रसं यूषं च दद्यात्ततः
शाल्यन्नं लघु मुद्गषष्टिकयवान् गोधूमपूपान् लघून्।
आजं क्षीरघृतं च मांसरुधिरं लावैणताम्रान् शशान्
यूषान्मांसरसांश्च शाकनिचयान् युञ्ज्यात्सुहृद्यान् क्रमात् ॥१४२॥
प्रातर्दन्तविशुद्धये कटुरसान् शृङ्ग्यादिकान्कटफल-
क्वाथान् कण्ठविशुद्धयेऽथ बलिनो भार्ङ्ग्यादिकान् सज्वरे।
पश्चाद्धूमविधिं च नस्यकवलं लाक्षादिनारायणैः
सारण्यादिबलावरीमलयजैरभ्यक्तदेहः सुखैः ॥ १४३ ॥
स्नात्वा क्वाथजलैस्ततो मृगमदैः कर्पूरकाश्मीरकै-
र्भद्रश्रीभिरनुद्धतोऽगुरुभवैर्लिप्तश्च संधूपितः।
माल्यं रत्नमहौषधीगणचयं मन्त्रं च यन्त्रं क्रमा-
द्धार्यं बाहुशिरःसु सूर्यविनतः स्तोत्रैश्च मन्त्रैः शुचिः ॥ १४४ ॥
तीर्थेब्राह्मणवृन्दवन्दितरविश्चीर्णव्रतः शास्त्रतो
गोदानं महिषस्य दानमथवा लोहस्य ताम्रस्य वा।
रम्भां स्वर्णविनिर्मितां सुवसनैराच्छादितां दक्षिणा-
युक्तां श्रोत्रियदीनबन्धुविदुषे विप्राय दद्यात्सगाम् ॥ १४५ ॥

एवं पूर्वविधिं विधाय बहुशो वैद्यान् समाहूय वै
श्रेष्ठान् राजमृगाङ्कसेवनसमारम्भं प्रकुर्याद्गदी।
यद्वा वज्रमृगाङ्कमौक्तिकलघूंल्लोकेशसर्वेश्वरान्
सेवेतानुदिनं यथोक्तविधिना प्राशान्पुनश्च्यावनान् ॥ १४६ ॥
आगस्त्यांश्च पितामहेन गदितान्वासिष्ठपथ्यादिकान्
कासे पिप्पलिवर्धमानमसृजि क्षीणे च कूष्माण्डकान्।

अत्यधिक दोषों से युक्त और बलवान् एवं सशक्त रोगी में स्नेहन-स्वेदन विधि से तथा मधुर एवं यवागुओं के द्वारा शरीर को स्निग्ध-स्विन्न करके सम्यग् वमन करावे। संसर्जन क्रम के बाद, पुनः स्नेहन-स्वेदन करके आरग्वधादिवर्ग के क्वाथ में चीनी मिलाकर अथवा त्रिफला क्वाथ में शहद एवं घृत मिलाकर पीने को दें, इससे विरेचन होगा। सम्यक्कोष्ठ शुद्धि समझ कर बाद में मांसरस, मुद्गयूष देवे। पुनः अल्पमात्रा में साठी चावल के भात, मूंग की दाल, यव, गेहूँ का छोटा छोटा पुआ, बकरी का दूध, गोघृत, लावकपक्षी, कृष्ण एवं लालमृग और खरहे का मांस-रक्त या मांस रस दें। अनेक प्रकार के बथुआ, पालक आदि पत्र शाकों अथवा अन्य हृद्य भोज्य पदार्थों का भी क्रमशः सेवन करना चाहिये।

प्रातःकाल दाँत एवं मुख की शुद्धि के लिये कटु-तिक्त रसों से युक्त दातून (निम्ब-करञ्ज-सिहोड़-बब्बूल आदि) का प्रयोग करें। कर्कटशृङ्गी कट्फल के क्वाथ से गरारा कर कण्ठ विशोधन करें। बलवान् ज्वरयुक्त रोगी में भार्ङ्ग्यादिक्वाथ का प्रयोग करें। इसके बाद धूम्रपान विधि से धूम्रपान करावे, नस्य एवं कवल धारण करावें। पुनः लाक्षादि एवं नारायण तैल का सम्यग् अभ्यङ्ग कराकर प्रसारणी-बला-शतावरी और चन्दन के मिलित क्वाथ से स्नान करावें। कस्तूरी-कर्पूर और केशर भद्रश्री = मलयागिरि चन्दन (श्वेतचन्दन) का लेप एवं अगरु का सूक्ष्म चूर्ण का अवचूर्णन तथा धूपनादि कार्य से शरीर, स्थान एवं वातावरण को सुगन्धित करें। सुगन्धित पुष्पों की माला एवं रत्नों का धारण, महौषधिगण समूह का धारण, मन्त्र-यन्त्रों का क्रमशः धारण करे। तत्पश्चात् पवित्रमना भगवान् सूर्य के सम्मुख हाथों को शिर पर उठाकर विशेषनम्र (झुककर) होकर सूर्य-स्तोत्र तथा सूर्य मन्त्रों का पाठ तथा जाप करें। तीर्थ में ब्राह्मण समूह की वन्दना करते हुये अनुष्ठान पूर्वक शास्त्रीय रीति से भगवान् सूर्य का व्रत करे। गोदान अथवा भैंस का दान (दुग्ध के लिये ब्राह्मणों को दान करें) करे, लोह या ताम्र के पात्र दान करे। सोने की एक सुन्दरी स्त्री की प्रतिमा बनाकर सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत कर या आच्छादित कर दक्षिणा के साथ श्रोत्रिय (वेदपाठी) किन्तु गरीब एवं विद्वान् ब्राह्मण को गाय के साथ दान देवें। इस तरह उपर्युक्त विधान से

समारोह पूर्वक आयोजन करके, बहुत से वैद्यों को निश्चित रूप से आमन्त्रित करे, जिसमें श्रेष्ठ राजमृगाङ्क रस'' नामक रसौषधि का सेवन समारम्भ या शुभारम्भ रोगी करे। अथवा वज्रमृगाङ्करस, मौक्तिकमृगाङ्करस, लघुलोकनाथ रस, सर्वेश्वर रस प्रतिदिन यथोक्त विधि से सेवन करते हुये च्यवनप्राशावलेह और अगस्त्यावलेह को चाटे। या मेरे पितामह द्वारा निर्मित वसिष्ठहरीतकी का प्रयोग करे। कास होने पर वर्धमान् पिप्पली तथा रक्तस्रुति होने पर कूष्माण्डावलेह या कूष्माण्डखण्ड का प्रयोग करें।

कुछ सामान्य रोगों की रसचिकित्सा

कृच्छ्रे मेहयुते शिलाजतुरसं लक्ष्मीविलासद्वयं
मेहध्वान्तगजेन्द्रकेसरिरसं शुक्रक्षये गोलकम् ॥ १४७ ॥

पञ्चेषुं मदनाभिधं त्वतिस्रुतौ शंखोदरं पोटलीं
पाण्डौ लोहरसायनं ग्रहणिकारोगेषु चिन्तामणिम्।
गुल्मे शूलगदे त्वगस्त्यवटिकामग्नेः कुमारं तथा
शूलादौ जठरेषु शंखवटिकां शंखद्रवान् रेचकान् ॥ १४८ ॥

कुष्ठे श्वित्रगदे च तालकरसान् वातामये तालकं
सिन्दूरं रसपूर्वकं च विमलं कर्पूरसंज्ञं रसम्।
पुंदोषे च फिरङ्गवातजनितस्फोटे च सन्ध्यस्थिगे
वाते गन्धकविद्रुतिं रसयुतां यष्टि फिरङ्गाभिधे ॥ १४९ ॥

कर्पूरं रसपूर्वकं त्वथ वटीं क्षाराभिधां धूपनं
हिङ्गूलोत्थरसेन्द्रतालकभवं वेल्लन्तरुस्वेदनम्।

कष्टप्रद प्रमेह से युक्त रोगी में शिलाजतु' का प्रयोग, दोनों 'लक्ष्मीविलास रस', 'मेहध्वान्तरस', 'गजेन्द्रकेसरिरस' के प्रयोग से लाभ होता है! शुक्रक्षय में 'मदनपञ्चवाणरस', शुक्रातिस्रुति में 'शंखोदरपोटली', पाण्डु में 'लोहरसायन', ग्रहणी रोग में 'चिन्तामणिरस', गुल्म और उदरशूल में 'अगस्त्यवटी' एवं 'अग्नि-कुमाररस', शूल आदि उदररोग में 'शंखवटी', विबन्ध में 'शंखद्रावरस' कुष्ठ एवं श्वित्र रोग में 'तालरस' वातरक्त या वातरोग में 'तालसिन्दूर' 'रससिन्दूर' पुंदोष (क्लीबादि) और फिरङ्ग (Syphilis) रोग में 'रसकर्पूर' वातजन्य स्फोट एवं सन्ध्यस्थिवात में 'गन्धकद्रुति' के साथ 'रससिन्दूर' मिलाकर प्रयोग, फिरङ्ग रोग के लिये 'रसकर्पूर' या कर्पूरवटी का प्रयोग, 'क्षारधूपन' का प्रयोग, हिंगुलोत्थ पारद और शुद्ध ताल से उत्पन्न कष्ट में वेलन्तरु ६ ॥ वीरतरु से स्वेदन करे।

भैरविका वटी-१

पाठापारदगन्धकामृतलतामाक्षीकतालानलैः
काश्मीरीविषतिन्दुलाङ्गलिजटायष्ट्याह्वबोलौषधैः ॥ १५० ॥
कर्कोट्याऽपि च मोघया बृहतिकानिर्गुण्डिकावारिणा
क्षुण्णैः सप्तदिनं विभाव्य विहिता कोलास्थिदघ्नी वटी।
नाम्ना भैरविका जयेत्सविषमान् नूत्नज्वरान् स्वेदनात्

पाठा-शुद्धपारद-शुद्धगन्धक-गुडूचीकाण्ड-स्वर्णमाक्षिकभस्म-शुद्धताल-चित्रक-मूलत्वक्-गम्भारी-विषतिन्दु (कुपीलू) लाङ्गलीजटा (कलिहारी), यष्टिमधु, बोल, शुण्ठी इन १३ औषधों से प्रत्येक को १-१ भाग (१० ग्राम) लें। सर्वप्रथम शुद्ध पारद, गन्धक की कज्जली बना लें। तत्पश्चात् अन्य काष्ठौषधियों का कपड़छन चूर्ण कर लें। फिर एक बड़े खरल में पारद गन्धक की कज्जली में शुद्ध हरताल मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद माक्षिक भस्म मिलावें, तत्पश्चात् सभी काष्ठौषधों के चूर्ण को मिलाकर मर्दन करें। पुनः क्रमशः वन्ध्याकर्कोटी (खेखसा) स्वरस की भावना दें, तत्पश्चात् मोथा (विडङ्ग) क्वाथ की भावना दें, तत्पश्चात् कण्टकारी स्वरस और निर्गुण्डी स्वरस की १-१ या ३-३ बार भावना देकर कोलास्थि = बदरीफल की गुठली दघ्नी = प्रमाण अर्थात् छोटी जंगली बेर की गुठली प्रमाण की गोली बनाकर छाया शुष्ककर शीशी में संग्रहीत करें। इस गोली का नाम भैरविकावटी या भैरवीवटी है। यह वटिका पसीना लाकर (स्वेद कराकर) सभी प्रकार के विषम ज्वरों और नवज्वरों को नाश करती है।

चन्द्रवटी-२

ख्याता तद्वदियं च चन्द्रवटिका तापोजतिकानिलैः-॥ १५१ ॥
भूनिम्बामृतवल्लितालकबलिश्रेष्ठाविषापारदैः
दन्तीबीजकलिङ्गलाङ्गलिजटोशीरौषधैर्निर्मिताः।

भैरवीवटी की तरह इस "चन्द्रवटिका" का निर्माण करें। स्वर्णमाक्षिक भस्म, कुटकीचूर्ण, चित्रकमूलचूर्ण, किराततिक्त, गुडूची, शुद्ध हरताल, शुद्ध गन्धक, त्रिफलाचूर्ण, अतिविषाचूर्ण, शुद्ध पारद, शुद्ध जयपाल, इन्द्रयवचूर्ण, लाङ्गलीजटा, उशीरचूर्ण और शुण्ठीचूर्ण, प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग (समभाग) लें। सर्वप्रथम शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को अच्छी तरह से मर्दन कर कज्जली बनावें, पुनः उसमें शुद्ध हरताल और स्वर्णमाक्षिक भस्म क्रमशः मिलाकर मर्दन करें। तत्पश्चात् शेष सभी काष्ठौषधि चूर्णों को मिलाकर एक साथ मर्दन करें और जल की भावना देकर पूर्व प्रमाण (जंगली बेर की गुठली) जैसी २ रत्ती (२५० मि० ग्रा०) की वटी बनाकर छाया में सुखाकर शीशी में रख लें और ज्वरों में प्रयोग करें।

ज्वरहराख्य रसः-३

अंशाः षोडश भारश्रृङ्गभसितादष्टौ हलिन्यङ्घ्रित-
श्चत्वारो गरलाच्च गन्धदृषदो द्वौ पारदादेकतः ॥ १५२ ॥
ह्येकत्रिंशदमून् लवानिति चतुस्त्रिः श्रृङ्गवेराद्रसै-
रेकीकृत्य विमर्दितो ज्वरहरो नाम्ना रसः सिध्यति ।
गुञ्जायुग्ममुष्य पूर्वपयसा पीत्वाऽतितीव्रज्वरा-
त्तैलस्निग्धतनुः कदुष्णसलिलस्नातो दिनान्मुच्यते ॥ १५३ ॥
अद्यात्षष्ठिकभक्तदुग्धजमसावुल्लाघ एवाचिरं

मृगश्रृङ्ग भस्म १६ भाग, लाङ्गलीमूल चूर्ण ८ भाग, शुद्धवत्सनाभ ४ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग और शुद्ध पारद १ भाग इन सबों को मिलाकर ३१ भाग लें। सर्वप्रथम शुद्ध पारद एवं शुद्ध गन्धक की कज्जली बनावें, तत्पश्चात् शुद्ध वत्सनाभादि सभी द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें और आर्द्रक रस की (चतुस्त्रिः) सात बार भावना देकर छाया में सुखाकर चूर्ण रूप में शीशी में रख लें। इस प्रकार से ज्वरहररस नामक यह रसौषधि सिद्ध हो जाती है। इस ज्वरहररस' को २ रत्ती (२५० मि० ग्राम) की मात्रा में पूर्वपयसा = आर्द्रकस्वरस से लेने पर अतितीव्र ज्वर से पीडित व्यक्ति सन्ततादि ज्वरों से मुक्त हो जाता है। ततः तिलतैल से अभ्यङ्गकर सुखोष्ण जल से स्नान करना चाहिये। तत्पश्चात् साठी चावल का भातऔर दधि दोनों मिलाकर खाने से तत्काल ज्वर शान्त हो जाता है। षष्ठिकभक्त = साठी चावल का भात, दुग्धजं = दही, एतदुभयमद्यात् असावद्यात् = दोनों को मिलाकर खाने से, अचिरं = तत्कालं, उल्लाघः = निर्गतो गदात् इत्यमरः। इति स्पष्टार्थः।

अष्टयामिक वटी-४

चाङ्गेरीरजसः षडीशरजनीसिन्धूद्भवेभ्यश्च षड् ।
अंशा द्वादश निर्मिता इति गवां दध्ना विमर्द्यैकतो
बद्धा कोलशलाटुवत्त्रिदिवसादूर्ध्वं निपीतोष्णकैः ॥ १५४ ॥
यामैरष्टभिरष्टयामिकवटी छिन्द्यान्नवीनज्वरं

चाङ्गेरी (चुक्रिका) चूर्ण ६ भाग, शुद्ध पारद, २ भाग, हल्दी चूर्ण २ भाग, सैन्धव लवण २ भाग अर्थात् तीनों (पारद-हल्दी और सैन्धवलवण) का सम्मिलित छः भाग लें, जो कुल मिलाकर औषध १२ भाग होगा। इन चारो द्रव्यों को एक खरल में मिलाकर मर्दन करें। तत्पश्चात् गाय के दही के साथ सबों को मर्दन करके सुखा कर रख लें। ३ दिन के उपरान्त ज्वर रोग से पीडित व्यक्ति को कच्चा लघु जंगली बेर (२ रत्ती = २५० मि० ग्राम) के बराबर उष्णोदक के साथ देने से

(पान करने से) २४ घण्टे में नवीन ज्वर को नष्ट कर देता है। अष्टयाम = २४ घण्टे को कहते हैं। अतः इस रसौषधि का नाम ज्वरनाशन काल के नाम से कहा गया है।

आतङ्कान्तक रसः-५

हिङ्गुलो रसगन्धकौ त्रिसदृशं तिक्तारजः सप्तधा ।
शेफालीसलिलैस्तथाऽऽर्द्रकरसैः सम्भाव्य सम्पादितः
पीतः शर्करया सहार्द्रकरसैर्वल्लप्रमाणो रसः ॥ १५५ ॥
आतङ्कान्तक एष सत्यवचसा नागार्जुनेनोदितः
पक्वापक्वमजीर्णजीर्णमथवा हन्त्याशु तीव्रं ज्वरम् ।

शुद्ध हिङ्गुल १ भाग, शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, कुटकी चूर्ण ७ भाग लें। सर्वप्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बना लें। तत्पश्चात् शुद्ध हिंगुल मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें, पुनः कुटकी चूर्ण मिलाकर निर्गुण्डी पत्रस्वरस और आर्द्रक स्वरस की १-१ भावना देकर छाया में अच्छी तरह से सुखा कर औषधि को संग्रहीत कर लें। आतङ्कान्तकरस नाम की इस औषधि को ज्वर पीडित व्यक्तियों को २ से ३ रत्ती (२५० मि० ग्राम) की मात्रा से शर्करा १ माशा तथा आर्द्रक स्वरस १ चम्मच की मात्रा में मिलाकर पीने से पक्व-अपक्व अथवा जीर्ण-अजीर्ण ज्वर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ऐसा आचार्य नागार्जुन ने अपने अनुभव के द्वारा सत्य प्रमाणित होने पर कहा है।

आतङ्कः = ज्वरः, "ज्वरो विकारो रोगश्च व्याधिरातङ्क एव च" (चरकः) "आतङ्को रोगसन्तापशङ्कासु मुरजध्वनौ" इति मेदिनी। १ वल्ल = २ या ३ रत्ती को कहते हैं।

नवज्वरमुरारि रसः-६

एकः पारदतस्तथैव दरदाद्भागस्तथैको विषा-
द्वौ द्वौ गन्धकताम्रटङ्कणनभस्तिक्तावराभ्यः पृथक् ॥ १५६ ॥
द्व्यात्रीनलिकाग्नितीक्ष्णरजतात्तद्वत्तथैकोनका-
नंशांस्त्रिंशदमून्द्विरर्कपयसा द्विर्भृङ्गराजाम्भसा ।
द्वित्रिश्चित्रकवारिणा च दशधा दन्तीजबीजाम्भसा
त्रिः श्रेष्ठासलिलैर्विभाव्य विहितः कोलास्थिमात्रो रसः ॥ १५७ ॥
पुन्नागैर्मरिचैः सचोरकगुडैर्लीढो नवीनज्वरान्
जीर्णाजीर्णनवान्नवज्वरमुरारिर्नामको नाशयेत् ।

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध हिंगुल १ भाग, शुद्ध वत्सनाभविष १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, ताम्र भस्म २ भाग, टङ्कणक्षार २ भाग, अभ्रक भस्म २ भाग, कुटकी

चूर्ण २ भाग, त्रिफला चूर्ण २ भाग, स्वर्णक्षीरीमूल (चोक) २ भाग, नलिका चूर्ण २ भाग, चित्रक चूर्ण २ भाग, तीक्ष्णलोहभस्म २ भाग, और रजत भस्म २ भाग, लें। सर्व प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनावें। पुनः उसमें शुद्ध हिंगुल, ताम्र-भस्म, टङ्कण, अभ्रक, रजत, लौह भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। तत्पश्चात् शेष काष्ठौषधि चूर्णो को मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद मिश्रित इन औषध द्रव्यों में २ बार अर्कदुग्ध की भावना दें तथा २ बार भृंगराज स्वरस की भावना दें, चित्रक स्वरस या क्वाथ से २ या ३ बार भावना दें, जयपाल (दन्तीबीज) क्वाथ की १० भावना दें, और त्रिफला क्वाथ से ३ बार भावना देकर अच्छी तरह छाया शुष्क कर शीशी में संग्रहीत कर लें। नवीनज्वर, जीर्णज्वर, अजीर्ण-ज्वर से पीडित व्यक्ति को नागकेशर चूर्ण, मरिचचूर्ण, चोरकचूर्ण और गुड १-१ माशा के साथ इस "नवज्वरमुरारिरस" को जंगली छोटी बेर की गुठली के बराबर अर्थात् २-२ रत्ती (२५० मि० ग्राम) की मात्रा में लेने से ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

ज्वरप्रोत्थित रसः-७

तुल्यांशं बलिसूततालममलं संमर्द्य शुष्कं दिनं
विट्पञ्चाङ्गुलजम्भभृङ्गहपुषादार्वीपलाण्डुद्रवैः ॥ १५८ ॥
आर्द्रीकृत्य ततः सकृद्विकरे दत्तं च कूप्यन्तरे
न्यस्तं भस्मवति त्र्यहं हुतभुजा यन्त्रेऽप्रमत्तः पचेत्।
तत्कूप्यूर्ध्वगतं रसेन्द्रमसितं तत्पञ्चमांशं विषं
ताम्रं सूतसमं बलिं विषसमं सग्रन्थितीक्ष्णत्रयम् ॥ १५९ ॥
प्रत्येकं विषभागिकं तदखिलं जम्बूवटोदुम्बरा-
श्वत्थत्वक्सलिलैर्विमर्द्य विहितो नाम्ना ज्वरप्रोत्थितः।

शुद्ध गन्धक १ भाग, शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध हरताल १ भाग लें। सर्व-प्रथम पारद-गन्धक को एक साफ खरल में २ दिनों तक सूखा ही मर्दन कर कज्जली करें, तत्पश्चात् उसमें शुद्धहरताल मिलाकर मर्दन करें और एरण्डपत्रस्वरस जम्बीरी निम्बु स्वरस, भृङ्गराज स्वरस, हाउबेरफल क्वाथ, दारुहरिद्रा क्वाथ और प्याज के स्वरस की १-१ भावना दें तत्पश्चात् धूप में अच्छी तरह सुखा लें। सात बार कपड़मिट्टी की हुई काच कूपी (आतसी शीशी, अधुना २० औंस की हरी बोतल लें) में उपर्युक्त भावित औषधि को रखें। और बालुकायन्त्र में औषधि पूरित कूपी या बोतल को रख कर तीन दिनों तक मृदु-मध्य एवं तीक्ष्णाग्नि में सावधानी से पाक करें। चौथे दिन स्वाङ्ग शीत होने पर कूपी निकालकर उस पर की कपड़मिट्टी छुड़ाकर कूपी को सावधानी पूर्वक तोड़ें। कूपी के ऊर्ध्वभाग में एकत्र पारद के योग विशेष को संग्रहीत करें। इसके बाद उक्त पारदयोग को

तौलें, इस पारद योग का पञ्चमांश शुद्ध कृष्णवत्सनाभविष चूर्ण, ताम्रभस्म पारद के बराबर अर्थात् निर्मित औषधि के बराबर, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ के बराबर, पिप्पलीमूलचूर्ण, शुण्ठीचूर्ण, पिप्पलीचूर्ण, मरिचचूर्ण प्रत्येक वत्सनाभ जितना अर्थात् प्रत्येक पञ्चमांश लें, और जामुनत्वक् स्वरस, वटत्वक् स्वरस, उदुम्बरत्वक् स्वरस, अश्वत्थ (पीपल) त्वक्स्वरस की १-१ भावना देकर खूब मर्दन कर छाया शुष्क कर शीशी में रख कर सुरक्षित कर लें। इसे ज्वरप्रोत्थित रस नाम से जाना जाता है।

नवज्वरहरी वटी-८

निम्बुभृङ्गजलैः पलद्वयमितैर्गद्याणकेनोषणा-
त्क्षुण्णाद्द्वादशकर्णिकाभिरुदितादर्कप्रसूनादपि ॥ १६० ॥
गुञ्जामात्रममुं निपीय घटिकामात्रेण मुक्तो ज्वरा-
त्संस्वेद्य ज्वरहारिणी निगदिता रुग्जिष्णुना विष्णुना।

मरिच चूर्ण ६ ग्राम, मन्दार (अर्क) पुष्प खिला हुआ अर्थात् विकसित पुष्प १२ नग, इन्हें एक खरल में एक साथ खूब मर्दन करें। तत्पश्चात् निम्बुस्वरस ९५ से० लि० और भृङ्गराज स्वरस ९५ से० लि० की मात्रा में लें और क्रमशः पृथक-पृथक् अनेक भावना देकर १-१ रत्ती की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और शीशी में रख लें। इस वटी को १ रत्ती (१२५ मि० ग्राम) की मात्रा में आर्द्रक स्वरस के साथ पीने मात्र से ½ आधा घण्टा में ही नवज्वराक्रान्त व्यक्ति का ज्वर पसीना के साथ नष्ट हो जाता है, रोग को जीतने वाले "विष्णु" नामक किसी आचार्य के द्वारा ऐसा कहा गया है।

विमर्श—यह योग मात्र काष्ठौषधि का ही है। गद्याण छः माशे को कहते हैं। "गद्याणो माषकैः षड्भिः-कर्षः स्याद्दशमाषकः" (शाङ्गधरः कलिङ्गमानम्)।

नव्यचन्द्राभिध रसः-९

हृद्धात्रीविषमीशबीजमरिचाङ्कोल्लोत्थबीजं बलि
तुल्यं मार्कवबीजमम्बुधिलवं द्विश्चित्रमूलाम्भसा ॥ १६१ ॥
त्रिर्भृङ्गस्वरसैर्विभाव्य रचितः स्यान्नव्यचन्द्राभिधः
पीतो जम्भलकार्द्रकाम्बुभिरयं वल्लप्रमाणो रसः।
यामार्धेन जयेन्नवज्वरमिभं पारीन्द्रपोतो यथा

स्वर्णक्षीरीमूल (चोक) शुद्ध वत्सनाभविष, शुद्ध पारद, मरिचचूर्ण, अङ्कोल-बीज चूर्ण, शुद्ध गन्धक, ये छः द्रव्य १-१ भाग, भृङ्गराज बीज चूर्ण ४ भाग लें। सर्वप्रथम पारद-गन्धक को एक खरल में डाल कर दो दिनों तक मर्दन कर कज्जली करें। तत्पश्चात् अन्य द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर मर्दन करें और चित्रकमूल

स्वरस की २ बार भावना दे तथा भृङ्गराज स्वरस की ३ बार भावना देकर अच्छी तरह छाया में सुखाकर शीशी में सुरक्षित रख दें। इस तरह से निर्मित नव्य-चन्द्राभिधरस नामक इस औषधि को १ बल्ल (२५० मि० ग्राम) प्रमाण में निम्बु और आर्द्रक स्वरस १-१ चम्मच के साथ पीने से १-½ घण्टे में ज्वर नष्ट होता है। जैसे सिंह बालक हाथी को जीतकर नष्ट कर देता है।

विमर्श—ईशबीजम् = पारदः, अम्बुधिलवं = अम्बुधिः समुद्रः लवम् = भागम् अर्थात् समुद्र की संख्या चार है अतः यहाँ पर अर्थ चार भाग करना चाहिये। ईभं = हस्ति, पारीन्द्रपोतः=सिंहबालकः (पारीन्द्रः सिंहः तस्य पोतः पुत्रः, इति)।

मृत्युञ्जय रसः-१०

द्वौ लेलीतकतोलकौ च मरिचादेकः स एवायसः ॥ १६२ ॥
एतत्सर्वमयोमयान्तरगतं द्रागोहविः पाचितं
त्र्यंशं शुद्धमलं चतुर्लवमपि म्लेच्छं शरांशं विषम् ।
षड्भागं जयपालबीजमखिलं सम्मर्द्य तिक्तानल-
काथैर्द्वादशधा तथाऽऽर्द्रकरसैस्त्रिःसप्तकृत्वः कृतः ॥ १६३ ॥
स्यान्मृत्युञ्जय एषकः शतदलाम्भोभिर्निपीतो यव-
द्वन्द्वैकद्वयसो निहन्ति नितरां सामान्निरामानपि ।
जीर्णान्व्यचिरोद्भवांश्च विषमान् पञ्चापि नानाविधा-
नौदर्यान् सविबन्धनान् गदवरान्हन्त्येव रेकैः परम् ॥ १६४ ॥

शुद्ध गन्धक २२ ग्राम, मरिच चूर्ण १२ ग्राम, लोहाभस्म १२ ग्राम इन तीनों को लेकर लोहे की एक छोटी कड़ाही में रखें। तथा द्राक् = सद्यो निष्कासित अर्थात् नवीन गाय के घी में आप्लावित कर आग पर पकावें। पुनः उसमें शुद्ध हरताल ३५ ग्राम अलं = तालमिति, चतुर्लवं = चतुर्भागं, शुद्ध हिंगुल ४६ ग्राम, शरं = पञ्च इति, शुद्ध वत्सनाभविष ५८ ग्राम, शुद्ध जयपाल ७० ग्राम, अर्थात् कुल मिलाकर २५५ ग्राम द्रव्यों को एक साथ खरल में मर्दन कर कुटकी क्वाथ की छः बार भावना दें, तथा छः बार चित्रकमूलक्वाथ की भावना दें अर्थात् दोनों मिलाकर १२ भावना दें और आर्द्रक स्वरस में २१ बार भावना देकर अच्छी तरह छाया में सुखा कर शीशी में रख लें। यह मृत्युञ्जय रस नामक रसौषधि को दो यव १ गुञ्जा की मात्रा में या २ रत्ती (२५० मि० ग्राम) की मात्रा में कमल पुष्प या गुलाब पुष्प के स्वरस के साथ पान करने से सामज्वर-निरामज्वर-जीर्णज्वर-पुराना या नवीन ज्वर पाँचों प्रकार के विषमज्वर, उदररोग-गुलम-शूल-विबन्धादि रोगों को विरेचन कराकर नष्ट कर देता है।

चिन्तामणिरसः-११

तद्वद्गन्धकसूतताम्रगगनैरेकांशकैरेकशः
सद्व्यंशामृतकन्दकैर्लघुचितैः कारीषखण्डानलैः ।
भूगर्तेऽङ्गुलिषट्कखातपरिधौ संस्तीर्णताम्बूलिका-
पर्णैः संविहितैस्तथा सिकतयोपर्यप्यलं स्वेदितैः ॥ १६५ ॥
पश्चाद्विंशतिकुम्भिबीज'शकलैरेकीकृतैः श्लक्ष्णशः-
स्त्रिः कैरार्द्रकजैर्विलोड्य रचितश्चिन्तामणिः स्याद्रसः ।

शुद्ध गन्धक १ भाग, शुद्ध पारद १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग और शुद्ध वत्सनाभविष २ भाग लें। सर्वप्रथम गन्धक-पारद को एक खरल में रखकर दो दिनों तक मर्दन करें एवं कज्जली बनावें। पुनः उसमें अभ्रक-भस्म, ताम्रभस्म एवं वत्सनाभविष चूर्ण को मिलावें और जल के साथ मर्दन करें तथा गोला बनाकर सुखा लें। पुनः जमीन के अन्दर छः अंगुल लम्बा-चौड़ा-गहरा गड्ढा खोदकर उस गड्ढे में १ अंगुल बालू फैला दें, उसपर दो तीन पान के पत्ते रखकर उपर्युक्त सुखाया हुआ गोला रखें। गोले पर पुनः २-३ पान के पत्ते रखकर ऊपर से पुनः बालू से आच्छादित करें। इसके बाद वन्योपल (गोहरे) से लघुपुट (कपोतपुट) दें। स्वाङ्गशीत होने पर सावधानी पूर्वक उक्त औषधि गोलक को निकालें। तत्पश्चात् २० भाग शुद्ध जयपालबीज चूर्ण मिला कर उस गोले को मर्दन करें और आर्द्रक स्वरस की ३ बार भावना देकर अच्छी तरह सुखा कर शीशी में रख लें। इस तरह से निर्मित रसौषधि को "चिन्तामणिरस" कहते हैं। इसकी मात्रा १ गुञ्जा (१२५ मि० ग्राम) है। मृत्युञ्जय रस के जैसा गुण युक्त यह औषधि है।

विद्याधरी गुटिका-१२

गन्धम्लेच्छरसामृतार्ककटुकाव्योषं त्रिवृद्दन्तिका-
हेमाह्वात्रिफलाश्च टङ्कणममूभिः स्यात्समा तिन्तिणी ॥ १६६ ॥
त्वग्बीजै रहिता च पक्वसुरसा सम्मर्द्य माषोन्मिता ।
लीढा केन नवज्वरेषु गुटिका विद्याधरी शस्यते ।

शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध पारद, शुद्ध वत्सनाभविष, ताम्रभस्म, कटुकी, सोंठ, पीपर, मरिच, त्रिवृत (निशोथ), शुद्ध जयपालबीज, स्वर्णक्षीरीमूल (चोक), आमला, हरीतकी, बिभीतक और शुद्ध टङ्कण ये १६ द्रव्य प्रत्येक सम भाग (१-१ भाग) लें। सर्वप्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें हिंगुल मिलाकर मर्दन करें, पुनः ताम्रभस्म मिलावें, तत्पश्चात् सभी काष्ठौषधियों का

१. "बीजशकलव्यामिश्रकैरेकशः" इति पाठ भेदः

सूक्ष्म चूर्ण कर मिलादें और छिलका एवं बीज से रहित सुपक्व इमली के फल को पानी में भिगोंकर उसको मसल ले और कपड़े से छानकर उसका गाढा स्वरस से भावना देकर १-१ माशा (१-१ ग्राम) के बराबर गोली बनाकर छाया में सुखा लें और शीशी में संग्रहीत करें। इसे विद्याधरीवटी कहते हैं। नवज्वर से पीडित व्यक्ति को गर्म जल से १-१ वटी देने से ज्वर शान्त हो जाता है।

केन = उष्णोदकेन इति भावः।

त्रैलोक्यतापापह रसः-१३

पथ्यापारदताम्रगन्धचपलातिक्तात्रिवृद्दन्तिका-
बीजं व्योषवरास्थि वज्रिपयसा त्रिर्भावयित्वा कृतः॥ १६७॥
पीतोऽयं मधुनैकरक्तितुलितस्त्रैलोक्यतापापहः
सद्यो हन्ति नवज्वरं विषमिव श्रीचारुचामीकरम्।

हरीतकीफलत्वक् चूर्ण, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, चपला = पिप्पली चूर्णम्, त्रिवृत् = निशोथचूर्णमिति भावः। शुद्ध जयपाल, शुण्ठीचूर्ण, पिप्पली चूर्ण, मरिचचूर्ण,वरास्थि = शु० कुचीलु चूर्ण ये सभी (११) द्रव्य प्रत्येक सम भाग लें। सर्वप्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें ताम्रभस्म मिलावें, तत्पश्चात् सभी काष्ठौषधियों का सूक्ष्म चूर्ण कर मिलावे और अच्छीतरह मर्दन कर स्नुहीक्षीर की ३ बार भावना दें तथा छाया में सुखा कर शीशी में रख लें।

इस "त्रैलोक्यतापहररस" की १ रत्ती (१२५ मि० ग्राम) मात्रा शहद के साथ चाटने (पीने) से नवज्वर को तुरन्त नष्ट कर देता है, जैसे शुद्ध सोना घिसकर पीने से या भस्म रूप में खाने से सभी प्रकार के विष नष्ट हो जाते है।

आचार्य श्री यहाँ पर 'नवज्वरहररसों' के उपसंहार रूप में कहते हैं कि वे केवल नवज्वरनाशक नहीं हैं अपितु अनुपान भेद एवं बुद्ध्यनुसार सभी प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है।

एते यद्यपि नूतनज्वरहरा ह्येवोपदिष्टा मया
शस्यन्ते न चिरन्तनेष्वपि कथङ्कारं ज्वरेष्वाशिताः॥ १६८॥
किन्तु स्वच्छतया विचार्य चतुरैर्मात्रानुपानैर्यथा-
न्यायस्थैरथ ते स्वयुक्तिरचितैर्देया ज्वरिभ्यो नरैः।
नासाध्येषु न सन्निपातिषु न वा वृद्धेषु बालेषु न
प्रक्षीणेषु न गर्भिणीषु विषयासक्तातिसारिष्वपि॥ १६९॥
[1]नातिक्षीणकृशेषु पेलवतनुस्वागन्तुकातङ्किषु
प्रायश्चैव निषेधवाक्यनिवहः सौम्येषु योगेषु न।

१. नातिस्थूलकृशेषु इति पाठ भेदः।

यद्यपि इसके पूर्व में नवज्वरहर १३ योग मुझसे कहे गये हैं, तथापि उन सभी औषधों का प्रयोग अन्य पुराने सभी प्रकार के ज्वरों में क्यों नहीं किये जायगे, अपितु अवश्य ही किये जायगें। किन्तु रोग-दोष-दूष्य-मात्रा-अनुपान-काल आदि का बुद्धि पूर्वक स्वच्छन्दतया चतुराई से विचार करके सभी ज्वरों में विद्वान् वैद्य को देना चाहिये।

किन्तु असाध्य रोगियों में, सन्निपातिक ज्वरों में वृद्धों में, बालको में, विशेष रूप से क्षीण व्यक्तियों में, गर्भिणी में, कामी व्यक्ति में, अतिसार से युक्त ज्वरियों में, अतिक्षीण शरीरवाले व्यक्तियों में, कृश ज्वरियों में, कोमल शरीरवाले ज्वरियों में और आगन्तुज ज्वरियों में इनका प्रयोग नहीं करना चाहिये। किन्तु यह निषेध नियम सौम्य योगों के लिये नहीं है।

विमर्श—जिन योगों में जयपाल-विष-हरिताल आदि अधिक मात्रा में पड़े हों उन्हें तीक्ष्णयोग कहते हैं।

स्वच्छन्दगोलक रसः-१४

पथ्याऽऽत्र्यूषणवह्निमन्थसुरसाः शृङ्गी विषं टङ्कणं
गन्धं तालकमाक्षिकायसरजः सूतो द्रवन्तीफलम्॥ १७०॥
निर्गुण्डीस्वरसेन भावितमिदं स्वच्छन्दगोलाभिधं
गुञ्जायुग्ममितं निहन्ति निखिलं शीतोष्णपूर्वं ज्वरम्।

हरीतकी, शुण्ठी, पिप्पली, मरिच, अग्निमन्थमूलत्वक्, कृष्णतुलसी, काकड़ाशृंगी, शुद्ध वत्सनाभविष, शुद्ध टङ्कण, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरिताल, स्वर्णमाक्षिक भस्म, लोहभस्म, शुद्ध पारद और शुद्ध जयपालबीज ये १५ औषधियों समभाग लें। सर्वप्रथम शुद्ध पारद-गन्धक की कज्जली करे उसके बाद हरताल मिलावे, पुनः टंकण माक्षिकभस्म-लोहभस्म, शु० विष और शु० जयपालचूर्ण मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद अन्य सभी द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर मर्दन करें और निर्गुण्डी पत्र स्वरस की तीन भावना देकर छाया में अच्छी तरह से सुखाकर शीशी में संग्रहीत करें। इसे 'स्वच्छन्दगोलाख्यरस नाम से जाना जाता है। इस रसौषधि को २ रत्ती (२५० मि० ग्राम) की मात्रा में प्रयोग करने से सम्पूर्णशीतज्वरादि (विषमज्वर) रोगों को नाश करता है।

महाज्वराङ्कुश रसः-१५

सूतेन्द्रामृतगन्धकात्समलवाद्धत्तूरबीजं पुन-
स्तुल्यं तैः सकलैः समं त्रिकटुकं स्तोमं सकृद्भावितम्॥ १७१॥
जम्बीरास्थिरसैर्विमर्द्य विहितं प्राग्वन्निपीयार्द्रक-
द्रावैः शार्करिलैर्नवज्वरसृणि सर्वज्वरान्मुच्यते।

शुद्ध पारद, शुद्ध वत्सनाभविष, शुद्ध गन्धक, प्रत्येक १-१ भाग, शुद्ध धतूर-बीजचूर्ण ३ भाग, त्रिकटु (सोंठ-पीपर मरिच प्रत्येक २-२ भाग) ६ भाग लें। सर्व प्रथम एक साफ खरल में पारद-गन्धक रखकर दो दिनों तक मर्दन कर कज्जली बनावें, तथा शेष काष्ठौषधियों का सूक्ष्म चूर्ण कर कज्जली के साथ मर्दन का जम्बीरी निम्बु के बीज स्वरस के साथ एक बार भावना देकर मर्दन करें, तथा छाया में अच्छी तरह सुखाकर शीशी में रख लें। इसे महाज्वराङ्कुश-रस कहते हैं। इस औषधि को पूर्वमान जैसा २ रत्ती (२५० मि०ग्रा०) की मात्रा में आर्द्रकस्वरस और चीनी मिलाकर पीने से सभी प्रकार के ज्वर नाश जाते हैं।

विमर्श—सकृद्भावितम् = एकवार भावितम्। समलवा = समभागा, यहाँ पर यह पहला अवसर है कि निम्बूस्वरस का प्रयोग न कर आचार्य श्री ने निम्बूबीज स्वरस का प्रयोग किया है।

सूतेश रसः–१६

सूताभ्रायसभूतिगन्धगरलम्लेच्छात्सवैकान्तका-
त्त्रिस्त्रिर्मार्कवशिग्रुवह्निसरलातङ्कार्द्रकाम्भः प्लुतात् ॥ १७२ ॥
श्लक्ष्णीकृत्य विलिप्य भाण्डकुहरे प्राङ्मानहालाहलो
निर्यद्घूमविधूपितो रसवरो निष्काश्य निर्मापितः।
सूतेशः सुरसारसेन रसितो गुञ्जाद्वयीतोलितो
हन्यादष्टविधाञ्ज्वरांश्च विषमाञ्छीतोष्णसाधारणान् ॥ १७३ ॥

शुद्ध पारद, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शुद्धगन्धक, शुद्धवत्सनाभविष, ताम्रभस्म और वैक्रान्तभस्म प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। सर्वप्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनावें, तत्पश्चात् अन्य सभी द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें। इसमें भृङ्गराज स्वरस, शिग्रुमूलत्वक् स्वरस, चित्रकमूल स्वरस या क्वाथ, त्रिवृत स्वरस, कुष्ठ क्वाथ या हिम, और आर्द्रक स्वरस इन छः द्रव्यों से (प्रत्येक द्रव्य के द्रव से) ३-३ भावना दें और मिट्टी के डमरु यन्त्र के ऊपरी भाण्डोदर में भावित गीली औषधि का लेप कर सुखा लें, तथा डमरुयन्त्र के नीचे के भाण्ड में पारद के बराबर वत्सनाभविष अर्थात् १ भाग लेकर उसका यवकुट कर रखें। दोनों भाण्डों (पात्रों) को सन्धिबन्धन कर चूल्हे पर चढ़ाकर १ से १½ घण्टे तक मध्यमाग्नि में पाक करें, औषधिपूरित भाण्ड इस तरह धूपित करें। भाण्डोदर की औषधि अच्छीतरह से सूखने पर खुरच कर सूतेश रस को ग्रहण करें और शीशी में सुरक्षित करें। इस सूतेश रस को २ रत्ती (२५० मि० ग्रा०) की मात्रा में कृष्णतुलसी पत्र स्वरस के साथ खाने से आठों प्रकार के ज्वर तथा शीत-उष्ण के साथ आने वाला विषमज्वरों और साधारण ज्वरों को नष्ट कर देता है।

एक सूतेश्वर रसः–१७

सूतात्पादिकमभ्रगन्धकुनटीलोहाहिताम्रं पृथक्
तापीजत्रपुणी च भावितमिदं त्रिर्मातुलान्या रसैः।
कृष्णान्मातुलतोऽपि तत्किल मृदो मूषान्तराले पचे-
दन्ते पारदमानदारवयुतं तत्सप्तधा भावयेत् ॥ १७४ ॥
मत्स्याक्षीत्रिकटुद्रवैरपि तथा ताभ्यां ततो धूपितं
प्राङ्मानेन विषेण सिद्धमहिमा स्यादेकसूतेश्वरः।
गुञ्जाऽस्यार्द्रकवारिणा ससिकतेनान्येन वा केनचि-
द्दत्ता शैत्यककासपञ्चविषमानन्यांश्च रोगाञ्जयेत् ॥ १७५ ॥

शुद्ध पारद ४ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, शुद्ध मनःशिला १ भाग, लोहभस्म १ भाग, नागभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, स्वर्णमाक्षिक-भस्म १ भाग, और वंग भस्म १ भाग लें। सर्वप्रथम पारद-गन्धक को एक खरल में दो दिनों तक मर्दन कर कज्जली बनावें। तत्पश्चात् अन्य सभी द्रव्यों एवं भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। पुनः भांग के शीत (स्वरस) से तीन बार भावना दें, इसके बाद कृष्ण धत्तूरपत्रस्वरस की तीन भावना दें और मिट्टी की मूषा में रखकर अग्नि में पकावें। जब सूख जाय तब शुद्ध वत्सनाभविष चूर्ण पारद के बराबर अर्थात् ४ भाग देकर मत्स्याक्षी स्वरस और त्रिकटु क्वाथ की ७-७ भावना दें। इसके बाद भूधरयन्त्र के ऊपरवाले पात्र (मूषावत्) में इस गीली औषधि का लेप करें, तथा भूधरयन्त्र के नीचे वाले पात्र (मूषा) में पारद के बराबर वत्सनाभविष यवकुट चूर्ण रख कर सन्धि बन्धन करें और चूल्हे पर चढ़ाकर १½ घण्टे तक मन्दाग्नि से पाक करें। इस तरह धूपित करने के बाद शीतल होने पर यन्त्र खोलकर ऊपरी पात्र में लेपित औषधि को निकाल कर अच्छी तरह खुरच कर शीशी में रख लें। इसे 'एक सूतेश्वररस' कहते हैं। इसकी १ रत्ती (१२५ मि० ग्रा०) की मात्रा में आर्द्रक स्वरस और शर्करा (सिकता) के साथ या तुलसी स्वरस या ताम्बूलस्वरस के साथ लेने से अनेकोपद्रव से युक्त ज्वर को नाश करता है। रस का पाक भूधर यन्त्र में करें।

विमर्श—मातुलानी = भङ्गा, कृष्णान्मातुलः = कृष्ण धत्तूरः, दारव = वत्सनाभविषं, सिकता = शर्करा ऐसा अर्थ करना चाहिये।

शीतारि रसः–१८

सूतं गन्धकमर्कसोमलयुतं चेतःशिला खर्परं
तालः साधुसुधेति कारविरसैः सम्मर्दितं सप्तधा।
मूषपाचितमष्टमांशमिलितं हैयङ्गवीनेन त-

द्वीप्यत्र्यूषणतुर्यभागघटितं मत्स्याजपित्तप्लुतम् ॥ १७६ ॥
प्रत्येकं मुनिभिः सशर्करमिदं दुग्धेन वल्लैककं
पीतं 'शीतपुरःसराञ्जयति तत्सर्वज्वरान्पथ्यतः ।

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, शुद्ध शंखिया, शुद्ध मनःशिला, खर्परभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध वत्सनाभविष चूर्ण ये आठो द्रव्य १-१ भाग लें। सर्वप्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनावें, इसके बाद अन्य सभी द्रव्यों को मिलाकर कारवीरसः = छोटे करैला स्वरस की सात भावना दें। इसके बाद पूरी औषधि का अष्टमांश अर्थात् पारद के बराबर (१ भाग) गाय का मक्खन मिलाकर औषधि को मूषा में रखें और भूधरपुट में पकावें। पुनः मूषा से इस औषधि को निकाल कर पूरी औषधि के चतुर्थांश भाग अजमोदा बीजचूर्ण तथा इतनी ही मात्रा में त्रिकटु चूर्ण अर्थात् दोनों द्रव्यों के पृथक-पृथक चूर्ण पारद से दुगुना डालें और मयूर पित्त और बकरा के पित्त की सात-सात भावना देकर औषधि को सुखाकर शीशी में संग्रहीत करें। इसे "शीताररिस" कहते हैं। इसकी १ वल्ल (२५० मि० ग्रा०) की मात्रा में शर्करा युक्त दुग्ध से पीने पर शीतज्वर तथा अन्य सभी ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

ज्वरान्तक रसः–१९

सूतम्लेच्छवियद्वलीं शशिचतुस्त्रिद्विः सुषव्या रसैः।
पित्तैर्मत्स्यभवैर्विभाव्यविहितः प्राग्वज्ज्वरान्तो रसः ॥ १७७ ॥

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध हिंगुल ४ भाग, अभ्रकभस्म ३ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लें। सर्वप्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनावें तथा अन्य दोनों द्रव्यों को मिलाकर पुनः मर्दन करें और सुषवी = कृष्णजीरक क्वाथ और मछली के पित्त की ७-७ भावना देकर औषधि को अच्छी तरह सुखा लें तथा शीशी में रख लें। और १ वल्ल (२५० मि० ग्रा०) की मात्रा में पूर्ववत् अनुमान से प्रयोग करने पर ज्वरों को नाश करता हैं।

अर्धनारीश्वर रसः–२०

तीक्ष्णं दारवदारदार्कदरदं लेलीतकं माक्षिकं
अब्ध्येकर्तुशराद्विसप्तगुणितं तद्व्युत्क्रमान्मर्दितम् ।
वह्नेर्मूलरसैस्त्रिधाऽपि शफरीपित्तेन सम्प्लावितं
यन्त्रे शार्करिले दिनार्धमखिलं तत्काचकूप्यां पचेत् ॥ १७८ ॥
पाकान्ते तु निकुम्भबीजशकलादष्टाभिरंशैर्युतं
तत्सूक्ष्मीकृतमेकतः खलु रसः सिद्धोऽर्धनारीश्वरः।

१. भक्तपयोभुजो विजयते द्राक् सर्वशीतज्वरान् इति पा० भेदः।

यत्पार्श्वस्तनजेन चाजपयसा वल्लैकमात्रोऽशित-
स्तत्पार्श्वज्वरमाशु हन्त्युभयतः सर्वाङ्गजं च ज्वरम् ॥ १७९ ॥

तीक्ष्णलोहभस्म ४ भाग, शुद्ध वत्सनाभविष चूर्ण १ भाग, शुद्ध पारद ६ भाग, ताम्रभस्म ५ भाग, शुद्ध हिंगुल २ भाग शुद्ध गन्धक ७ भाग और स्वर्णमाक्षिक-भस्म ७ भाग लें। सर्वप्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनावें, तत्पश्चात् शुद्ध हिंगुल मिलावें, इसके बाद अन्य सभी द्रव्यों को मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें। चित्रकमूल क्वाथ की ३ भावना दें, इसके बाद एक काचकूपी (फ्लास्क) में भावित औषधि को मछली के पित्त में आप्लावित कर (डुबोकर) वालुकायन्त्र में औषधि पूरित काचकूपी को रखे और आधा दिन ६ घण्टे तक पाक करें। पुनः कूपी को स्वाङ्गशीत होने पर कूपी से औषधि को निकाल लें और शुद्ध जयपालबीज चूर्ण आठ भाग मिलाकर खरल में सबों के साथ खूब मर्दन कर सूक्ष्म चूर्ण कर शीशी में संग्रहीत कर लें। यह सिद्ध अर्धनारीश्वर रस है। इसकी २५० मि. ग्रा. की मात्रा बकरी के दूध के साथ देनी चाहिये। बकरी के दोनों स्तनों को दो भाग में बाँटें। वाम स्तन के दूध के साथ औषधि को ज्वरी यदि पिये तो रोगी के शरीर के वाम पार्श्व का ज्वर नष्ट जाता है और बकरी के दक्षिण स्तन के दूध से ज्वरी को यदि औषधि दी जाय तो रोगी के दक्षिण पार्श्व का ज्वर भी नष्ट हो जाता है। इस तरह सम्पूर्ण शरीर का ज्वर नष्ट हो जाता है।

विमर्श—दारवः = वत्सनाभः, दारदः=दरदेभवः दारदः = पारदः, लेलीतकः= गन्धकः, संख्या वाचक शब्द अब्धि = समुद्र ४ हैं, एक, ऋतु = छः होते हैं, शर = कामदेव के पाँच वाण होते हैं, सप्तगुणितं = सात-सात संख्या दो वार गिने। यन्त्रे शार्करिले = बालुकायन्त्रे।

कुष्ठादि वटी–२१

रुक्सूतामृतगन्धकत्रिकटुकश्रेष्ठाभिरेकांशत-
स्त्रिभृङ्गस्य रसैर्विभाव्य रचिता मुद्गप्रमाणा वटी।
हन्यादग्निविबन्धशूलमुदरं... ... ...

कूठचूर्ण, शुद्ध पारद, शुद्ध वत्सनाभविष, शुद्ध गन्धक, सोंठ, पीपर, मरिच, आमला, हर्रे, बहेरा इन सबों का चूर्ण (इन दशों द्रव्यों को) प्रत्येक १-१ भाग लें। सबसे पहले पारद-गन्धक की कज्जली बनावें तथा अन्य सभी द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को मिलाकर भृंगराज स्वरस की ३ भावना दें और मूंग के बराबर गोली बनाकर छाया में सुखाकर शीशी में संग्रहीत करें। अग्निमान्द्य, विबन्ध, उदरशूलादि रोगों में १-१ वटी ३ वार आर्द्रक या निम्बू स्वरस के साथ प्रयोग करें।

वरादि वटी—२२

....तद्वत्समांशैर्वरा-

शुण्ठीजीरकवत्सनाभमरिचोग्राकज्जलीहिङ्गुभिः ॥ १८० ॥

इसी प्रकार आमलाचूर्ण, हरेंचूर्ण, बहेराचूर्ण, शुण्ठीचूर्ण, जीरकचूर्ण, शुद्ध-वत्सनाभचूर्ण, मरिचचूर्ण, उग्रा = वचा या यवानीचूर्ण, शु० पारद, शु० गन्धक (कज्जली) और हींग प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें किन्तु कज्जली दो भाग लें। पूर्ववत् इन सभी द्रव्यों को मिलाकर भृंगराज स्वरस की ३ भावना देकर मूंग के बराबर छोटी-छोटी गोली बना लें और छाया में सुखा कर शीशी में रख लें। उसका प्रयोग भी पूर्ववत् उदर रोग-विबन्ध-शूल अग्निमान्द्यादि रोगों में करें।

चिन्तामणिः (तैलम्) रस—२३

गन्धः पंक्तिलवोऽमुना समलवः स्यात्पारदष्टङ्कणः
श्वेताङ्कोलनिकुम्भयोर्द्विगुणितं बीजं च दन्त्यम्बुना।
तत्सर्वं परिमर्द्य वासरयुगं छायाविशुष्कं चिरा-
त्स्याच्चिन्तामणिनामधेयमतुलं तैलं विरेकार्थकम् ॥ १८१ ॥
यल्लिप्तं किमपि क्षणेन बहुशः कण्ठेऽथ वा वामये-
न्नाभौ वा नितरां विलिप्तमसकृत्सद्यो नरं रेचयेत्।
घ्रातं यच्च नसा नरेण कुरुते यत्संख्यया संख्यया
तावन्त्येव विरेकमद्भुतकरं नृणां विबन्धापहम् ॥ १८२ ॥

शुद्ध गन्धक १० भाग, शुद्ध पारद १० भाग, शुद्ध टङ्कण १० भाग, श्वेत अङ्कोलबीज २० भाग और जयपालबीज २० भाग लें। सर्व प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनावें। पुनः अन्य तीनों चूर्णों को मिलाकर दन्तीबीज (जयपाल के क्वाथ के साथ दो दिनों तक मर्दन करें। इसे अच्छी तरह छाया में सुखाकर शीशी में संग्रहीत करें। इसे चिन्तामणि तैल नाम से जाना जाता है। यह त्रिमार्गतः विरेचनार्थ तैल है। इस तैल को यदि कण्ठ में लेप किया जाय तो कुछ ही क्षणों में अनेक वार वमन कराता है, और नाभि में यदि इसे लेप किया जाय तो शीघ्र ही मनुष्य को विरेचन कराता है। नाक से यदि इस तैल को जितनी वार सुंघा जाय उतनी ही बार आश्चर्य जनक रीति से विरेचन कराकर मनुष्यों के विवन्ध को दूर करता है।

विमर्श—पंक्ति = १० दस, लव = संख्या। यह योग तैल के नाम से उद्धृत किया गया है किन्तु निर्माण करने पर यह चूर्ण रूप में होगा। यदि दन्त्यम्बु से जयपाल तैल का अधिक प्रयोग किया जाय तो द्रव रूप में हो सकता है। अथवा इस औषधि को तिल तैल में मिलाकर रखा जाय। किन्तु आचार्य श्री ने तिल

तैल का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। अतः दन्तीबीजाम्बु से जयपाल के तैल के साथ मर्दन करना अधिक गुणप्रद होगा। ऐसा मेरा विचार है। यहाँ पर तैल पाक का कोई सामान्य क्रम नहीं है, यह भी रसौषधि ही है किन्तु तरल तैलवत् है। "रसरत्नकौमुदी" के लेखक महोदय ने भी इस तैल का उल्लेख किया है किन्तु उसमें द्रवित करने के लिये इस चूर्ण में शहद और नारियल के जल में मिलाकर कांस्यपात्र में ७ दिनों तक लेप करने को कहा है और उसे कार्तिक-और वैशाख के तेज धूप में सुखाने को कहा है। सूखने पर कांस्यपात्र से तैल पिघलेगा जिसे शीशी में सुरक्षित रखने के लिये कहा गया है। यही तैल का प्रयोग वहाँ पर उचित लगता है। विद्वानों के लिये 'रसरत्नकौमुदी' का पाठ यहाँ दिया जा रहा है। जो सर्वमान्य प्रतीत होता है। यथा—

चिन्तामणि तैलम्

गन्धेशौ दशभागौ च दशभागन्तु टङ्कणम्।
टङ्कणाद्द्विगुणं दद्याच्छ्वेताङ्कोलस्य बीजकम् ॥
बीजैः समञ्च जैपालं खल्वे चैकत्र मर्दयेत्।
दन्त्यम्बुना दिनैकन्तु छायायाञ्च विशोषयेत् ॥
मधुना प्लावयेत्सर्वं नालिकेरोदकं त्यजेत्।
तन्नारिकेलमध्ये तदौषधं सुविनिक्षिपेत् ॥
उद्धृत्य सप्तरात्रोर्ध्वं कांस्य पात्रे च विन्यसेत्।
कार्तिके चैव वैशाखे सुतीक्ष्णे तापके न्यसेत् ॥
तदुत्थं निश्चितं तैलं स्थाप्यं काचस्य भाजने।
नाभौ च कारयेल्लेपं रेचयत्येव निश्चितम् ॥
कण्ठे लेपं प्रकुर्वीत वमनं जायते ध्रुवम्।
स्तम्भनं ससितं दुग्धं क्षालयेन्निम्बुनो रसैः ॥
हरीतकीं मासमेकं तत्र तैले विनिक्षिपेत्।
यत्सङ्ख्यं नासिकाघ्रातं तावत्सङ्ख्यं विरेचयेत् ॥
अघ्राय दक्षनाड्यां तु विरेकं याति निश्चितम्।
वामनाड्यां च वमनं राजयोग्यं विरेचनम् ॥
नवज्वरे च विषमे वातरोगे गलग्रहे।
रेचनाद्वमनाच्चैव सर्वरोगान् व्यपोहति ॥
इदं कौतूहलं तैलं चिन्तामणिविरेचनम् ॥

(रसरत्नकौमुदी)

(रसयोगसागर से साभार उद्धृत)

कालानल रसः—२४

सूतं वङ्गमपक्वमेव कनकाद्बीजं च नागं समं
वस्वर्धं करहाटमर्कमपि तत्संख्यं तथैवामृतम्।
वस्वंशं गरलं च शुल्बमथवा सम्मर्दयेदेकतो
निर्गुण्डीसलिलेन तत्खलु रसः स्यान्नाम कालानलः ॥ १८३ ॥
पीतो जीरकवारिणाऽयमखिलान्मुद्गप्रमाणो ज्वरा-
न्सद्योहन्ति,...।

शुद्ध पारद, वङ्गभस्म, कच्चा धत्तूरबीज, नागभस्म प्रत्येक १-१ भाग लें, आकारकरभ (अकरकरा) या स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म और शुद्ध वत्सनाभ विष प्रत्येक ४-४ भाग लें, (सर्पविष अथवा) कच्चा ताम्र ½ भाग लें। सर्वप्रथम पारद और ताम्र को एक साथ खरल में दो दिनों तक श्लक्ष्ण पिष्टी होने पर्यन्त मर्दन करें तत्पश्चात् भस्मों को मिलावें, पुनः काष्ठौषधियों के सूक्ष्म चूर्ण डालकर निर्गुण्डी स्वरस के साथ तीन भावना देकर छाया शुष्क कर शीशी में रख लें। जीरक क्वाथ एवं शहद के साथ १ मुद्ग प्रमाण में इसे पीने से सभी प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

अश्वानलरसः (अश्वकञ्चुकी रसः) (घोड़ाचोली रसः)—२५

..........तथैव निर्विषविषश्रेष्ठात्रितीक्ष्णेश्वरैः।
वैगन्धालकटङ्कणाजयफलैर्भृङ्गाम्भसा वासितैः
सिद्धोऽश्वानलनामको विजयते विश्वाजलेन ज्वरान् ॥ १८४ ॥

इसी प्रकार यह योग भी है, यथा—निर्विषा, शुद्ध वत्सनाभ विष, आमलकी-हरीतकी-विभीतक, शुण्ठी-पिप्पली-मरिच-शुद्ध पारद-शुद्ध गन्धक-शुद्ध हरताल, शुद्ध टंकण, शुद्ध जयपाल प्रत्येक १-१ भाग लें। सर्वप्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनाकर अन्य सभी द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें और भृङ्गराज स्वरस की ३ भावना देकर छाया शुष्क करें, तथा शीशी में रख लें। १ या २ मूंग की (१२५ मि. ग्रा.) मात्रा में इस अश्वानलरस को शुण्ठी जल से या आर्द्रक स्वरस से प्रयोग करने पर सभी प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

ज्वराररिसः—२६

हिङ्गूलोद्भवताम्रगन्धगगनम्लेच्छान् क्रमाद्वर्धितान्
कारव्याः स्वरसेन मीनजनुषा पित्तेन वा सप्तशः।
आप्लाव्याऽऽरचितो ज्वरानतिचिराद्रुष्णज्वरं नूतनं
हन्यादार्द्रकवारिणा सचपलाक्षौद्रो द्विवल्लः परम् ॥ १८५ ॥

हिंगुलोत्थ पारद १ भाग, ताम्रभस्म २ भाग, शुद्ध गन्धक ४ भाग, अभ्रकभस्म ८ भाग और शुद्ध हिंगुल १६ भाग लें। सर्व प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनावें। तत्पश्चात् अन्य सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें और कारवी (मंगरैला) के रस (क्वाथ) में तीन वार भावना दें और पुनः मछली के पित्त की ७ वार भावना दें। छाया में अच्छी तरह सुखाकर शीशी में रख लें। इस 'ज्वरारि रस' को २ वल्ल (७५० मि. ग्रा.) मधु-पिप्पली चूर्ण और आर्द्रक स्वरस के साथ लेने से नये-पुराने ज्वर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इतनी मात्रा अत्यधिक है। अतः २५० मि० ग्रा० दें।

शीतज्वरारि रसः—२७

कम्बुः फेनमहेः शिला सरसकं माक्षीकमेकांशकं
शुल्वं सोमलमक्षिभागमखिलं त्रिः कारवल्लीरसैः।
आर्द्रीकृत्य कृतः सुकृष्णलमितः शीतज्वरारिः सिता-
मिश्रो हन्ति सुदुग्धभक्तकभुजस्तूष्णान् सशीतज्वरान् ॥ १८६ ॥

शंख, अहिफेन, शुद्ध मनःशिला, खर्परभस्म, माक्षिकभस्म ये पाचों द्रव्य १-१ भाग लें और ताम्रभस्म एवं शुद्ध शंखिया २-२ भाग लें। इन सबों को एक खरल में एक साथ मर्दन करें और करैला के स्वरस में ३ भावना दें। छाया में सुखाकर शीशी में रख लें। शीतज्वर एवं सभी प्रकार के विषम ज्वर से पीड़ित व्यक्ति १२५ मि. ग्रा. की मात्रा में इसे चीनी के साथ लेने से ज्वर को नाश करता है। पथ्य में दूध-भात-चीनी खाना चाहिये।

ज्वररिपु रसः—२८

रसस्यैकं भागं दरदझषपित्तामृतबलीन्
द्विभागान् सौभाग्यं त्रिरथ मरिचं वेदतुलितम्।
विमर्द्यार्द्रद्रावैर्ज्वरमुररिपुश्चेद्विरचितः
किमन्यैरेकद्वित्रिचतुरहजातज्वररिपुः ॥
जडिम्न्यार्द्रद्रावैः ससितजरणाम्भोभिरपरै
र्हतीसृत्यां युक्तः सुरसदलवार्भिः समरिचैः ॥ १८७ ॥

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध हिंगुल २ भाग, रोहू (रोहित) मछली के पित्त सूखा २ भाग, शुद्ध वत्सनाभ २ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, शुद्ध टंकण ३ भाग, मरिच चूर्ण ४ भाग लें। सर्वप्रथम पारद-गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। पुनः हिंगुल मिलावें और मर्दन करें। तत्पश्चात् अन्य सभी द्रव्यों को मिलाकर आर्द्रक स्वरस की ३ भावना दें और ३७५ मि. ग्रा. की गोली बनाकर छाया में सुखावें तथा शीशी में रख लें। ज्वर से पीड़ित रोगियों में इस ज्वररिपुः रस को शीतल आर्द्रक रस और श्वेत जीरक क्वाथ में चीनी मिलाकर पीने से सभी

प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते हैं। अथवा तुलसी पत्र स्वरस एवं मरिच चूर्ण मिलाकर इस औषधि को लेने से अत्यन्त शीत पूर्वक विषमज्वर को भी नाश करता है। इस एक ज्वररिपु रस से ही सभी प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते हैं। अतः अन्य २-३-४ ज्वरहर रस योगों की क्या आवश्यकता है।

विमर्श—आचार्य श्री ने इस योग की रचना शिखरिणी छन्द में की है किन्तु डेढ़ श्लोक है। सम्भव है कि इस योग के दो चरण कभी निकल गये हों। झषः = रोहितमत्स्यः। इसे २५० मि० ग्रा० में दें। उपर्युक्त मात्रा अधिक है।

चातुर्थिकेभाङ्कुश रसः-२९

रसं गन्धकं निर्विषा वत्सनाभं द्वयं तुत्थतो गौरीपाषाणतालम्।
विमर्द्यापि गोलीकृतोऽयं रसेन्द्रो महापूर्विकाया बलाया रसेन॥
रसैर्धूर्तकस्यापि शीताङ्कुशोऽयं सखण्डस्तु चातुर्थिकेभाङ्कुशोऽयम्।

अथवा—

रसं गन्धकं निर्विषा तुत्थयुग्मं शिलातालकं नागपाषाणयुक्तम्।
शितिस्वर्णभङ्गासहादेवनीरैः कलायप्रमाणस्तथैवायमुक्तः॥१८८॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, निर्विषा चूर्ण, शुद्ध वत्सनाभविष, दोनों प्रकार के तुत्थ १. सस्यक Peacock ore (Cu_5FeS_4) २. कृत्रिमतुत्थ (Coppersulphate $CuSO_4$ 7 H_2O), शुद्ध शंखिया, शुद्ध हरिताल प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। सर्वप्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनावें बाद में अन्य सभी द्रव्यों को मिलाकर महाबला के रस में तीन भावना दें तथा धत्तूर पत्र स्वरस की भी तीन भावना दें और १-१ रत्ती की गोली बनाकर छाया में सुखा लें और शीशी में रख लें।

इसे चातुर्थिकेभाङ्कुश रस कहते हैं। इसके प्रयोग से सभी प्रकार के विषम ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

अथवा—

शुद्ध पारद-शुद्ध गन्धक, निर्विषाचूर्ण, दोनों प्रकार के तुत्थ (१. सस्यक-२. कृत्रिमतुत्थ) शुद्ध मनःशिला, शुद्ध हरताल, नागपाषाणः = जहरमोहरा (शुद्ध शंखिया) लें। सर्वप्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनावें तत्पश्चात्, शेष सभी द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें और शितिस्वर्ण = कृष्णधत्तूर, भांग, सहादेव = सहदेई के स्वरस से (प्रत्येक से) ३-३ भावना देकर मटर के बराबर (२५० मि. ग्रा.) वटी बनाकर छाया में सुखा लें। यह पूर्व योग 'चातुर्थिकेभाङ्कुश रस' जैसा ही ज्वर में कार्य करता है।

विमर्श—नागपाषाण = जहरमोहरा (Serpentin) को कहते हैं। परन्तु पूर्व योग में गौरीपाषाण = शंखिया का प्रयोग है, सम्भव है कि नाग = विष वाचक

होने से यहाँ पर छन्द पूर्ति हेतु नागपाषाण शब्द का प्रयोग हुआ है। ऐसे जहर-मोहरा विशेषरूप से नहीं है। तथापि यहाँ पर विद्वान् अपनी बुद्धि के अनुसार कोई भी औषध प्रयोग कर सकते हैं।

वसन्तमालती रसः-३०

शुद्धं खर्परमष्टभागममलं स्वर्णं च मुक्ताफलं
हिङ्गूलं मरिचं विवर्धितमिदं हैयङ्गवीनेन च।
भाव्यं जम्भरसेन च त्रिदिवसं निःस्नेनमेतद्धिया
गुञ्जाद्वन्द्वममुष्य मालिनिवसन्तस्य ज्वरे धातुगे॥
अथाद्रक्तभवे गदेऽप्यतिकृशेक्षीणे च बाले क्षये
वृद्धे गर्भिणिसूतिकासु मधुना क्षीरान्नभुक्स्वेच्छया॥१८९॥

शुद्ध खर्पर भस्म ८ भाग, स्वर्ण भस्म १ भाग, मोती पिष्टी या भस्म २ भाग, शुद्ध हिंगुल ३ भाग, मरिचचूर्ण ४ भाग लें। सर्वप्रथम सुवर्ण भस्म और शुद्ध हिंगुल को एक साथ मिलाकर मर्दन करें, तत्पश्चात् सभी चूर्णों को मिलाकर मक्खन के साथ दो दिनों तक मर्दन करें। पुनः जम्बीरी निम्बू के रस के साथ तब तक मर्दन करें, जब तक मक्खन के स्नेहांश दूर नहीं हो जावें। अर्थात् निःस्नेह होने पर्यन्त ३ दिनों तक मर्दन करें। पुनः २५० मि. ग्रा. की गोली बनाकर छाया में सुखाकर शीशी में रख लें। इसे वसन्तमालिनिरस कहते हैं। इसे रक्त निकलने वाले रोग में, अत्यन्त कृशता में, क्षीणता में, बालकों के क्षय में, युवा एवं वृद्धों के क्षय में, गर्भिणी एवं सूतिकाओं में मधु से देना चाहिये तथा स्वेच्छा से दूध-भात-दूध रोटी का भोजन कराना चाहिये। हैयङ्गवीन = मक्खन है।

लघुवसन्तमालती रसः-३१

भागैकं वल्लिजातं द्वितयमथ नृणां खर्परान्मूत्रशुद्धात्।
सर्वं खल्वे विमर्द्य त्रिदिनमपि गवां कालसेयोद्भवेन
जम्बीरैशुष्कचूर्णं यदवधि तु भवेन्मालिनीप्राग्वसन्तः॥१९०॥

मरिच चूर्ण १. भाग, नरमूत्र में सात वार या २१ वार भावना देकर शुद्ध किया हुवा खर्पर (रसक) चूर्ण २ भाग लें, दोनों को एक खरल में मिलाकर गाय के मक्खन के साथ ३ दिनों तक मर्दन करें। पुनः जम्बीरी निम्बु स्वरस के साथ तबतक मर्दन करें जबतक सम्पूर्ण औषधि निःस्नेह नहीं हो जाय। इसे लघु वसन्त मालती रस कहते हैं। यह भी क्षयादि रोगों में दिया जाता है।

विमर्श—वल्लिजातं = मरिचं, कालशेयः = तक्रः तस्योद्भवः = हैयङ्गवीनः, मक्खन।

सुधापिप्पली योगः-३२

चपलायाः प्रस्थमेकं स्नुहीक्षीरेण भावयेत् ।
एकविंशतिधा पूर्वं तदर्धं मलमायसम् ॥ १९१ ॥
तदर्धं दरदं क्षिप्त्वा त्रयमेकत्र भावयेत् ।
गोजिह्वाशाल्मलीक्षीरगोक्षुरेक्षुरसैः पृथक् ॥ १९२ ॥
श्लक्ष्णचूर्णं पुनः कृत्वा मात्रां युञ्ज्याद्यथाबलम् ।
क्षीरं जातु पिबेत्तस्य मधुकेन समायुतम् ॥ १९३ ॥
सुधापिप्पलीयोगोऽयं जीर्णज्वरमपोहति ।
मेदोदोषोदरं शोथक्षयक्षयकरः परः ॥
क्षीणान्धातून्वर्धयति प्रोक्तश्चात्रेयसूरिणा ॥ १९४ ॥

बड़ीपिप्पली १ प्रस्थ (७४६ ग्रा.) को सूक्ष्म चूर्ण कर २१ बार स्नुहीक्षीर की भावना दें। शुद्ध मण्डूर ३७५ ग्रा. शुद्ध हिंगुल १८० ग्रा. लें। इन तीनों को एक साथ मिलाकर, गोजिह्वा, शाल्मलीत्वकस्वरस, गोदुग्ध, गोक्षुरक्वाथ और इक्षुरस की १-१ भावना दें। फिर सुखाकर श्लक्ष्ण चूर्ण कर बलानुसार मात्रा में (२५० मि. ग्रा. से १ ग्राम-तक) मधु के साथ चाटकर गाय का दूध पियें। यह 'सुधापिप्पली योग' जीर्णज्वर को नाश करता है। मेदोदोष, उदररोग, शोथ, और क्षय को नाश करने वाला है। यह योग क्षीण धातुओं को बढाता है। इस योग को आचार्य आत्रेय सूरि ने कहा है।

वक्तव्य—आयसमलं = मण्डूरम् ।

पञ्चामृतपर्पटी-३३

सूतायोऽभ्रकताम्रभस्मनिखिलं तुल्यं ततो गन्धकं
द्विर्भागं [1]पलिकाकृतं [2]कदलिकापत्रे तु संस्थापितम् ।
माषद्वन्द्वमितां तथा मधुकणायुक्तां पुनः पर्पटीं
दद्याद्धातुगते ज्वरे द्युतिसुतौ नाम्ना तु पञ्चामृताम् ॥
कासश्वासगुदाङ्कुरग्रहणिकायक्ष्मामये सद्गुणाम् ॥ १९५ ॥

शुद्ध पारद १ भाग, लोहभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, ताम्र भस्म १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लें। सर्वप्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनाकर अन्य तीनों भस्मों को मिलाकर ३-४ घण्टे तक मर्दन करें। इसके बाद गाय के गोबर (कठिन गोबर) की एक गोल पिण्डी बनावें जिसका व्यास १ वित्ता हो

१. घृताक्तायां दर्विकायां संस्थापितमित्यर्थः ।
२. 'कदलिकापत्रेण सञ्छादिताम्' इति पाठ भेदः ।

और ४ अंगुल ऊँचा हो, उस गोबर पिण्ड पर घृत लिप्त तथा आग में सेका हुआ कदलीपत्र के ४-५ टुकड़े आड़े-सीधे कर रखें। तथा वैसे ही कदली पत्र में १ पाव गाय का गोबर रखकर पोट्टली जैसा बना लें। अब एक पालिकायन्त्र या समयानुसार दर्वीयन्त्र = कलछुल को घृत लिप्त कर मृद्वग्नि पर तप्त करें तथा उपर्युक्त मर्दित १० ग्राम कज्जली डालकर दर्वी को मृद्वग्नि पर गर्म करे और चम्मच से चलाते रहें। थोड़ी देर में गन्धक की धुँआ निकलना शुरु हो जायगा और कज्जली पिघलनी शुरु हो जायगी, उसे चलाते रहिये। जब पूरी औषधि पिघलकर पिण्डरूप (गोली जैसी) हो जाय तब गोबरपिण्डोपरिस्थित कदलीपत्र पर उस पिण्ड रूप औषधि को पलट दें और शीघ्रता से गोबर की पोट्टली से दबा दें। पिघली औषधि पपड़ी जैसी चौड़ी-पतली हो जाती है। इसे पर्पटी कहते हैं। इस पञ्चामृतपर्पटी को १२५ मि. ग्रा. मधु और पिप्पली चूर्ण के साथ धातुगतज्वर, अतिसार, कास, श्वास, अर्श, ग्रहणी और राजयक्ष्मा रोग में देने से बहुत लाभ होता है।

स्वर्णपर्पटी-३४

स्वर्णं रौप्यं रविगगनकं लोहसूतं समांशं
मुक्ताभागं विमलबलिकं पारदाद्युग्मभागम् ।
मर्द्यं कन्दैः कदलीजनकैः शाल्मलीनां रसैर्वा
कन्याद्रावैर्मुनिदिनमथो वल्लयुग्मं निहन्यात् ॥
मेहं तापं मधुचपलया सेविता मासमात्रं
स्त्रीणां रोगानशेषानपहरति पुनः पर्पटी काञ्चनीयम् ॥ १९६ ॥

स्वर्ण भस्म १ भाग, रजत भस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, अभ्रक भस्म १ भाग, लोह भस्म १ भाग, शुद्ध पारद १ भाग, मुक्ता १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग लें। सर्वप्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनाकर अन्य सभी भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। पुनः कदलीकन्द स्वरस, शाल्मलीत्वक् स्वरस और घृतकुमारी स्वरस की ७-७ भावना दें। सूखने पर पञ्चामृतपर्पटी वाली विधि से पर्पटी बना लें। इसे काञ्चन पर्पटी (स्वर्णपर्पटी) कहते हैं। इसे २ वल्ल (७५० मि. ग्रा.) की मात्रा में मधु और पिप्पली चूर्ण के साथ १ मास तक लेने से प्रमेह-ज्वर-नष्ट हो जाते हैं तथा स्त्रियों के सम्पूर्ण रोग भी इससे नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—इस समय यह मात्रा अत्यधिक है। इसे १२५ मि. ग्रा. देनी चाहिये।

राजमृगाङ्क रसः-३५

स्वर्णं वैक्रान्तसूतं समलवममलं गन्धकं शुक्तिकोत्थं
युग्मांशं पादभागं कुलिशभसितकं टङ्कणं सर्वतुल्यम् ॥ १९७ ॥

जम्बीरैर्मातुलुङ्गैस्त्रिदिवसमसकृद्भावितं शुष्कगोलं
मृद्वस्त्रैर्वेष्टयित्वा तदनु सुविमले किट्टमध्ये निवेश्य ।
भाण्डे मृल्लिप्तसन्धौ मृदुतरशिखिना पाचितं वेदयामं
स्वाङ्गं शीतं गृहीत्वा मृगमदसलिलैर्भावयेद्वित्रिवारान् ॥ १९८ ॥
सिद्धो राजमृगाङ्क एष मधुना कृष्णायुतेन क्षयान्
कासं पञ्चविधं क्षयं क्षतरुजं जीर्णज्वरं धातुगम् ।
हन्यान्मेहरुजामकालपलितं कान्तिं च वीर्यं दृढं
कुर्याद्वैद्यवरेण चन्द्रशिखरेणोक्तो विमृश्याखिलम् ॥ १९९ ॥

स्वर्ण भस्म १ भाग, वैक्रान्त भस्म १ भाग, शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, मुक्ता भस्म २ भाग, हीरकभस्म ½ भाग, शुद्ध टंकण ७½ भाग लें। सर्वप्रथम पारद-गन्धक को एक साथ खरल में दो दिनों तक मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें। तत्पश्चात् अन्य सभी भस्मों को मिलाकर जम्बीरी निम्बू और मातुलुङ्ग निम्बु के स्वरस में ३ दिनों तक अनेक भावना देकर मर्दन करें और बड़ा सा गोला बना लें। छाया में गोले को सुखा लें पुनः धूप में भी अच्छी तरह सुखा लें। इसके बाद शुभ्र रेशमी के गाढ़े वस्त्र में उस गोले को लपेट कर ऊपर से चिकनी मिट्टी का १ अंगुल गाढ़ा लेप कर सुखा लें। इसके बाद साफ बालू से पूरित बालुकायन्त्र में उपर्युक्त गोले को रखकर १२ घण्टे तक पाक करें। दूसरे दिन स्वाङ्गशीत होने पर बालू से गोले को निकाल कर ऊपर की मिट्टी सावधानी से हटा लें और एक साफ खरल में मर्दन करें। ततः कस्तूरी के जलीय घोल से दो-तीन बार भावना देकर मर्दन करें। एतदर्थ कस्तूरी १ भाग लेना चाहिये। मर्दन के बाद इसे छाया में खूब सुखाकर शीशी में रख लें। यह राजमृगाङ्करस इस तरह से सिद्ध हो जाता है। इस राजमृगाङ्करस को १ रत्ती (१२५ मि० ग्रा०) की मात्रा में पिप्पली चूर्ण १ माशा (१ ग्राम) और शहद के साथ खाने से पाँच प्रकार के कास, क्षय, उरःक्षत, धातुगत-जीर्णज्वर, प्रमेह, अकाल बाल पकना एवं झड़ना आदि रोगों को नाश करता है। शरीर की कान्ति और वीर्य को बढ़ाता है। ऐसा सम्पूर्णचिकित्सा शास्त्र को देखने और विचारने के बाद आचार्य 'चन्द्रशेखर' ने कहा है।

महामृगाङ्क रसः—३६

स्वर्णं तारं समुक्तं प्रवतिकिसलयं माक्षिकं वज्रसूतौ
लोहं चाभ्रं च शुल्बं मृतममलतरौ नागवङ्गौ च गन्धम् ।
भागैर्वृद्धं दिनैकं घनतरघटनैर्मर्दयेत् त्रिवारं
कन्याधात्रीविदारीमुशलिवरिजयाशाल्मलीधूर्तमूलैः ॥ २०० ॥

गोलं वेष्टयं पलांशैर्मदनतरुभवैर्मृत्स्नया चापि शुष्कं
गर्ते सामुद्रपूर्णे लघुतरदहने पाचितं वेदयामम् ।
दत्त्वा तत्षोडशांशं विषमतिविमलं[1] गन्धकं तेन तुल्यं
मर्द्यं धूर्तैर्जयाभिः खसखसतिलजैर्वारिभिः कन्यकोत्थैः ॥ २०१ ॥
पिण्डं सिन्धूद्भवेन प्रविलुलितमथो वेष्टितं माषपिष्टैः
स्थाप्यं यन्त्रे त्रियामं लवणविरचिते पाचयेदग्निना तु ।
स्वाङ्गं शीतं कुमारीबटुकबलियुतं पूजितं वल्लमात्रं
कृष्णाक्षौद्रैर्मृगाङ्कः क्षयतिमिरविभाषितो जीर्णवैद्यैः ॥ २०२ ॥

स्वर्ण भस्म १ भाग, रजत भस्म २ भाग, मुक्ता भस्म ३ भाग, प्रवाल भस्म ४ भाग, स्वर्णमाक्षिक भस्म ५ भाग, हीरकभस्म ६ भाग, शुद्ध पारद ७ भाग, तीक्ष्णलोहभस्म ८ भाग, अभ्रकभस्म ९ भाग, ताम्रभस्म १० भाग, नागभस्म ११ भाग, वङ्गभस्म १२ भाग, और शुद्ध गन्धक १३ भाग लें। सर्वप्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनावें, इसके बाद अन्य सभी द्रव्यों के भस्मों को कज्जली में मिलाकर मर्दन करें और घृतकुमारी-आमला-विदारीकन्द-मुशली-शतावरी-भाँग-शालमली और धत्तूरमूल स्वरसों के साथ ३-३ भावना देकर १-१ दिन तक मर्दन करें और गोला बनाकर सुखा लें। तत्पश्चात् उस औषधि गोलक पर मदनफल पत्रों को लपेटकर १ अंगुल चिकनी मिट्टी से लेप कर छाया में सुखा लें। पुनः जमीन में १ हाथ लम्बा-चौड़ा-गहरा गड्ढा खोदें उस गड्ढे में आठ अंगुल का एक छोटा सा और गड्ढा खोदें। छोटे गड्ढे में थोड़ा सा सैन्धव लवण चूर्ण फैलाकर मिट्टी लिप्त औषधि गोला को रखें। उस गोले के ऊपर थोड़े वन्योपलों को रख कपोतपुट जैसा पुट दें। ऐसा कई वार पुट दें जिससे चार प्रहर अर्थात् १२ घण्टे तक उसमें अग्नि लगता रहे। स्वाङ्गशीत होने पर उस गोले को निकाल पत्ते एवं मिट्टी पृथक् कर लें और खरल में चूर्ण करें और औषधि को तौलें तथा औषधि के १६ वां भाग अत्यन्त शुद्ध वत्सनाभ एवं इतनी ही मात्रा में शुद्ध गन्धक मिलाकर पुनः धत्तूरमूल स्वरस, भांग स्वरस, खसखस क्वाथ (अहिफेन फल छिलका का क्वाथ) तिल क्वाथ और घृतकुमारीस्वरस की १-१ भावना देकर पुनः गोला बनावें।

तथा इन्हीं स्वरसों से सैन्धवलवण को पीस कर उस गोले पर सैन्धव लवण की १ अंगुल मोटा लेप करें और उड़द के आंटे की पिट्ठी में बन्दकर लवणयन्त्र में रखें और ९ घण्टे तक मृदु-मध्य-तीक्ष्णाग्नि से पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर औषधि गोलक को निकाल कर आटें के लेप को हटा लें और औषधि को पीसकर शीशी में रख ले। इसके बाद भैरव की पुजा एवं बली देने के बाद, कुमारी

१. "दग्धे शुद्धं विषं तु कलितशशिकलं" इति पाठ भेदः ।

कन्या एवं छोटेबालकों को पूजा कर भोजन करावें। तब राजयक्ष्मा से पीड़ित व्यक्ति को इस औषधि की १ वल्ल-अर्थात् ३ रत्ती (३७५ मि० ग्रा०) की मात्रा में पीपर चूर्ण एवं शहद के साथ खाने को दें। यह महामृगाङ्क रस औषधि क्षयरूपी अन्धकार को सूर्य के तरह नाश करता है, ऐसा वृद्ध वैद्यों से कहा जाता है। यह मात्रा अधिक है इसे १२५ मि. ग्रा. दें।

महामृगाङ्को रसः (अन्यः)-३७

हेम्नो भस्म रसेन तुल्यतुलितं मुक्तां विशुद्धां ततो
द्विर्भागां समगन्धकं तु सकलात् पादेन टङ्केन च।
सम्मर्द्य खलु काञ्जिकेन सकलं शुष्कं तु गोलं पचे-
द्भाण्डे सैन्धवपूरिते तु शिखिना शीतं ततश्चूर्णयेत् ॥ २०३ ॥
भाव्यं रङ्कुमदेन वल्लतुलितं तापेऽग्निमान्द्ये क्षये
कासे श्वासयुते मृगाङ्कमलघुं खादेत्कणाक्षौद्रभुक्।

स्वर्णभस्म १ भाग, शुद्ध पारद १ भाग, मुक्ताभस्म २ भाग, शुद्ध गन्धक ४ भाग, शुद्ध टङ्कण २ भाग लें। सर्वप्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बना लें तथा बाद में सभी द्रव्यों को मिलाकर काञ्जी की भावना देकर एक बड़ा सा गोला बना लें। छाया में अच्छी तरह सुखाकर लवणयन्त्र में इस गोले को रखकर १२ घण्टे तक अग्नि में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर गोले को निकालकर खरल में पीस लें तथा १ भाग कस्तूरी को पानी में घोलकर १ भावना दें। पुनः अच्छी तरह छाया शुष्ककर शीशी में रख लें। इस महामृगाङ्क रस को १ वल्ल (३ रत्ती = ३७५ मि. ग्रा.) की मात्रा में एवं पिप्पली चूर्ण १ माशा = १ ग्राम और शहद के साथ ज्वर-अग्निमान्द्य-क्षय-कास-श्वासादि रोगों में प्रयुक्त करें। बहुत ही लाभ मिलता है। किन्तु अधुना १२५ मि. ग्रा. की मात्रा में प्रयोग करें।

विमर्श—रङ्कुः = हरिणः-मृगः-कस्तूरीमृगविशेषः। तस्य मृगस्य मदेन = कस्तूर्या भाव्यमिति।

मुक्तामृगाङ्को रसः-३८

रुक्मं तीक्ष्णं च कान्तं रजतरसभवं भस्म वङ्गाहितुल्यं
मुक्ता सर्वैः समाना द्विगुणमथ रसाद्गन्धकं टङ्कणं च।
पादांशं सर्वमेतत्तुषभवमृदितं पूर्ववद्यन्त्रपक्वं
स्वाङ्गं शीतं मृगाङ्कं मृगमदतुलितं यक्ष्मरोगे प्रशस्तम् ॥ २०४ ॥

स्वर्ण भस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, कान्तलोहभस्म, रजतभस्म, पारदभस्म, या रससिन्दूर, वङ्गभस्म, एवं नागभस्म प्रत्येक १-१ भाग और मुक्ताभस्म या पिष्टी

सबों के बराबर अर्थात् ७ भाग तथा शुद्ध गन्धक और शुद्ध टङ्कण २-२ भाग लें। सबों को एक साफ पत्थर के खरल में एक साथ मर्दन कर काञ्जी की भावना दें। बाद में सबों का एक गोला बनाकर छाया में सुखा लें तथा उसे कपड़ा में लपेट कर ऊपर से चिकनी मिट्टी से १ अंगुल मोटा लेप कर दें। अच्छी तरह धूप में सुखाकर पूर्ववत् लवणयन्त्र में १२ घण्टे तक पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर लवणयन्त्र से उस औषधि पोट्टली को निकाल कर सावधानी से ऊपर की मिट्टी एवं कपड़ा हटा कर, औषधि को एक खरल में मर्दन करें। १ भाग कस्तूरी मिलाकर शीशी में रख लें। या राजयक्ष्मा से पीडित रोगियों में इस मृगाङ्क रस को कस्तूरी मिलाकर १२५ मि. ग्रा. की मात्रा में दें।

नोट—यहाँ पर आचार्य-श्री ने कस्तूरी की मात्रा का कोई उल्लेख नहीं किया है। तथापि सामान्य मात्रा १ भाग देना ही चाहिये।

नवरत्नमृगाङ्क रसः-३९

माणिक्यं वज्रमेकं गरुडवमिभवं नीलकं पुष्परागं
गोमेदं विद्रुमं द्विर्विदुरमणिमथो भस्म शंखस्य शुक्तेः ॥ २०५ ॥
'ताप्यं नागं च वङ्गं दरदशिखिगलं टङ्कणं राजवर्त्तं
गन्धं त्रिर्हेमतारं रविघनममलं तालकं ह्रच्छिला च।
वैक्रान्तं कान्तलोहं रसकयुगलकं वेदभागं सुमुक्तं
सूतं सर्वाष्टमांशं त्रिदिनमविरतं मर्दनीयं सुयत्नात् ॥ २०६ ॥
त्रिर्भाव्यं कन्यकाभिर्विषदहनबलावारिणा सप्तवारं
गोलं मृत्कर्पटैर्वै लवणविरचिते पाचयित्वा दिनैकम्।
सम्मर्द्य स्वाङ्गशीतं मृगमदसलिलैः पिप्पलीक्षौद्रयुक्तं
वल्लैकं श्वासकासक्षयतमकगदे रत्नगर्भान्मृगाङ्कात् ॥ २०७ ॥

माणिक्यभस्म १ भाग, हीरकभस्म १ भाग, पन्नाभस्म १ भाग, नीलमभस्म १ भाग, पुष्परागभस्म १ भाग, गोमेदभस्म १ भाग, प्रवालभस्म १ भाग, वैदूर्य-भस्म २ भाग, शंखभस्म १ भाग, शुक्तिभस्म १ भाग, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ भाग, नागभस्म १ भाग, वङ्गभस्म १ भाग, शुद्ध हिंगुल १ भाग, शुद्ध तुत्थ १ भाग, शुद्ध टंकण १ भाग, राजावर्त भस्म १ भाग, शुद्ध गन्धक ३ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, रजतभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, शुद्ध हरिताल १ भाग, शुद्ध मनःशिला १ भाग, वैक्रान्तभस्म १ भाग, कान्तलोहभस्म १ भाग, खर्पर भस्म २ भाग, मुक्ताभस्म ४ भाग, शुद्ध पारद ४ भाग लें।

१. कांस्यमिति पा० भेदः।

निर्माण विधि–सर्वप्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनाकर अन्य सभी २८ द्रव्यों के भस्मों एवं शुद्ध द्रव्यों के चूर्णों को मिलाकर तीन दिनों तक अनवरत मर्दन करें। पुनः घृतकुमारी स्वरस की तीन भावना दें। पुनः वत्सनाभ विष क्वाथ, चित्रकमूल क्वाथ, और बलामूल क्वाथ की ७-७ बार भावना देकर बड़ा सा गोला बनावें छाया में सुखाकर पुनः धूप में सुखा लें। तत्पश्चात् उस गोले को मोटे रेशमी वस्त्र में बांधकर उसपर चिकनी मिट्टी का १ अंगुल मोटा लेप कर अच्छी तरह सुखा लें और लवणयन्त्र में रखकर मृदु-मध्य-तीक्ष्णाग्नि से २४ घण्टे तक पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर गोला निकाल कर सावधानी से मिट्टी-कपड़ा आदि हटाकर खरल में पीस लें और कस्तूरी मिला जल की १ भावना देकर छाया शुष्ककर शीशी में रख लें। अब इस नवरत्नमृगाङ्क नामक औषधि को ३ रत्ती = ३७५ मि. ग्रा. की मात्रा में पिप्पली चूर्ण १ माशा और शहद के साथ-क्षय-कास-श्वास-तमकश्वास आदि रोगों में दें। इससे बहुत ही लाभ होता है।

विमर्श—इसकी वर्तमान् मात्रा १२५ मि. ग्रा. में दें।

सर्वेश्वर रस–४०

माक्षीकद्वितयं सुवर्णरसकं गन्धं सतारं पृथ-
ग्भागं विद्रुमताम्रशुक्तिजपवेद्वैभागमेकैकशः।
वङ्गायोभ्रककांस्यपारदफणीन् वैक्रान्तकान्तं पुन-
स्त्रिर्मर्द्यं तु वरात्रिजातदहनैर्मुस्तामृतायष्टिभिः॥ २०८॥
सिंहास्यामुशलीविदारिकदलीगोकण्टकोशीरकै-
र्नारायण्यमृताशटीकरिकणाशुण्ठीकुमारीद्रवैः।
गोदुग्धैर्मुशलीक्षुवारिमृदितं गोलं पचेद्यामकं
मन्दाग्नौ च मृगाङ्कवत्परमसौ भाव्यस्ततो भावनैः॥ २०९॥
द्वे कस्तूरिमृगाङ्कयोर्मधुकणायुक्तोऽस्य वल्लो जये-
न्मेहार्शोग्रहणीगदोदरमरुद्व्याधिज्वरान् कामलान्।
पाण्डुं कुष्ठभगन्दरं बहुरुजं मूत्रं च शुक्रक्षयम्॥ २१०॥

सुवर्णमाक्षिक भस्म १ भाग, रौप्यमाक्षिक भस्म १ भाग, सुवर्णभस्म १ भाग, रसकभस्म १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, रजतभस्म १ भाग, प्रवालभस्म २ भाग, ताम्रभस्म २ भाग, मुक्ताभस्म २ भाग, हीरकभस्म २ भाग, वङ्गभस्म १ भाग, तीक्ष्णलोहभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, कांस्यभस्म १ भाग, शुद्ध पारद १ भाग, नागभस्म १ भाग, वैकान्तभस्म १ भाग, कान्तलोहभस्म १ भाग लें। सर्वप्रथम पारद + गन्धक की कज्जली बनावें तत्पश्चात् अन्य सभी भस्मों को मिलाकर मर्दन करें।

पुनः त्रिफला क्वाथ, त्रिजातकफाण्ट, चित्रक क्वाथ, मुस्ता क्वाथ, गुडूची स्वरस, मधुयष्टि क्वाथ, वासा स्वरस, श्वेतमुशली क्वाथ, विदारीकन्द क्वाथ, कदलीकन्द स्वरस, गोक्षुर स्वरस, उशीरफाण्ट, शतावरी क्वाथ, आमलकी क्वाथ, कचूरक्वाथ, गजपिप्पलीक्वाथ, शुण्ठीक्वाथ, घृतकुमारी स्वरस, गोदुग्ध, श्याह-मुशलीक्वाथ, और ईक्षुस्वरस इन २१ द्रव्यों के क्वाथ या स्वरसों से ३-३ भावना देकर बड़ा सा गोला बनाकर छाया में सुखा लें। इसके बाद धूप में सुखाकर उस गोले को रेशमी वस्त्र से बांधे और मिट्टी की १ अंगुल लेपकर सुखावें तथा लवणयन्त्र में रखकर ३ घण्टे तक मन्दाग्नि से मृगाङ्करस जैसा पाक करें। दूसरे दिन स्वाङ्गशीत होने पर गोले को निकाल लें और वस्त्रादि सावधानी से हटाकर गोले को खरल में पीसकर कस्तूरी और कर्पूर को पानी में घोलकर २-२ भावनायें दें। तदनन्तर सुखाकर शीशी में रख लें। प्रमेह, अर्श, ग्रहणी, उदररोग, वातव्याधि, सभी प्रकार के ज्वर, कामला, पाण्डु, कुष्ठ, भगन्दर, अनेक प्रकार के मूत्ररोगों और शुक्रक्षयरोग में इस सर्वेश्वर रस की ३ रत्ती = ३७५ मि. ग्रा. की मात्रा में पिप्पलीचूर्ण १ माशा और शहद के साथ देने से बहुत लाभ करता है।

विमर्श—सर्वेश्वररस ३ श्लोकों में उपलब्ध है। यद्यपि इस योग में विधिपूर्ण हो चुकि है तथापि श्लोक सं० २१० अपूर्ण है। सम्भव है कि पाण्डुलिपि लेखक प्रमादवश यह पाद छोड़दिये हों। अस्तु! मैंने इसे पूर्ण करने की चेष्टा नहीं की है। अधुना इसकी मात्रा १२५ मि. ग्रा. में दें।

चतुर्मुख रस–४१

सूतायोऽभ्रकगन्धकं समलवं सूतांघ्रितुल्यं मृतं
स्वर्णं सर्वमिदं निधाय विमले खल्वे दिनं मर्दयेत्।
कन्या व्योषवरापुनर्नवरसैः कच्छूलवङ्गैः पुन-
र्भाव्यं चित्रकपत्रकैर्घनतरं संवेष्ट्य धान्यान्तगम्॥ २११॥
कुर्याद्ब्रह्मविनिर्मितं रसवरं यक्ष्मापहं पुष्टिदं
वल्लं क्षौद्रफलत्रयेण सहितं मेहाग्निमान्द्यप्रणुत्।

शुद्ध पारद १ भाग, लोहभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, स्वर्णभस्म $\frac{1}{4}$ भाग लें। सर्वप्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनावें। तत्पश्चात् उसी खरल में अन्य तीनों भस्मों को मिलाकर एक दिन मर्दन करें। पुनः घृतकुमारी स्वरस, त्रिकटुक्वाथ, त्रिफलाक्वाथ, पुनर्नवा स्वरस, कपिकच्छु बीज क्वाथ एवं लवङ्ग के फाण्ट से १-१ भावना देकर १ गोला बनावें और चित्रक पत्रों से लपेटकर धागा से बांधें और १ सप्ताह पर्यन्त धान की ढेर में छिपाकर रखें। ब्रह्मा के द्वारा बनाया हुआ यह "चतुर्मुख रस" १ वल्ल (३७५ मि. ग्रा.) की मात्रा

में त्रिफला चूर्ण १ माशा और शहद के साथ खाने से राजयक्ष्मा, प्रमेह और अग्निमांद्य नष्ट हो जाते हैं तथा शरीर को पुष्टि करता है। अधुना १२५ मि. ग्रा. की मात्रा दें।

त्रैलोक्यचिन्तामणि रस-४२

वज्रैर्हेमरसाभ्रताम्ररजतैर्लोहैर्मृतैर्गन्धकैः
शङ्खैर्विद्रुममौक्तिकैश्च शिलया तालेन शुद्धैः पुनः ॥ २१२ ॥
सप्ताहं परिमर्दितं दहनजैः क्वाथैस्तथाऽर्कोद्भव-
क्षीरैस्तद्दिवसत्रयं प्रमृदितं न्यस्तं कपर्दीषु च ।
रुद्ध्वा भाण्डतले मृदा सुवसनैः संछाद्य शुष्कं पुनः
सन्ध्यायां खलु तीव्रकुञ्जरपुटे पक्वं सुशीतं पुनः ॥ २१३ ॥
ग्राह्यं सर्वमिदं विचूर्ण्य तुलितं सिन्दूरनाम्ना पुनः
सूतेनापि विकृन्तपादमिलितं मर्द्यं दृढं तद्दिनम् ।
शिग्रुद्रावविमर्दितं मुनिदिनं त्रिःसप्तधा भावितं
मूलैश्चित्रकजैस्तथाऽऽर्द्रकरसैर्जम्बीरजैर्लुङ्गजैः ॥ २१४ ॥
शुष्कं चूर्णितपादटङ्कमिलितं सौभाग्यपादं विषं
तत्तुल्यं मरिचं लवङ्गचपलापथ्यार्द्रकं चामृतात् ।
प्रत्येकं सुमनःफलं त्वथ चतुर्थांशं पुनर्मर्दितं
जम्बीरेण तथाऽऽर्द्रकेण च तथा लुङ्गाम्भसा सप्तधा ॥ २१५ ॥
वल्लद्वन्द्वमितं पुनर्मधुकणासम्मिश्रितं सेवितं
दुर्नामक्षयपाण्डुकासशमनं मेहाग्निमान्द्यप्रणुत् ।
कुष्ठापस्मृतितापकृच्छ्रभगरुक्प्लीहोदरं विद्रधिं
साध्यासाध्यगदान्निहन्ति स रसस्त्रैलोक्यचिन्तामणिः ॥ २१६ ॥

हीरकभस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध पारद या रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, रजतभस्म, लोहभस्म, शुद्ध गन्धक, शंखभस्म, प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, शुद्ध मनःशिला, और शुद्ध हरताल इन १३ द्रव्यों से प्रत्येक का १-१ भाग लें। सर्वप्रथम शुद्ध पारद और गन्धक डालकर कज्जली करें, तत्पश्चात् अन्य सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर एक खरल में मर्दन करें और चित्रकमूल क्वाथ की भावना देकर १ सप्ताह पर्यन्त मर्दन करें। अर्थात् ७ भावना दें। इसके बाद अर्कदुग्ध की भावना देकर ३ दिनों तक मर्दन करें। पुनः बड़ी-बड़ी कौड़ियों को शुद्ध करके साफ कर लें और उपर्युक्त भावित औषधि को उन्हीं कौड़ियों में भरकर उनके मुख को अर्कदुग्ध में पिष्टटङ्कण से बन्द करें। सूखने के बाद उन औषधि पूरित सभी कौड़ियों को एक हाँड़ी में बन्दकर हाँड़ी का मुख शराव सम्पुट

कर कपड़ मिट्टी से बन्द करें और गजपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सभी कौड़ियों के मुख पर लगा टङ्कण को हटा कर कौड़ी सहित पीस लें तथा तौलें। इस औषधि के बराबर रससिन्दूर और रससिन्दूर के चौथाई वैक्रान्तभस्म मिलाकर शिग्रु (सहिजन) त्वक् स्वरस की ७ दिनों तक २१ भावना देकर मर्दन करें, पुनः चित्रक मूल क्वाथ, आर्द्रक स्वरस, जम्बीरीनिम्बु स्वरस, मातुलुङ्गनिम्बु स्वरस, प्रत्येक की ७-७ भावना दें। जब औषधि सूख जाय तो इस औषधि चूर्ण के ¼ चौथाई भाग शुद्धटङ्कण और टङ्कण का चतुर्थांश शुद्ध वत्सनाभ विषचूर्ण, मरिचचूर्ण, लवङ्गचूर्ण, पिप्पलीचूर्ण, हरीतकीचूर्ण और आमलकीचूर्ण (ये छः द्रव्य) प्रत्येक टङ्कण से चौथाई लें। इन छः द्रव्यों के फूल-फल ग्रहण करें। पुनः जम्बीरीनिम्बु, आर्द्रक एवं मातुलुङ्गनिम्बु स्वरस की ७-७ भावना दें। अच्छी तरह सुखाकर शीशी में रख लें। किन्तु यह मात्रा अत्यधिक है।

इसे त्रैलोक्यचिन्तामणि रस कहते हैं। इस औषधि को २ वल्ल ६ रत्ती (७५० मि. ग्रा.) की मात्रा में १ माशा पिप्पली और शहद के साथ खाने से अर्श-क्षय-पाण्डु-कास-प्रमेह-अग्निमान्द्य-कुष्ठ-अपस्मार-ज्वर-मूत्रकृच्छ्र-कष्टसाध्य योनिरोग-प्लीहारोग-उदररोग-विद्रधि तथा साध्य एवं असाध्य सभी रोगों को नाश करता है।

विमर्श—ऐसा ही इस योग से मिलता जुलता हुआ एक योग अनेक ग्रन्थों में उद्धृत है। बृ. यो. तर.—रसमुक्तावली-रसायनसंग्रह-वैद्यचिन्तामणिः-रसचण्डांशु-वैद्यविलास-भैषज्यरत्नावली-रसराजशङ्कर-योगरत्नाकर-निघण्टुरत्नाकर आदि ग्रन्थों में उद्धृत है। जिसे रसयोगसागर में उद्धृत किया गया है। इन ग्रन्थों में माक्षिक भस्म भी लिया गया है तथा सर्वान्ते कस्तूरी की भावना दी गयी है। अनेक अन्य भावना द्रव्य भी बढ़ाये गये हैं। फलश्रुति में रोगों को भी बढ़ाया गया है। अधुना इसे २५० मि. ग्रा. की मात्रा में दें।

वसन्तकुसुमाकररसः-४३

स्वर्णं भागमितं द्विभागममलं रूप्यं त्रिभागं पुन-
र्नागं वङ्गमयोरजोऽभ्रभसितं मुक्ताप्रवालं रसम् ।
शुद्धं भागचतुष्टयं सुमृदितं भाव्यं पुनः पौण्ड्रकैः
श्रीवासाजलरात्रिशाल्मलिभवैर्द्रावैः पृथक्सप्तधा ॥ २१७ ॥
मालत्याः कुसुमैस्तथा मृगमदैरम्लानपुष्पोद्भवै
रम्भाकुङ्कुमजैः पुनर्विलुलितः सिद्धो वसन्ताभिधः ।
वल्लद्वन्द्वमितो रसायनवरः शुक्रायुषोर्वर्धनः
स्त्रीपुंसोः क्षयकासबीजजनितं दोषं नियच्छेत्परम् ॥ २१८ ॥

स्वर्णभस्म १ भाग, रजतभस्म २ भाग, नागभस्म ३ भाग, वङ्गभस्म ३ भाग, लोहभस्म ३ भाग, अभ्रकभस्म ३ भाग, मुक्तापिष्टि ३ भाग, प्रवालपिष्टि ३ भाग और रससिन्दूर ४ भाग लें। सर्वप्रथम रससिन्दूर को एक खरल को मर्दन कर अन्य भस्मों को मिलाकर कमलपुष्पस्वरस, बिल्वपत्रस्वरस, वासापत्र स्वरस नागरमोथा क्वाथ, हरिद्रा स्वरस, शाल्मलीमूल स्वरस (सेमरमुशली स्वरस) से ७-७ भावना दें। पुनः चमेली पुष्पस्वरस, दुपहरियापुष्प (अम्लानपुष्प = दुपरिया फूल) के स्वरस की ७ भावना दें, कदलीपुष्प की ७ भावना तथा अन्त में कस्तूरी के जलीयद्रव की १ भावना या ७ भावना देकर अच्छी तरह छाया में सुखाकर शीशी में रख लें। इसे वसन्तकुसुमाकर रस कहते हैं। इस औषधि की २ वल्ल (६ रत्ती = ७५० मि. ग्रा.) की मात्रा में शहद से लेने पर रसायन गुणों में श्रेष्ठ है, शुक्र और आयु को बढ़ाता है। सभी स्त्रियों और पुरुषों के शुक्र-आर्तव (Sperm-Ovem) के दोषों को दूर करता है। क्षय-कास और बीज दोषजन्य विकारों को नाश करता है। अधुना १२५ मि. ग्रा. की मात्रा में दें।

वसन्तराज रस-४४

सूतं गन्धकलोहमभ्रकनकं ताप्यं च ताम्रं मृतं
वङ्गं मौक्तिकविद्रुमं विमलकं कान्तं च नागं समम्।
वाराहीद्रवभावितं मुनिदिनं कूप्यां न्यसेन्मुद्रितं
पाच्यं बालुकया सुपूर्णपिठरे घस्रं सुशीतं पुनः॥ २१९॥
कस्तूरीघनसारकुङ्कुमरसैः श्रीखण्डलामज्जकै-
रम्लानस्य रसेन भावितमिदं त्रिस्त्रिः सुसिद्धो रसः।
नाम्ना राजवसन्त एष कथितः पित्तामयिभ्यो हितः
क्षीणानां क्षतकासिनां मधुसितायुक्तो द्विवल्लोऽशितः॥ २२०॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, मोतीभस्म, प्रवालभस्म, विमल (रौप्यमाक्षिक) भस्म, कान्तलोहभस्म, और नागभस्म प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। सर्वप्रथम पारद + गन्धक की कज्जली बनावें पुनः सभी भस्मों को मिलाकर उस कज्जली के साथ मर्दन करें और वाराहीकन्द क्वाथ की ७ भावना देकर ७ दिनों तक मर्दन करें। इसके बाद ७ वार कपड़मिट्टी की हुयी आतसी शीशी में उक्त भावित औषधि को रखकर बालुकायन्त्र में १ दिन तक पकावें। स्वाङ्गशीत होने पर औषधि को कूपी से निकाल कर चन्दनश्वेत-खस और दुपहरिया के फूल की ३-३ भावना दें, पुनः कस्तूरी-कर्पूर-केशर के जलीयघोल से ३-३ भावना दें।

सुखाकर शीशी में रख लें। वसन्तराज नामक यह रसौषधि पित्तज व्याधिओं के लिये हितकर है। इस औषधि की २ वल्ल (७५० मि. ग्रा.) की मात्रा में मधु

और चीनी मिलाकर खाने से क्षीण-क्षत-और कास (क्षय, उरःक्षत एवं कास) रोग नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—लामज्जक = खस, अम्लान = दुपहरिया, श्रीखण्ड = श्वेतचन्दन का बोधक है। अधुना १२५ मि. ग्रा. मात्रा में दें।

कामदेवरस-४५

श्वेताङ्कोल्लरसेन पारदपलं सम्मर्द्य सप्ताहत-
स्तत्तुल्यं कनकं तयोः समतुलं गन्धं विशुद्धं पुनः।
मर्द्यं श्वेतहयारिरक्तदहनैस्तालीरसैः सप्तधा
गोलं छागलमांसवेष्टितमथो माषैः प्रपिष्टैस्तथा॥ २२१॥
तप्ते तैलघृतेऽथवा विनिहितं सिन्दूरतुल्यं यदा
जातं तत्क्षणमुद्धरेन्मधुसितासर्पिर्युतं क्षीरपः।
भोज्यं लड्डुकपायसं ह्यनुदिनं सेवेत वन्ध्यां स्त्रियं
भोगान् सर्वऋतूद्भवान् सकुसुमान् कन्दर्पकेलीप्रियान्॥२२२॥

शुद्ध पारद ४ भाग, स्वर्णभस्म ४ भाग और शुद्ध गन्धक ८ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में शुद्ध पारद रखकर श्वेत अङ्कोलवृक्षत्वक् के स्वरस से ७ दिनों तक मर्दन करें। पुनः धोकर पारद को साफ करें। ततः शुद्ध गन्धक देकर मर्दन कर कज्जली बनावें। इसके बाद उसमें स्वर्ण भस्म मिलाकर मर्दन करें और श्वेत कनेरमूलत्वक् रस की, रक्तचित्रकमूल स्वरस की और ताली = भूम्यामलकी स्वरस की ७-७ भावना देकर गोला बना लें। तत्पश्चात् बकरे का मांस उस औषधि गोलक पर लपेट दें पुनः उड़द के आँटे को पानी में गूँथ कर मोटी रोटी जैसा चौड़ा कर मांस वेष्टित औषधि गोले पर आवृत कर (लिट्टी-वाटी जैसा करें) तिलतैल और गोघृत समभाग कड़ाही में प्रतप्त कर उसे सिन्दूर जैसा लाल तल लें तथा कहाड़ी से निकाल कर रख लें। अब उस औषध को १ से २ रत्ती = २५० मि. ग्रा. तक की मात्रा में मधु, घी एवं चीनी मिलाकर सेवन करें ऊपर से चीनी मिला उष्ण दुग्ध पान करें। प्रतिदिन लड्डू-खीर आदि दुग्ध निर्मित मिष्ठान्न का भोजन करें। सभी ऋतुओं में उत्पन्न फूलों का आनन्द लेते हुये कन्दर्पकेली कला में निपुण वन्ध्या स्त्रिओं का उपभोग (सम्भोग) करें।

विमर्श—औषधि गोलक पर लिप्त मांस और उड़द को हटाकर ओषध को काच पात्र में रख लें।

कामदेवरस (द्वितीय)-४६

सूतं गन्धकसम्मितं त्रिकटुकक्काथेन सम्मिश्रितं
गोलं क्षीरविदारिकन्दविवरे न्यस्तं प्रलिप्तं पुनः।

मार्षैर्लिप्तमथोऽङ्गुलेन तुलितं¹ गव्ये घृते पाचितं
तच्चूर्णं पलसम्मितं द्विपलकं सत्त्वं गुडूच्याः पुनः ॥ २२३ ॥
द्राक्षा कच्छुफलं तिला वरिजये प्रत्येककं पालिकं
मोचाया द्विपलं यवाः शरपला यष्टी द्विमुष्टिः शुभा ।
कृष्णाधात्रिबलात्रयेक्षुरभवैर्गोकण्टकैर्भावये-
त्सर्वं सप्तदिनं निवेश्य विमले पात्रे सितामिश्रितम् ॥ २२४ ॥
माषद्वन्द्वमितं भजेन्निशि घृतं दुग्धं यथेष्टं पिबे-
द्बृष्येद् ग्राम्यकलिङ्कवच्च जयति श्रीकामदेवो रसः ।

शुद्ध पारद २ भाग एवं शुद्ध गन्धक २ भाग लें। सर्वप्रथम पारद + गन्धक की कज्जली बना लें। पुनः त्रिकटु क्वाथ के साथ तीन भावना दें और उसकी बड़ी गोली (गोला) बना लें, जब गोला सूख जाय जब विदारीकन्द ताजा लेकर उस कन्द में गोला छिप जाय उतना बड़ा छिद्र कर लें तथा उस गोले को उस कन्द के अन्दर रखकर उसी की गुद्दी का कल्क बनाकर ऊपर से लेप कर दें। उस कन्द पर उड़द के गूँथे आँटे का एक अंगुल मोटा लेप चढ़ा दें और गाय के घी में लाल होने पर्यन्त तल लें। इसके बाद ठंढा होने पर सावधानी पूर्वक विदारी कन्द के अन्दर से औषधि गोलक को निकाल ले, औषधि १ भाग होगी। अब उसमें गुडूची सत्त्व २ भाग, द्राक्षा १ भाग, केवाँचबीज १ भाग, तिलबीज १ भाग, शतावरी १ भाग, भांग १ भाग, कदलीकन्द २ भाग, निस्तुष यव ५ भाग यष्टिमधु २ भाग लें। इन सभी द्रव्यों के सूक्ष्मचूर्ण कर लें और उपर्युक्त औषधि के साथ मिलाकर मर्दन करें इसके बाद पिप्पली क्वाथ, आमलकीस्वरस, बलामूलस्वरस, नागबलामूलस्वरस अतिबलामूल स्वरस, कोकिलाक्ष एवं क्षुद्रगोक्षुर स्वरस की ७-७ भावना दें और सुखाकर शीशी में रख लें। इस कामदेव रस औषधि की १-२ ग्राम की मात्रा में चीनी-घी और दूध के साथ रात्रि में सेवन करे और गौरैयापक्षी (चटकपक्षी) जैसा पूरी रात्रि उत्तेजना पूर्वक मैथुन करते रहें। यह उत्तम वाजीकरण योग है।

लक्ष्मीविलास रस–४७

प्रत्येकं सुहिरण्यरौप्यरसकं द्विघ्नं फणीन्द्रायसं
त्रिघ्नं दानवभानुताप्यगगनं मुक्ताफलं विद्रुमम् ॥ २२५ ॥
वेदघ्नं हरजेन्द्रम्लेच्छकुनटीतालं विमर्द्याम्बुभि-
र्निर्गुण्डीवरिवानरीरविशटीरम्भाकुमारीवृषैः ।
गोलं मृत्पटवेष्टितं सुलवणे यन्त्रेऽष्टयामावधि
पक्त्वा स्वाङ्गसुशीतलं सुभिषजा पूर्वोदितैर्भावयेत् ॥ २२६ ॥

१. विमले इति पाठः ।

हन्यादष्टविधं ज्वरं च विषमं षट् चातिसारांस्तथा
पाण्डून् पञ्च च पञ्च च ग्रहणिका एकादशे यक्ष्मणि ।
वल्लद्वन्द्वमितः कणामधुयुतो देवप्रसूनार्द्रक-
द्रावैर्वा मृगदर्पकुङ्कुमयुतो लक्ष्मीविलासो रसः ॥ २२७ ॥

स्वर्णभस्म, रजतभस्म, रसकभस्म, १-१ भाग, नागभस्म एवं लोहभस्म २-२ भाग, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, अभ्रकभस्म, मोतीभस्म एवं प्रवालभस्म प्रत्येक ३-३ भाग। शुद्ध पारद, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध मनःशिला एवं शुद्ध हरताल ४-४ भाग लें। सर्वप्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनावें, ततः अन्य सभी भस्मों एवं शोधित द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद निर्गुण्डी स्वरस, शतावरी स्वरस, केवाँचबीज क्वाथ, अर्कपत्र स्वरस, शटीक्वाथ, कदलीकन्द स्वरस, कुमारी स्वरस एवं वासामूल स्वरस की १-१ भावना दें और गोला बना लें। अच्छी तरह सूखने पर उस गोले पर कपड़मिट्टी से १ अंगुल लेप कर सुखा लें। पुनः उस गोले को लवणयन्त्र में रखकर २४ घण्टे तक मृदु-मध्य-तीक्ष्णाग्नि से पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर गोले को निकालकर सावधानी से कपड़मिट्टी हटा दें और खरल में पीसकर पुनः निर्गुण्डी-शतावरी-केंवाचबीज-अर्कपत्र-शटी-कदली-घृतकुमारी और वासास्वरस की १-१ भावना देकर औषधि को सुखाकर शीशी में रख लें। इसे लक्ष्मीविलास रस कहते हैं। २-वल्ल ६ रत्ती (७५० मि. ग्रा.) की मात्रा में इस औषधि को पिप्पलीचूर्ण-मधु-लवङ्गचूर्ण-आर्द्रक स्वरस के साथ लेने से या कस्तूरी और केशर के साथ प्रयोग करने से ८ प्रकार के ज्वर, ६ प्रकार विषमज्वर, ५ प्रकार के अतिसार, ५ प्रकार के पाण्डु, ५ प्रकार के संग्रहणी, और ११ प्रकार के राजयक्ष्मा नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—अधुना इसे १२५–२५० मि. ग्रा, तक दें।

लक्ष्मीविलासरस (द्वितीय)–४८

सिन्दूरं रसपूर्वकं च विमलं कान्तं घनं गन्धकं
तुल्यं पारदपादिकं सुकनकं तारं मृतं तत्पुनः ।
मर्द्यं भूसितया वृषेण वरया वर्या विदार्या ततः
कन्याशाल्मलिगोक्षुरेण सितया ताल्याऽश्वया सप्तधा ॥ २२८ ॥
तत्पत्रैः परिवेष्ट्य तण्डुलभवे राशौ तथा पुष्पजे
न्यस्तं सप्तदिनं ततो मृगमदैर्लक्ष्मीविलासाभिधः ।
मेहध्वान्तहरः क्षयप्रशमनो वल्लत्रयं सेवित-
स्तत्तद्योगवरैः सितामधुघृतैर्मासं नियच्छेज्ज्वरान् ॥ २२९ ॥

रससिन्दूर १ भाग, विमल या रौप्यमाक्षिकभस्म १ भाग, कान्तलोहभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग शुद्ध गन्धक १ भाग, स्वर्णभस्म ¼ भाग, एवं रजत-भस्म ¼ भाग लें। सभी द्रव्यों को एक साथ खरल में मर्दन कर अङ्कोलवृक्षस्वरस, वासामूलस्वरस, त्रिफलाक्वाथ, शतावरीस्वरस, विदारीकन्दस्वरस, घृतकुमारी स्वरस, शाल्मलीमूलस्वरस, गोक्षुरस्वरस, श्वेतकण्टकारी या श्वेतदूर्वास्वरस, भूम्यामलकीस्वरस एवं अश्वगन्धास्वरस की ७-७ भावना दें और गोलाकर सुखा लें। इन्हीं द्रव्यों के कुछ चौड़े पत्तों से उस गोले को लपेटकर धान की भूँसी की ढेर में ७ दिनों तक उस औषधि गोलक को रखें। पुनः आठवें दिन उस गोले को निकालकर तथा पत्ते हटाकर पिस लें और १ भाग कस्तूरी मिश्रित जल की भावना देकर औषधि को सुखाकर शीशी में रख लें। इसे लक्ष्मीविलास रस कहते हैं। इसे ३ वल्ल (६ रत्ती = १ ग्राम) की मात्रा में मधु-घृत के साथ सेवन करने से प्रमेह और राजयक्ष्मा जैसे महा रोगों का नाश करता है। तथा ज्वरों को भी नाश करता है।

विमर्श—आजकल यह मात्रा अत्यधिक है। १२५–२५० मि. ग्रा. अधुना इसकी मात्रा ठीक है।

महालक्ष्मीविलास रस-४९

कान्तं तीक्ष्णकमभ्रसत्त्वकनकं ताम्रं च ताराहिकं
वङ्गं विद्रुममौक्तिकं समतुलं सर्वैस्तु सूतः समः।
क्षौद्रेण त्रिविमर्दितं तदखिलं क्षिप्त्वा तु मूषान्तरे
पाच्यं तार्क्ष्यपुटे सुशीतलमिदं वह्निद्रवैः सप्तधा ॥ २३० ॥
नारायण्यमृताश्वदंष्ट्रकबलागुप्तोच्चटागोस्तनी-
द्रावैः शाल्मलिपाटलीमुशलिकाकाण्डेक्षुकूष्माण्डजैः।
पथ्योदुम्बरकाद्रसैर्मुनिमितं मर्द्यः सुखल्वे धिया
त्वेषः कुङ्कुमचन्दनादिजनितैरद्भिश्च भृङ्गद्रवैः
वल्लद्वन्द्वमितो रसायनवरो वृष्यः क्षयध्वंसनो
मेहादेर्दलनो रसश्च स महालक्ष्मीविलासाभिधः ॥ २३१ ॥

इति श्रीमद् आचार्यविन्दु-विरचितो "रसपद्धतिः" नामकरसग्रन्थस्य काशीस्थ सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयीय राजकीय-आयुर्वेदमहाविद्यालयस्य रसशास्त्रविभागाध्यक्षेण डॉ० सिद्धिनन्दनमिश्रेण "सिद्धिप्रदा" व्याख्या कृता।

कान्तलोहभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, अभ्रकसत्त्वभस्म, सुवर्णभस्म, ताम्रभस्म, रजतभस्म, नागभस्म, वङ्गभस्म, प्रवालभस्म एवं मुक्ताभस्म ये प्रत्येक द्रव्य (दशों द्रव्य के भस्म) १-१ भाग और पारदभस्म या रससिन्दूर १० भाग अर्थात् सभी भस्मों के बराबर लें। सभी द्रव्यों को खरल में मर्दन कर ३ बार शहद की भावना दें और मूषा में रख कर तार्क्ष्यपुट में पाक करें। तार्क्ष्य गरुड को कहते हैं। पक्षी को भी तार्क्ष्य कहते हैं। सामान्य पक्षी से हम कपोत पुट का प्रयोग करें। क्योंकि यहाँ लघु अग्नि देना ही आचार्य का अभिप्राय है। चूंकि गन्धक के विना रससिन्दूर इसमें दिया गया है। अधिक अग्नि पाकर पारद उड़ जायगा।

स्वाङ्गशीत होने पर मूषा से औषधि को निकालकर चित्रकमूलक्वाथ, शतावरीक्वाथ, गुडूचीस्वरस, गोक्षुरक्वाथ, बलामूलक्वाथ, केवाँचबीजक्वाथ, गुञ्जामूलक्वाथ, द्राक्षाक्वाथ, सेमरमूलस्वरस, पाटलीस्वरस, मुशलीक्वाथ, काण्डेक्षुः = (काशतृण विशेषः) के क्वाथ, कूष्माण्डस्वरस, हरीतकीक्वाथ, एवं उदुम्बरत्वक् स्वरस, में ७-७ भावना दें। पुनः केशर के जलीयद्रव, चन्दनफाण्ट और भृङ्गराज के स्वरस की भावना देकर औषधि को अच्छी तरह से सुखाकर शीशी में रख लें। इसे महालक्ष्मीविलास रस कहते हैं।

इस औषधि की २ वल्ल (६ रत्ती = ७५० मि. ग्रा.) की माना मधु के साथ लेने से यह उत्तम रसायन कार्य करता है, वृष्य है, क्षय नाशक है और सभी तरह के प्रमेहादि रोगों को नाश करता है।

विमर्श—२ वल्ल (६ रत्ती) की मात्रा इन दिनों अधिक है। क्योंकि पुरुष हीन सत्त्व का हो गया है। अतः सभी रसौषधियों की मात्रा १-२ रत्ती ही अधिकाधिक होनी चाहिये। इस योग में आचार्य श्री ने २ ½ श्लोक में ही योग को पूर्ण कर दिया है। किन्तु आगे में कहीं समञ्जन भी नहीं किया है।

आचार्य "बिन्दु" द्वारा विरचित रसपद्धति नामक इस लघु रसग्रन्थ का "सिद्धिप्रदा" नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी स्थित राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय के रसशास्त्र विभागाध्यक्ष डॉ० सिद्धिनन्दन मिश्र (ग्राम-कन्दौल जिला गया-बिहार के स्व० श्रीयज्ञदत्त मिश्र के तृतीय पुत्र) ने १९८७ ई० में किया है।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

